NEP के पाठ्यक्रमानुसार

समाजशास्त्र

बी. ए. - तृतीय वर्ष : माइनर

भारतीय जनजातियों का समाजशास्त्र

डॉ. डी. एस. बघेल






कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

भारतीय जनजातियों का समाजशास्त्र

(Sociology of Indian Tribes)

NEP के पाठ्यक्रमानुसार

समाजशास्त्र
[SOCIOLOGY]

B.A. : Third Year [Minor]

2023-24 से प्रभावी

माइनर

भारतीय जनजातियों का समाजशास्त्र
[Sociology of Indian Tribes]

लेखक

डॉ. डी.एस. बघेल

एम.ए., पीएच.डी.

पूर्व आचार्य - समाजशास्त्र

बोदा रोड, सिविल लाइन्स, रीवा (म.प्र.)

कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

भारतीय जनजातियों का समाजशास्त्र (Sociology of Indian Tribes)

डॉ. डी.एस. बघेल

❑ प्रकाशक :
कैलाश पुस्तक सदन
हमीदिया मार्ग, भोपाल - 462 001
फोन : (0755) 2535366,62602-21898
email : kailashpustak@gmail.com
website : www.kpsbhopal.com

❑ संस्करण : 2024

❑ ISBN : 978-93-5832-701-4

❑ मूल्य : 250/- रुपये

❑ मुद्रक :
वैल प्रिंट्स प्रा. लि., भोपाल

❑ लेज़र टाईप सेटिंग :
ट्रांस लेज़र, भोपाल
TL3558

दो शब्द

जनजातीय समाज राष्ट्रीय संस्कृति की धरोहर है, जिससे किसी राष्ट्र की आत्मा को जाना जा सकता है। भारतीय संदर्भ में यदि राष्ट्र को जानना हो तो जनजातीय समाज को जानना आवश्यक है। वे प्रकृति के उपासक हैं तथा प्रकृति ही उनके जीवन के विविध आयामों का संचालन करती है। वे पर्यावरण के संरक्षक और सम्वर्धक हैं। वे राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय चरित्र के जीवन प्रतीक हैं। आज़ादी के बाद भारतीय संविधान और अन्य अनेक योजनाओं के माध्यम से उनके कल्याण के लिए पिछले दशकों से निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं।

आज विश्वविद्यालयों में अनेक स्तरों पर तथा प्रतियोगी परीक्षाओं में जनजातीय समाज के अध्ययन की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। इसी को ध्यान में रखकर इस पुस्तक को लिखा गया है। आशा है, पुस्तक के माध्यम से जनजातीय समाज को समझने और इन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने में मदद मिलेगी।

● डॉ. डी.एस. बघेल

पाठ्यक्रम

Code - A3-SOCI-2T **समाजशास्त्र IIIrd Yr. [Minor]**

भारतीय जनजातियों का समाजशास्त्र
(Sociology of Indian Tribes)

अधिकतम अंक : 30 + 70
न्यूनतम उत्तीर्ण अंक : 35

इकाई–1 **1. जनजातियों का परिचयात्मक विवरण;** 1.1 जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति, अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएँ; 1.2 जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति में अंतर; 1.3 जनजातीय जनांकिकी एवं वर्गीकरण ● भौगोलिक, ● भाषायी, ● आर्थिक, ● प्रजातीय।

इकाई–2 **1. जनजातीय समाज, सामाजिक, सांस्कृतिक परिदृश्य;** 1.1 जनजातीय परिवार; 1.2 जनजातीय विवाह; 1.3 जनजातीय नातेदारी व्यवस्था; 1.4 जनजातीय महिलाओं की परिवर्तनशील स्थिति।

इकाई–3 **1. जनजातीय आर्थिक एवं राजनीतिक संगठन;** 1.1 जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ; 1.2 जनजातीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप ● शिकार एवं खाद्य संग्रहण, ● पशुपालन, ● कृषि, ● वनोपज एवं हाट बाजार; 1.3 जनजातीय अर्थव्यवस्था में परिवर्तन एवं उत्तरदायी कारक

2. परम्परागत जनजातीय राजनीतिक संगठन; 2.1 73वां संविधान संशोधन अधिनियम एवं वर्तमान जनजातीय राजनीतिक संगठन।

इकाई–4 **जनजातीय समस्याएँ: कारण एवं समाधान :** 1. अशिक्षा एवं बेरोजगारी; 2. निर्धनता एवं ऋणग्रस्तता; 3. कुपोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ; 4. विस्थापन एवं प्रवास; 5. प्रमुख जनजातीय आंदोलन; 6. जनजातीय विकास हेतु संवैधानिक प्रावधान; 7. शासन द्वारा संचालित कल्याण कार्यक्रम एवं उनका मूल्यांकन।

इकाई–5 **मध्यप्रदेश की प्रमुख जनजातियाँ-** आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक संगठन : 1. गोंड 2. भील, 3. भारिया, 4. सहरिया, 5. कोरकू, 6. बैगा।



अनुक्रमणिका



1

जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति : अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं

(TRIBE AND SCHEDULED TRIBE : MEANING, DEFINITION AND CHARACTERISTICS)

जनजाति
(Tribe)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानव समाज हजारों और लाखों वर्षों की विकास प्रक्रिया से गुजरता हुआ वर्तमान अवस्था तक पहुँचा है। प्रारम्भिक अवस्था का मानव जंगलों और पहाड़ों में निवास करता था। फल-फूल और शिकार की सहायता से अपने जीवन का निर्वाह करता था। आखेट और पशुपालन अवस्था के बाद भी मानव का भटकना समाप्त नहीं हुआ। जैसे ही मानव समाज ने कृषि का आविष्कार किया, वह एक स्थान पर स्थायी तौर से निवास करने लगा। सम्पूर्ण मानव समाज का विकास एक ही साथ नहीं हुआ। कुछ समाज विकास की परम्परा में आगे बढ़ गए तो दूसरे समाज काफी पीछे रह गए। अनेक मानव समाज आज भी आखेट अवस्था में ही निवास कर रहे हैं। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया मानव समाज की आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं का भी विकास होता गया। जब ये झुण्ड और अधिक विकसित हो गए तो जनजाति के नाम से सम्बोधित किए जाने लगे। अंग्रेजी के 'ट्राइब' शब्द के लिए हिन्दी में अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इन शब्दों में वन्य जाति, जनजाति, आदिवासी, वनवासी और आदिम जाति मुख्य हैं। यहाँ पर 'ट्राइब' शब्द के लिए जनजाति शब्द का प्रयोग किया जाएगा।

जनजाति से संबंधित शब्दावली
(Terminology Relating to Tribe)

जनजातियाँ भारतीय समाज और संस्कृति की जीवन्तता के प्रतीक हैं। यदि इन्हें भारत माता का सच्चा प्रहरी कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भारतीय समाज और संस्कृति की रक्षा आज इन्हीं के द्वारा की जा रही है। ये भारत माता के सच्चे सपूत हैं। इन जनजातियों को अनेक नामों से संबोधित किया जाता है। जनजाति का अर्थ क्या है, जनजाति की परिभाषा क्या है और जनजाति की विशेषता क्या है? इसकी विवेचना करने से पहले जनजाति से संबंधित शब्दावली को जान लेना आवश्यक है। यह शब्दावली निम्न है -

1. **आदिवासी- श्री हरिशचन्द्र उत्प्रेती** ने अपनी पुस्तक 'Tribes in India' में लिखा है कि प्रसिद्ध मानवशास्त्री रिजले, लेके, ग्रिगसन, सोलर्ट, टेलट्स, सेनविक, मार्टिन तथा भारतीय समाज सुधारक ठक्कर ने जनजातियों के लिए आदिवासी शब्द का प्रयोग किया है।

2. **प्राचीन जनजाति - श्री जे.एच. हट्टन** ने Census Report of India 1931. Vol l Part I, में इन्हें प्राचीन जनजातियाँ (Primitive Tribe) कहकर सम्बोधित किया है।

3. **आदिस्वामी-** प्रसिद्ध मानवशास्त्री एल्विन (Elvin, v) ने अपनी पुस्तक The Baiga (1939) London, p.p. 519 में जनजातियों के लिए आदिस्वामी (Aboriginals) कहा है।

4. **वन्य जाति**- बेन्स (Baines, A.) ने Census of India, 1891, Vol,I, Part, pp. 158, 320 में जनजातियों के लिए वन्यजाति (Jungle Tribe, Forest Tribes or Folk) कहकर सम्बोधित किया है।

1961 की जनगणना Census of India Vol. I Part VB (II) pp. 2-3 में लिखा है कि 1921 से लेकर विभिन्न जनगणना प्रतिवेदनों में जनजातियों के लिए अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस समुदाय के सामाजिक स्तर के अनुसार कई प्रकार हैं। जैसे -

(a) प्राचीन जनजाति (Primitive Tribe)

(b) प्राचीन जनजाति अथवा आदिस्वामी (Primitive Tribe or Oboriginals)

(c) आदिम जनजाति (Aboriginal Tribe)

(d) आदिम और पहाड़ी जनजाति (Oboriginal and Hill Tribe)

(e) जंगली जनजाति (Forest Tribe)

(f) पहाड़ी जनजाति (Hill Tribe)

(g) जंगली तथा जिप्सी जनजाति (Forest and Gypsy Tribe)

(h) पिछड़ी जनजाति (Backward Tribe)

(i) अपराधी जनजाति (Criminal Tribe)

(j) घुमंतू जनजाति (Wondering Tribe)

जनजाति की परिभाषा
(Definitions of Tribe)

जनजाति की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं -

(1) **पिडिंग्टन** - "हम जनजाति को व्यक्तियों के एक समूह के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, जो कि समान भाषा बोलता हो, समान भू-भाग में निवास करता हो तथा जिसकी संस्कृति में एक विशेष समरूपता रहती हो।"

(2) **नोट्स एण्ड केरीज आन एन्थ्रोपोलाजी** - "एक ऐसा समुदाय जो किसी भू-भाग का स्वामी हो, जो राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से शृंखलाबद्ध स्वायत्त शासन चला रहा हो, उसे "जनजाति" कहते हैं।"

(3) **मजूमदार** - "जनजाति परिवारों या परिवार समूहों के संकलन का नाम है। इनका एक सामान्य नाम होता है, ये एक ही भू-भाग में निवास करते हैं। एक ही भाषा बोलते हैं और विवाह, उद्योग तथा व्यवसाय में एक ही बातों को निषिद्ध मानते हैं। एक दूसरे के साथ व्यवहार सम्बंध में भी इन्होंने अपने पुराने अनुभवों के आधार पर कुछ निश्चित नियम बना लिए हैं।"

(4) **गिलिन और गिलिन** - "जनजाति किसी भी ऐसे अशिक्षित स्थानीय समूह को कहा जाता है जो एक सामान्य भू-भाग पर निवास करता है, एक सामान्य भाषा बोलता है तथा एक सामान्य सांस्कृतिक व्यवहार करता है।"

(5) **इम्पीरियल गजेटियर** - "जनजाति परिवारों का संकलन है। इसका एक सामान्य नाम होता है, सामान्य भाषा बोलते हैं तथा जो सामान्य प्रदेश में रहते हैं या रहने का दावा करते है और सामान्यतया अन्तर्विवाह नहीं होता है। भले ही आरम्भ में ऐसा करता रहा हो।"

"इस प्रकार जनजाति एक सामाजिक समूह है जो सामान्यतया एक निश्चित क्षेत्र में पाया जाता है और जिनमें एक निश्चित भाषा, सांस्कृतिक सजातीयता और एकीकृत संगठन पाया जाता है।"

जनजाति की विशेषताएँ
(Characteristics of Tribe)

जनजाति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

(1) जनजाति परिवारों या परिवारों के समूहों के संग्रह का नाम है।

(2) इसका एक सामान्य नाम होता है।

(3) ये जंगल, पहाड़, मैदान आदि किसी विशिष्ट क्षेत्र में फैले हुए होते हैं।

(4) ये एक प्रकार की भाषा या बोली बोलते हैं।

(5) विवाह, व्यवसाय, भोजन तथा अन्य वस्तुओं के सम्बंध में निश्चित निषेधों का पालन करते हैं।

(6) यह सामान्यतया एक अन्तर्विवाही समूह होता है अर्थात विवाह सामान्यतया उसी समूह के अन्तर्गत् किये जाते हैं।

(7) अनेक बार एक जनजाति टोटम या क्षेत्र के आधार पर अनेक भागों में विभाजित होते हैं जो अन्तर्विवाही हो भी सकते हैं और नहीं भी।

(8) जनजाति एक राजनैतिक इकाई भी होती है, क्योंकि जनजातीय संगठन या तो वंशानुगत प्रमुख के द्वारा मान्यता प्राप्त होता है या गोत्र प्रमुख या वंशानुगत राजाओं के द्वारा एक समूह में संगठित किया जाता है।

(9) आर्थिक क्षेत्र में जनजाति अनेक प्रमुख द्वितीयक तथा सहायक व्यवसायों में संलग्न रहती है।

(10) सामाजिक संगठन के क्षेत्र में वन्य जातियाँ सिर्फ रक्त के बन्धनों द्वारा ही बँधी हुई नहीं हैं, अपितु निवास, परिवार और पारस्परिक सहयोग जैसे बंधनों के द्वारा भी बँधी हुई होती है।

(11) धर्म और जादू जनजातीय जीवन के अभिन्न अंग हैं। भले ही इसका स्वरूप आत्मवाद या टोटमवाद के रूप में हो।

(12) सांस्कृतिक प्रतिमानों और सामाजिक संगठन से जनजाति संगठन एकीकृत रहता है।

डी.एन.मजूमदार:-

1. **जनजातीय समाज में क्षेत्रीयता** (Locality) का तत्व अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होता है। अर्थात् जनजातीय समाज एक निश्चित क्षेत्र में निवास करता है। जनजाति के लोग ज़िस क्षेत्र में निवास करते हैं, उसे अपना घर समझते हैं।

2. प्रत्येक जनजातीय समाज एक नातेदारी व्यवस्था (Kinship system) के द्वारा आपस में सम्बद्ध होता है। यद्यपि यह निश्चित नहीं है कि एक जनजाति के सभी व्यक्ति एक दूसरे के नातेदार हों, किन्तु उनमें नातेदारी की एक व्यवस्था पाई जाती है।

   (a) जनजातीय समाज में विवाह जाति के अन्दर ही किये जाते हैं, तथा

   (b) जनजाति के सदस्य गोत्रों तथा उपगोत्रों में विभाजित होते हैं।

3. जनजातीय समाज की तीसरी विशेषता भाषा (Language) होती है। अर्थात् प्रत्येक जनजाति की एक निश्चित भाषा होती है तथा जनजाति के सदस्य उसी भाषा को बोलते हैं।

4. जनजातीय समाज की एक राजनैतिक व्यवस्था होती है। इस व्यवस्था की अभिव्यक्ति जाति पंचायतों के रूप में होती है।

एहरेनफेल्स:-

1. एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र, जिसके कारण यह अन्य जातियों से पृथक् रहता है।

2. अधिक आत्मनिर्भर समाज।
3. एक निश्चित आर्थिक प्रणाली, जो जनजातीय समाज को एकात्मा की इकाई के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करती है।
4. निश्चित बोली या भाषा भी जनजातीय समाज की एक विशेषता है। इस भाषा के कारण जनजातीय समाज में चेतना का विकास होना है।
5. जनजातीय समाज राजनैतिक दृष्टि से संगठित होता है। राजनैतिक संगठन की अभिव्यक्ति जातीय पंचायत के रूप में होती है।
6. जनजाति के सदस्यों में सामूहिकता की भावना पाई जाती है। इस भावना को 'हम की भावना' कहकर भी सम्बोधित किया जाता है।
7. जनजातियों में एक निश्चित कानून-व्यवस्था होती है। इस कानून का आधार रुढ़ियाँ होती हैं, जो आदिकाल से चली आती हैं।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जनजाति की विविध परिभाषाएँ लिखकर उनकी विशेषताएँ लिखिए।
2. मध्यकाल व ब्रिटिश शासन में जनजाति व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जनजाति की परिभाषा लिखिए।
2. जनजाति की विशेषताएँ लिखिए।
3. मध्यकाल की जनजाति का वर्णन कीजिए।
4. अनुसूचित जनजाति की परिभाषाएँ लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. ट्राइब शब्द का अर्थ है-

   (अ) वन्यजाति (ब) जनजाति (स) आदिवासी (द) उपरोक्त सभी

2. 'Tribes in India' पुस्तक के लेखक ---------- थे-

   (अ) हरीशचंद्र उत्प्रेती (ब) हट्टन (स) बेन्स (द) एल्बिन

3. जनजाति की विशेषताएँ हैं-

   (अ) परिवारों का समूह

   (ब) एक प्रकार की बोली बोलने वाले लोग

   (स) जंगल, पहाड़, मैदान विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले

   (द) उपरोक्त सभी

उत्तर - 1. (द), 2. (अ), 3. (द)।



2

जनजाति और अनुसूचित जनजाति में अंतर
(DIFFERENCE BETWEEN TRIBE AND SCHEDULED TRIBE)

जाति एवं जनजाति में भेद
(Distinction in Tribe and Caste)

एक सामान्य व्यक्ति जाति और जनजाति में कोई अंतर नहीं मानता है। उसके अनुसार जाति और जनजाति समानार्थी हैं, किन्तु समाजशास्त्री और मानवशास्त्री के लिए जाति और जनजाति समानार्थी न होकर दोनों पृथक्-पृथक् अवधारणाएँ हैं। इस प्रकार जाति वंशानुक्रमण पर आधारित समूह तथा जनजाति एक सामाजिक समूह है।

समानताएँ :- जाति और जनजाति में कुछ समानताएँ हैं। ये समानताएँ निम्नलिखित हैं -

1. जाति और जनजाति दोनों ही परिवारों तथा परिवार समूहों का संग्रह है।
2. जाति और जनजाति दोनों का ही एक सामान्य नाम होता है।
3. जाति और जनजाति दोनों की एक पारिवारिक संरचना और संस्तरण होता है।
4. जाति और जनजाति दोनों की ही एक निश्चित विवाह पद्धति होती है।
5. जाति और जनजाति दोनों की ही एक निश्चित व्यावसायिक पहचान होती थी, यद्यपि इसमें परिवर्तन हो रहा है।
6. जाति और जनजाति दोनों ही अन्तर्विवाही समूह हैं। अर्थात् जाति अपनी ही जाति के अन्दर विवाह करती है और जनजाति भी अपनी ही जाति के अन्दर विवाह करती है।
7. उत्पत्ति की दृष्टि से भी जाति और जनजाति दोनों में समानता है। दोनों अपनी उत्पत्ति एक काल्पनिक व्यक्ति/वस्तु से मानते हैं।
8. दोनों में ही गौत्र तथा कुल की प्रथा पाई जाती है। दोनों ही अपने गौत्र तथा कुल को पवित्र मानते हैं तथा उसकी पूजा करते हैं।
9. जाति और जनजाति समकालीन सन्दर्भ में एक राजनैतिक इकाई के रूप में भी काम करते हैं। अर्थात् दोनों ही दबाव समूह के रूप में अपने उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयास करते हैं।
10. जाति और जनजाति दोनों का ही एक निश्चित सामाजिक संगठन होता है। जाति और जनजाति दोनों ही इसी सामाजिक संगठन के दायरे में बँधे रहते हैं।
11. जाति और जनजाति निश्चित देवी-देवताओं की पूजा करते हैं तथा निश्चित व्रत और त्योहारों का पालन करते हैं।

भिन्नताएँ- जाति और जनजाति में उपर्युक्त समानताओं का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि दोनों अवधारणाएँ एक ही हैं तथा दोनों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। वास्तव में जाति और जनजाति दो अलग-अलग अवधारणाएँ हैं तथा दोनों ही एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। इन दोनों ही अवधारणाओं में जो प्रमुख अन्तर अथवा भिन्नता है, वह इस प्रकार है -

1. जनजाति एक भौगोलिक अवधारणा है। अर्थात् जनजाति के व्यक्ति एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं, जबकि जाति की कोई निश्चित भौगोलिक क्षेत्र जैसी अवधारणा नहीं है। एक ही जाति के व्यक्ति विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करते हैं। अर्थात् जनजाति का एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र होता है, जबकि जाति का कोई निश्चित विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र नहीं होता है।
2. जनजाति के व्यक्ति एक विशिष्ट भाषा बोलते हैं तथा उनकी एक विशिष्ट भाषा होती है, जबकि जाति की कोई विशिष्ट भाषा नहीं होती है।
3. जाति का जन्म व्यावसायिक सिद्धान्त के आधार पर हुआ है, जबकि जनजाति का जन्म का आधार व्यवसाय नहीं है।
4. शिक्षा, नौकरी तथा व्यवसाय आदि में जनजाति जाति की तुलना में एक पिछड़ा हुआ समूह है।
5. जनजातियों में एक मुखिया होता है तथा समाज में उसकी प्रभुसत्ता होती है। जाति का न तो कोई मुखिया होता है और न ही उसकी कोई प्रभुसत्ता ही होती है।
6. जाति की तुलना में जनजातियों का संगठन अधिक सशक्त होता है, चाहे क्षेत्र राजनैतिक हो, सामाजिक या आर्थिक।
7. जनजातियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि/कृषि कार्य है, जबकि जातियों के व्यवसाय में ऐसी निश्चितता नहीं है।
8. जनजातियों के समाज में धर्म और जादू का जितना महत्व है, जातिगत समूहों में ऐसा नहीं है।
9. जाति में सामाजिक संस्तरण पाया जाता है, किन्तु जनजाति में सामाजिक संस्तरण की भावना उतनी प्रबल नहीं होती है।
10. जाति व्यवस्था में धार्मिक और नागरिक अयोग्यताएँ पाई जाती हैं, किन्तु जनजाति में ऐसी किसी प्रकार की अयोग्यता नहीं पाई जाती है।

जाति-जनजाति निरन्तरता
(Caste-Tribe Continum)

जाति का ऐतिहासिक आधार और उत्पत्ति संबंधी अनेक मतांतरों से सभी परिचित हैं। कठोर बंद व्यवस्था के रूप में जाति-व्यवस्था अपने आंतरिक पदक्रम के ताकत से टिकी रही है, जनजाति की जाति व्यवस्था से अलग 'पहचान' क्या हो? यह प्रश्न प्रासंगिक है, अन्तर और समानतायें निश्चित करने के कुछ आधार विद्वानों ने सुझाये हैं -

(1) धर्म, (2) भौगोलिक पृथकता,

(3) भाषाएँ एवं बोली, (4) आर्थिक प्रकारिकी में निर्धनता एवं सापेक्षिक,

(5) राजनैतिक संस्था, (6) नृतत्वीय बोध।

(1) **धार्मिक विभिन्नतायें एवं विश्वास-** टोटेमवाद और जातिवाद की मान्यता जनजातियों में रही है। आदिवासी मानस जीववादी है और हिन्दूकरण के चपेट के बावजूद सघन स्तर पर प्रकृति, आत्मा और व्यापक जड़-चेतन से संबंधित विश्वासों को मानने वाला। पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट के अध्ययन के अनुसार धर्म मानने वाले समुदायों का निम्न स्वरूप है -

(a) हिन्दू धर्म मानने वाली जनजातियाँ, 378 जनजातियाँ 59.4%

(b) ईसाई धर्म मानने वाले जनजातीय समुदाय 149 जनजातियाँ 23.4%

(c) इस्लाम अनुयायी जनजातीय समुदाय 19 जनजातियाँ - 3.0%

(d) बौद्धमत अनुयायी 44 जनजातियाँ - 6.9%

(e) आदिवासी धर्म 292 जनजातियाँ - 45.9%

कई जनजातियाँ हिन्दू धर्म मानने के साथ अपने अन्य आदिवासी धर्म को भी मानती हैं (90 जनजातियाँ आदिवासी एवं हिन्दू), ईसाई धर्म और आदिवासी धर्म दोनों मानने वाले 90 जनजातियाँ (21%) 1961 के पश्चात् आदिम धर्म (Tribal Religion) के बजाय अन्य बड़े अनुयायी वाले धर्मों को मानने वाले आदिवासी समुदायों में वृद्धि हुई है। उत्तर-पूर्वी भारत इसका बड़ा उदाहरण है, जहाँ ईसाई धर्म (Christianity) को मानने वाले जनजातीय बहुल प्रदेश मिजोरम में 88.46% जनजातियाँ ईसाई धर्म की हैं, नगालैण्ड में 93.09%, मेघालय में 66.32% ईसाई जनजाति के थे। इसी तरह झारखण्ड राज्य में 11.87% ईसाई थे। अण्डमान द्वीप में भी 92.6% आदिवासी मूल के लोग ईसाई थे। इसी बीच मूल आदिम धर्मों (Donyipolo जैसे) की भी अधिक जनसंख्या दर्ज हुई। 1961-81 के दौरान जनगणना आँकड़ों से पता चलता है कि अन्य धर्म (Other Religion) के तौर पर आदिवासी मूल धर्मों की गिनती की गयी जो 34.34 प्रतिशत से आगे 1981 जनगणना में वृद्धि 66% गिनी गयी। हिन्दू धर्म से ईसाई धर्म में धर्मान्तरण, ईसाईकरण आदिवासी इलाकों में राजनैतिक प्रश्न के रूप में आंदोलन एवं प्रति आंदोलन (Counter Movement) कहा जा सकता है। आदिवासी मूल धर्मों में वापसी भी तेजी से हुई है जो सरना, जाहरा मुण्डा, हो और संथाल जनजाति में पाया गया। बिहार, उड़ीसा में आदिवासियों को हिन्दू-धर्म में वापस लाने का अभियान उत्तर-पूर्व की तरह चल रहा है। मध्यप्रदेश में गोंडी धर्म, 127926 व्यक्ति ने जो गोंड जनजाति के हैं, अपना धर्म दर्ज कराया (1981 जनगणना)।

(1) पहचान निर्माण - विभिन्न जनजातियाँ अपनी पहचान को रखते हुए सार्वदेशिक हिन्दू धर्म के दायरे में आती हैं। 1981 की जनगणना में 87.05% जनजातियाँ हिन्दू धर्म में गिनी गईं। 1971-81 के दौरान 89.39 से 87% हिन्दू धर्म के जनजातियों की प्रतिशत कमी 2% रही थी। यह 2% वृद्धि ईसाई धर्म की मुख्यतया उत्तर-पूर्वी राज्यों में प्रकटत: हुई। वैसे बौद्ध धर्म मानने वालों की जनजातियों की जनसंख्या में 0.60% वृद्धि इस धर्म के कुल अनुयायी जनसंख्या में पाई गयी।

जनजातीय समुदायों का हिन्दू धर्म में आकर्षण सदैव रहा है। अपने टोटम और कुल देवता के बाद हिन्दू महान देवी-देवताओं के आयोजनों विशेषकर हिन्दू त्यौहार सर्वप्रिय हैं। हिन्दू धर्म की मान्यतायें शास्त्रीय परम्परा और संस्कृतनिष्ठ ऋचायें भले ही मौखिक परम्परा में पूर्ण स्वीकृति नहीं हो पाई हैं। देश भर में जनजातियाँ टोटम स्तर की कुछ अवशेषों से सम्बद्ध हैं। जीववाद, टोटम, हिन्दू वृहत परम्परा एवं लघु परम्परा के घुलनशील अतीत का अनुभव हिन्दू जाति एवं जनजाति के मध्य कठोर दीवार नहीं रखता अपितु समारोपण ऐतिहासिक रूप से होता रहा है।

जनगणना में अपने धर्म या मत तथा सम्प्रदाय को स्वतंत्र रूप से दर्ज कराने की पात्रता सभी भारतीयों की है। अत: धर्म, जाति और जनजाति के अलग कोटि संधारण हेतु आधार नहीं है। विद्यार्थी, वेरियर एलविन (1943), जी.एस. धुर्ये, एफ.जी. वेली, राम आहूजा ने इस पर व्यापक प्रकाश डाला है।

(2) भौगोलिक एकाकीपन- भारतीय जनजातीय समुदाय बिखरा हुआ कुनबा है जो पूरे देश की बहुलतावादी संस्कृति को भी पोषित करता है। वे जंगलों और सुदूर पहाड़ों से बाहर निकलते जा रहे हैं। एकान्तवासिकता (Isolation) लगभग समाप्त है। बस्तर के घने जंगलों में पक्की सड़कें हैं और रेलवे, खनिज प्रोजेक्ट बैलाडीला तथा इसी तरह नर्मदा घाटी परियोजना क्षेत्र में बसी मध्य क्षेत्र की जनजातियों को अपने भौगोलिक दायरे शहरी क्षेत्रों तक प्राप्त हुए हैं। जनसंख्या की लगातार वृद्धि से एकांतवास टूटा है। आज भारत का कोई भी भौगोलिक प्रदेश (Region) नृजाति संग्रहालय (Ethnomusuem) नहीं रह गया

है। केवल सरकारी राजस्व एवं आदिम जाति परियोजना के प्रोजेक्ट मैप में विशिष्ट अधिसूचित क्षेत्र (Spacial area, scheduled area) चिन्हित किया गया है। पहाड़ और घने जंगल में रहना पारिस्थितिकीय विनाश से लगातार कम हुआ है। पिछले वर्षों में संचार और परिवहन साधनों में इजाफा हुआ है जिससे कि हम जनजाति समूह को शहरी मध्य इलाके में पाते हैं।

मध्य भारत में भौगोलिक सम्पर्क लगातार सघन हुआ है। व्यवसाय, खेती, कारीगरी ने मुख्य प्रव्रजनशीलता (Migratory nature) को बढ़ाया है। 56.8 प्रतिशत जनजातीय समुदाय इसी क्षेत्र में रहते थे (1971)। आज भील, भूमिया, कोरकू, कोली आदि अनेक शहरी क्षेत्रों में निरन्तर प्रवासी और मिले हुए पड़ोसी (Neighbour Communities) हो चुके हैं।

दक्षिण, उत्तर-पश्चिम सभी प्रदेश में बिजली, कारखाने व अन्य परियोजना क्षेत्रों के कारण भौगोलिक सम्मिश्रण विशेषता बन गयी है।

उत्तर-पूर्वी भारत परस्पर सम्पर्कों और भौगोलिक निकटता का और सघन क्षेत्रों में "नैकट्य" स्थापित तथ्य है अत: भौगोलिक एकाकीपन कम होते जाने से जाति-जनजाति (Caste-Tribe) अलगाव की धारणा स्वीकार करने योग्य नहीं है। पारिस्थितिकीय असन्तुलन वर्तमान की पीड़ा है, जिसे जाति-जनजाति दोनों छोरों पर महसूस किया जा सकता है।

(3) भाषा और बोली - जनजातियाँ जाति व्यवस्था के संरचनात्मक विभेद से किस तरह अलग हैं? इसे स्थानीय बोली और भाषा का आधार मानकर अधिक स्वीकार्य दशायें नहीं हैं। अधिकांश जनजातीय समुदाय इण्डो-आर्यन भाषा परिवार की बोली बोलते हैं। 163 समुदाय इण्डो आर्यन भाषा परिवार को अपनाये थे, 107 जनजातियों की बोली द्रविण भाषा परिवार की थी। 1981 की जनगणना में 143 समुदाय तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार के थे, आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार के 30 जनजातीय समुदाय थे। अण्डमानी बोली की 4 जनजातियाँ 1981 की जनगणना के भाषा सर्वेक्षण में पाई गयी थीं।

(4) आर्थिक पिछड़ापन- आर्थिक स्तरण और कृषकीय ढाँचा अधिकांश जनजातियों के खेतिहर समूह होने से मायने रखता है। जाति और जनजाति एक ही पंक्ति के दो विपरीत छोरों को देखना चाहिये। उपलब्ध कृषि भूमि और उस पर निर्भर लोगों का अनुपात देखा जाता है। यह अनुपात जितना अधिक होगा उतना ही वह समूह जनजातीय छोर के करीब होगा। इसके विपरीत वे लोग जिनका भूमि पर अधिकार एक 'निर्भरशील सम्बन्ध' द्वारा प्राप्त है जैसे काश्तकारी, बटाईदारी इत्यादि का अनुपात जितना अधिक होगा वह समूह जाति छोर के करीब होगी।

वेली ने **'कास्ट एण्ड इकोनोमिक फ्रंटियर'** में उड़ीसा राज्य के कोंदमाल का अध्ययन किया जहाँ कि कोंद जनजाति और उड़ीसा हिन्दू जातियों के आर्थिक संस्तरण, सम्बन्धों पर अध्ययन केन्द्रित किया। फलस्वरूप जाति-जनजाति के **छोर** (Frontiers) को देखा गया। आर्थिक ढाँचे का जनजातीय छोर दण्डात्मक (Segmentary) है। खोंड जनजाति का भूस्वामी गौत्र स्थापन्न होता है। इसके अलग हिन्दू उड़ीसा सामाजिक संस्तरण में असमान और आर्थिक रूप से कई एक अन्तर निर्भर जातियों से बना है। एफ.जी. वेली (1960) ने पाया है कि रेखाकार निरन्तरता (Linear Continum) के रूप में जाति-जनजाति के आमने-सामने की स्थिति अन्तरनिर्भर मॉडल (Interactional Mode) में देखें -

(1) दोनों ही समाजों (कोंड और उड़िया हिन्दू वीसी पारा निवासी) में भू-स्वामी और भूमिहीन मिलते हैं।

(2) ग्राम सीमा और गौत्र सीमा (Village teritory & clan teritory) आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु जाति-जनजाति निरन्तरता का संदर्श हो सकता है।

(3) जनजातियाँ 'अलगाव की एकता में' तथा 'जाति सुव्यवस्थित एकता' में बँधी हुयी थी। यह अन्तर कहाँ खत्म होता है निश्चित नहीं हो पाता अत: जनजातीय अर्थव्यवस्था आगे चलकर राष्ट्रीय आर्थिक ढाँचे का ही भाग हो जाती है जिसमें जाति भी सहभागी बनी हुयी है। आर्थिक पिछड़ेपन के आधार, अनुसूचित जनजातियों की सूची का विस्तारण और कई नए का समावेशन होता है।

अत: उड़ीसा की वीसी पारा गाँव में लम्बा सघन क्षेत्र कार्य एफ.जी. वेली का मानवशास्त्रीय योगदान है साथ ही आर्थिक प्रणाली के आदिम, कृषकीय भूमि व्यवस्था, राजनैतिक संगठन का गहन विश्लेषण जो Postulate Continum निरन्तरता उपागम से समझने का स्तुत कार्य है। कोंडमाल इलाके की गौत्र व्यवस्था आर्थिक प्रणाली को विभाजक बनाती है।

आर्थिक ढाँचे का विविधीकरण पिछले वर्षों में लगातार हुआ, फलत: जाति, जनजाति का अन्तर कमतर हुआ है। जाति-जनजातीय आर्थिक निर्धारण में प्रभेद के तत्व कृषक समुदाय के रूप में जनजातियों के अपने बहुल आबादी वाले इलाके में देखे गए हैं। जनजाति कृषक की कोटियाँ भिन्न हैं। भूमिज अधिक कृषक हैं इसलिये बेहतर रूपांतरित हैं। खेती का स्तर तय करता है कि कृषकीय ढाँचे में जनजाति का स्थान कौन-सा है? आज अधिकतर भारतीय जनजातियों ने देश के हिन्दू किसानों के समान स्थायी खेती अपना लिया है। दूसरा छोर है उत्तरपूर्वी क्षेत्र जहाँ कुछ क्षेत्रों में झूम खेती का भी साथ-साथ होना है। अच्छा खेतिहर बनाने में कृषि विस्तार सेवाओं और तकनीक रूपांतरण (Transfer of Techniques) का बड़ा हाथ रहा है। पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट के सर्वेक्षण में पाया गया है कि जनजातियाँ परम्परागत व्यवस्था से नये व्यवसायों में पहुँच रहीं हैं। जंगलों के क्षेत्रफल में कमी और वाइल्ड लाइफ ह्रास से 24.08% शिकारी व संग्रहकारी आजीविका में 1961-81 के दौरान कमी हुयी है। अन्य वर्णन यहाँ दिया गया है -

पशु, पक्षी पकड़ने के काम में कमी	36.84% तक	1961-81
पशुपालन धंधों में कमी	12.5% तक	
झूम खेती में कमी	13.14% तक	

स्थायी खेती वाले कामों में लगातार वृद्धि हुयी है। जनजातीय अर्थव्यवस्था का विविधीकरण होता जा रहा है। जनजातीय कलायें और शिल्प में 25.58% की कमी पायी गयी। 1961-81 के दौरान खनन क्षेत्र में रोजगार 60% तक बढ़ा। 87% जनजातीय कर्मकार प्राथमिक क्षेत्र में कार्यरत थे। 1981 में 54.43 प्रतिशत कृषक (Cultivator) थे, 32.67% खेत मजदूर थे, 5% तक गैर कृषि व्यवसायों में लगे थे।

जनजातीय समुदायों का खेतिहर प्रधान होना एक प्रकार से खेती करने वाले हिन्दू जातियों का समवर्ती समूह है अत: निरन्तरता दोनों स्तर पर पाई जाती है।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जाति और जनजाति में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. जाति और जनजाति में निरन्तरता स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जाति और जनजाति में समानताएँ लिखिए।
2. जाति और जनजाति में भिन्नताएँ स्पष्ट कीजिए।
3. जाति और जनजाति में धार्मिक विभिन्नताएँ स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. जाति और जनजाति में समानताएँ-
   (अ) परिवारों का समूह है (ब) दोनों का ही सामान्य नाम है
   (स) दोनों अन्तर्विवाही समूह है (द) उपरोक्त सभी

2. 'कास्ट एण्ड इकोनामिक फ्रंटियर' में अयन किया गया-
   (अ) उड़ीसा (ब) छत्तीसगढ़ (स) मध्यप्रदेश (द) इनमें से कोई नहीं

3. आदिवासियों में बहुभाषा विज्ञान है, उपरोक्त कथन --------- का है-
   (अ) मजूमदार (ब) के. सुरेश सिंह (स) आर.सी. दत्ता (द) सुरजेवाला

उत्तर - 1. (द), 2. (अ), 3. (ब)।



3

जनजातियों का भौगोलिक एवं भाषायी वर्गीकरण
(GEOGRAPHICAL AND LINGUISTIC CLASSIFICATION OF TRIBES)

भारत में जनजातियों का एक समृद्धशाली इतिहास रहा है। भारत के प्रारंभिक निर्माण से ही जनजातियाँ यहाँ विद्यमान थी। भारत में जनजातियों का भौगोलिक एवं भाषायी वर्गीकरण निम्न प्रकार है।

अफ्रीका को छोड़कर भारत में अनुसूचित जनजातियों की संख्या सबसे अधिक है। जनगणना प्रतिवेदनों के अनुसार भारत में कुल जनसंख्या का 7.67 प्रतिशत भाग अनुसूचित जनजातियों का है। ये अनुसूचित जनजातियाँ अधिकांशत: ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती हैं। भारत में अनुसूचित जनजातियों की जो सूची है, उसमें 450 से अधिक इस समुदाय के नाम दर्ज हैं। इनमें कुछ मूल जनजातियाँ हैं तथा कुछ इनके उपविभाग हैं। भारत में जनजातियों का वितरण एक समान नहीं है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ जनजातियों का प्रतिशत 90.00 से अधिक है। इसके विपरीत कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं, जहाँ जनजातियों की जनसंख्या बिलकुल ही नहीं है। भारत में प्राय: सभी राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में जनजातियों का अस्तित्व है, अन्तर केवल मात्रा का है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में जनजातियों के वितरण में समानता का अभाव है। कहीं इनका घनत्व अधिक है, तो कहीं कम। अनेक विद्वानों, समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने भारत में जनजातियों के भौगोलिक वितरण को रेखांकित किया है। कुछ विद्वानों के विचार निम्नलिखित हैं—

(1) गुहा के अनुसार— गुहा ने भारतीय जनजातियों को निम्न भौगोलिक क्षेत्र में विभाजित किया है—

(a) उत्तर एवं उत्तर पश्चिमी क्षेत्र — यह भारत का उत्तरी तथा उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र है, जो जम्मू-काश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, आसाम, सिक्किम आदि तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में जो प्रमुख जनजातियाँ निवास करती हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं— खासी, उफला, अका, रामा, मिरी, अपातानी, लेपचा, गैलांग, थारु, वैनसारी, लखा, कुकी, गोरा, आदि।

(b) मध्यवर्ती क्षेत्र — यह क्षेत्र भारत का हृदय स्थल है या मध्य का भाग है। इस क्षेत्र में मध्यप्रदेश, दक्षिणी उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, दक्षिणी राजस्थान तथा उत्तरी महाराष्ट्र को सम्मिलित किया जाता है। इस क्षेत्र में प्रमुख रूप से जो जनजातियाँ निवास करती हैं, उनके नाम हैं— गौंड़, बैगा, भील, भिलाला, संथाल, मुण्डा, उराँव, खोड़ भूमिज, लाघा, कारो, मीना, आदि।

(c) दक्षिण क्षेत्र — यह दक्षिण भारत का क्षेत्र है, जिसमें दक्षिणी महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल आदि को सम्मिलित किया जाता है। यहाँ जो जनजातियाँ निवास करती हैं, उनमें कोटा, पलयन, तोड़ा, कादार, पनियन, इरुला, चेन्नु, आदि प्रमुख हैं।

(2) एल.पी. विद्यार्थी – श्री एल.पी. विद्यार्थी (Vidyarthi L.P. & Roy B.K., The Tribal culture of India 1976, New Delhi) ने भारतीय जनजातियों को निम्न भौगोलिक आधारों पर वर्गीकृत किया है —

(a) हिमालय क्षेत्र – इसको तीन उपभागों में विभाजित किया है —

(i) उत्तर पूर्वी हिमालय (ii) मध्यवर्ती हिमालय क्षेत्र

(iii) उत्तरी-पश्चिमी हिमालय क्षेत्र

(b) **मध्य भारतीय क्षेत्र** – इसमें मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार तथा पश्चिम बंगाल को सम्मिलित किया गया है।

(c) **पश्चिम भारतीय क्षेत्र** – इसमें महाराष्ट्र, गोवा, दादर तथा नगर हवेली, गुजरात और राजस्थान को सम्मिलित किया गया है।

(d) **दीप समूह क्षेत्र** – इसमें लक्षदीप तथा अण्डमान और निकोबार दीप समूहों को सम्मिलित किया गया है।

(3) **प्रो. एस.सी. दुबे** - प्रो. दुबे (S.C. Dube Approaches of Tribal Problems, Indian Anthropology in Action Ranchi, 1960) ने भारतीय जनजातियों को निम्न प्रमुख क्षेत्रों में सम्मिलित किया है -

(a) उत्तरपूर्वी क्षेत्र, (b) मध्यवर्ती क्षेत्र,

(c) दक्षिणी क्षेत्र, (d) पश्चिमी क्षेत्र।

(4) **योगेश अटल** - प्रो. योगेश अटल (Atal Yogesh, Adivasi Bharat, Delhi, 1965) ने भारत को चार प्रमुख जनजातीय क्षेत्र में विभाजित किया है -

(a) उत्तर एवं उत्तर-पूर्वी क्षेत्र, (b) पश्चिम एवं उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र,

(c) मध्यवर्ती क्षेत्र, (d) दक्षिण क्षेत्र।

(5) **मजूमदार और मदन** - मजूमदार और मदन (Majumdar D.N. and Madan T.N. 'An Introduction to Social Anthropology', Bombay, 1996) ने भारत को तीन जनजातीय क्षेत्रों में विभाजित किया है -

(a) उत्तर एवं उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र, (b) मध्यवर्ती क्षेत्र,

(c) दक्षिण क्षेत्र।

(6) **राय बर्मन** - राय बर्मन (Roy Burman, B.K. 'Tribal Demography : A Preliminary Aprised in Tribal Situation in India, Simla,' p. 39) ने भारत की जनजातियों को निम्नलिखित सात क्षेत्रों में विभाजित किया है -

(a) उत्तर में हिमालय प्रदेश तथा पश्चिमी भारत, उत्तरप्रदेश का पर्वतीय उपपर्वतीय भाग तथा हिमालय प्रदेश।

(b) उत्तरी-पूर्वी भारत-मेघालय, मिजोरम, अरुणाचल, असम, नागालैण्ड तथा मणिपुर।

(c) मध्य-पूर्वी भारत - आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार।

(d) दक्षिण भारत - कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु।

(e) पश्चिम भारत - गोवा, दमन दीव, दादरा तथा नगर हवेली, महाराष्ट्र तथा राजस्थान।

(f) अण्डमान निकोबार दीप समूह।

(g) लक्षदीप।

भारत में अनुसूचित जनजातियों के भौगोलिक वितरण में असमानता है। उत्तरपूर्वी राज्यों (मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश, आसाम) में जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत सबसे अधिक है। मिजोरम तथा नगालैण्ड में 90 से 100 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या निवास करती है। इसके विपरीत उत्तरी-पूर्वी हिमाचल प्रदेश, उत्तर तथा उत्तरी-पश्चिमी भारत में इनकी जनसंख्या तुलनात्मक रूप से अत्यन्त ही कम है। दक्षिण भारत के राज्यों तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल में जनजातीय जनसंख्या कम है। भारत के मध्यवर्ती क्षेत्रों में जनजातीय जनसंख्या की सघनता है। इन राज्यों में आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़,

उड़ीसा, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, आदि मुख्य हैं। इसके अलावा पश्चिमी क्षेत्रों में भी जनजातीय जनसंख्या पाई जाती है। निम्न तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में जनजातीय जनसंख्या के प्रतिशत को दिखाया गया है–

भारत में अनुसूचित जनजातियों का राज्यानुसार प्रतिशत

क्र.	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत	क्र.	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत
1.	आन्ध्रप्रदेश	5.9	19.	तमिलनाडु	1.0
2.	असम	—	20.	त्रिपुरा	28.5
3.	बिहार	8.3	21.	उत्तरप्रदेश	0.2
4.	गुजरात	14.2	22.	पश्चिम बंगाल	5.6
5.	हरियाणा	—	23.	अण्डमान निकोबार दीप समूह	11.8
6.	हिमाचल प्रदेश	4.6	24.	अरुणाचल प्रदेश	69.8
7.	जम्मू एवं कश्मीर	—	25.	चण्डीगढ़	—
8.	कर्नाटक	4.9	26.	दादरा एवं नगर हवेली	78.8
9.	केरल	1.0	27.	दिल्ली	—
10.	मध्यप्रदेश	22.9	28.	गोवा, दमन, दीव	0.9
11.	महाराष्ट्र	9.1	29.	लक्षदीप	93.8
12.	मणिपुर	27.3	30.	पाण्डिचेरी	—
13.	मेघालय	80.5	31.	मिजोरम	95.0
14.	नागालैण्ड	83.9	32.	छत्तीसगढ़	11.6
15.	उड़ीसा	22.4	33.	झारखण्ड	26.2
16.	पंजाब	—	34.	तेलंगाना	10
17.	राजस्थान	12.2			
18.	सिक्किम	23.2			

भारत में अनुसूचित जातियों का निवास ग्रामीण क्षेत्रों में है। नगरीय क्षेत्रों में अत्यन्त कम मात्रा में जनजातियाँ निवास करती हैं। भारत में जनजातीय निवास को ग्रामीण और नगरीय आधार पर निम्न तालिका में दिखाया गया है।

भारत में जनजातियों का ग्रामीण-नगरीय वितरण का प्रतिशत

क्रमांक	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	ग्रामीण प्रतिशत	नगरीय प्रतिशत
1.	भारत	93.80	6.20
2.	आन्ध्रप्रदेश	93.78	6.22
3.	बिहार	93.77	6.23

4.	गुजरात	92.68	7.32
5.	हरियाणा	—	—
6.	हिमाचल प्रदेश	98.42	1.58
7.	जम्मू एवं काश्मीर	—	—
8.	कर्नाटक	87.13	12.87
9.	केरल	98.9	1.91
10.	मध्यप्रदेश	96.38	3.62
11.	महाराष्ट्र	89.57	10.43
12.	मणिपुर	88.36	11.34
13.	मेघालय	87.59	12.41
14.	नागालैण्ड	90.23	9.77
15.	उड़ीसा	95.39	4.61
16.	पंजाब	—	—
17.	राजस्थान	96.27	3.73
18.	सिक्किम	85.06	14.94
19.	तमिलनाडु	90.31	9.69
20.	त्रिपुरा	98.69	1.31
21.	उत्तरप्रदेश	95.28	4.72
22.	पश्चिम बंगाल	69.24	3.76
23.	अण्डमान एवं निकोबार	98.79	1.21
24.	अरुणाचल प्रदेश	97.72	2.28
25.	चण्डीगढ़	—	—
26.	दादरा एवं नगर हवेली	96.59	3.41
27.	दिल्ली	—	—
28.	गोवा, दमन; दीव	76.78	23.22
29.	लक्षदीप	55.32	44.68
30.	मिजोरम	76.52	23.48
31.	पाण्डिचेरी	—	—

लिंगानुपात की दृष्टि से अनुसूचित जनजातियों में सामान्य जनसंख्या की तुलना में अनेक असमानताएँ भिन्नताएँ हैं। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक राज्यों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। भारत विभिन्न प्रांतों तथा केन्द्रशासिल प्रदेशों के ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में लिंगानुपात को निम्न तालिका दिखाया गया है।

भारत के ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों में लिंगानुपात

क्र.	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	कुल	लिंगानुपात	
			ग्रामीण	नगरीय
1.	आन्ध्रप्रदेश	962	966	901
2.	बिहार	993	998	908
3.	गुजरात	976	982	894
4.	हरियाणा	—	—	—
5.	हिमाचल प्रदेश	978	982	730
6.	जम्मू एवं कश्मीर	—	—	—
7.	कर्नाटक	970	973	948
8.	केरल	992	993	943
9.	मध्यप्रदेश	996	1001	884
10.	महाराष्ट्र	974	981	913
11.	मणिपुर	974	976	965
12.	मेघालय	1002	993	1065
13.	नगालैण्ड	954	963	877
14.	उड़ीसा	1012	1015	946
15.	पंजाब	—	—	—
16.	राजस्थान	944	951	785
17.	सिक्किम	926	933	889
18.	तमिलनाडु	968	967	978
19.	त्रिपुरा	962	963	851
20.	उत्तरप्रदेश	915	920	813
21.	पश्चिम बंगाल	969	973	863
22.	अण्डमान निकोबार दीप समूह	930	939	361
23.	अरुणाचल प्रदेश	1004	1010	803
24.	चण्डीगढ़	—	—	—
25.	दादरा एवं नगर हवेली	1018	1020	959
26.	दिल्ली	—	—	—
27.	गोवा, दमन, दीप	945	950	927
28.	लक्षदीप	1001	1004	997
29.	मिजोरम	997	993	1010
30.	पाण्डिचेरी	—	—	—

भाषा और मानव समाज
(Language and Human Society)

एक व्यक्ति जो किसी प्रकार का यन्त्र खरीदता है और इस यन्त्र का संचालन करना चाहता है। सामान्यतया यह जानने का प्रयास करता है कि यन्त्र किस प्रकार कार्य करता है। मोटर का ड्राइवर मोटर की मरम्मत और उसके पुर्जे के बारे में जानकारी रखता है। सामान्य व्यक्ति की मौलिक रुचि यह होती है कि अपने साथी के साथ संचार का सम्बन्ध स्थापित कर सके। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संचार जिस माध्यम से होता है उसे ही भाषा कहा जाता है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों को दूसरे व्यक्तियों तक पहुँचा सकता है। व्यावहारिक दृष्टि से भाषा सम्पूर्ण मानव को आगे बढ़ाती है, जीवन भर मानव समाज का साथ देती है और मानव को अनुसरण करने के योग्य बनाती है। यदि भाषा न होती तो 99 प्रतिशत से अधिक मानवीय क्रियायें ताले के अन्दर बन्द होतीं।

भाषा अंग्रेजी के लैंग्वेज (Language) शब्द का हिन्दी अनुवाद है। लैंग्वेज लैटिन भाषा के 'लिंगुआ' (Lingua) शब्द से बना है। लिंगुआ का अर्थ होता है 'जीभ' (Tongue), जिसका साधारण अर्थ भाषा या बोली से लगाया जाता है। मौलिक प्रश्न यह है कि भाषा क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए भाषा के विभिन्न अर्थ और परिभाषाओं को देना होगा। जो निम्न हैं —

(1) **भाषा का साधारण अर्थ** — प्रत्येक जीवधारी प्राणी के कुछ विचार या भावनाएँ होती हैं। वह इन विचारों को व्यक्त करना चाहता है। उसके विचार उसी जाति के जीवधारी प्राणी जिस माध्यम से समझते हैं, वही माध्यम उस प्राणी की भाषा है।

(2) **भाषा का विशिष्ट अर्थ** – विशेष अर्थों में भाषा का तात्पर्य किसी विशेष काल में किसी देश-विदेश के मनुष्यों में उनकी बोलने की इन्द्रियों द्वारा अभिव्यक्त तथा सुनने की इन्द्रियों द्वारा ग्रहण की गई सार्थक ध्वनि-समष्टि है, जो उस देश और काल की परम्पराओं के अनुरूप होती हैं और साधारणतया: स्वत: स्वीकार की जाती है। इसकी एक विशेष ध्वनि प्रणाली तथा रूप-साधना होती है।

(3) **व्याकरण के अनुसार** — व्याकरण के आचार्यों ने भाषा की परिभाषा व्याकरण के तत्वों के आधार पर की है। उनके अनुसार भाषा मौलिक रूप से व्याकरण स्वरूपों की एक शृंखला है जिसमें ध्वनियों, पदों, धातुओं, प्रत्ययों, वाक्यों एवं अर्थों आदि का समावेश होता है।

भाषा का उद्विकास
(The Evolution of Language)

भाषा का विकास किस प्रकार हुआ? सृष्टि में आने के बाद मनुष्य ने किस प्रकार भाषा का आविष्कार किया? इन प्रश्नों का उत्तर हमें भाषा के विभिन्न सिद्धान्तों के द्वारा ज्ञात हो सकता है। भाषा की उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्त निम्न हैं —

(1) **दैवीय सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि भाषा की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा की गई है। जिस प्रकार भगवान ने इस विशाल सृष्टि की रचना की है, मानव का निर्माण किया है ठीक इसी प्रकार भाषा का भी निर्माण किया है। क्योंकि भाषा सम्पूर्ण सृष्टि का एक अंग मात्र है, उदाहरण के लिए हिन्दू धर्म के अनुसार संस्कृत की आदि भाषा देववाणी है। इसे ईश्वर ने पहले ऋषियों को सिखाया और बाद में आने वाली पीढ़ियाँ विरासत के रूप में इसका अनुसरण करती गईं।

(2) **सांकेतिक सिद्धान्त** — इस सिद्धान्त के अनुसार भाषा का विकास संकेत के माध्यम से हुआ है। सृष्टि के प्रारम्भ में जब मनुष्य के पास भाषा नहीं थी, तो वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति, संकेत, इशारों के माध्यम से करता था। धीरे-धीरे संकेतार्थ को स्पष्ट करने के लिए भाषा का जन्म हुआ। जैसे मनुष्य

हाथों के माध्यम से संकेत करता है। अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब संकेत देने के लिए हाथ खाली नहीं रहते हैं, ऐसी अवस्था में वाणी अपने आप मुख से फूट पड़ती है, जो बाद में भाषा के रूप में विकसित होती है।

(3) **समझौतावादी सिद्धान्त – रूसो** इस सिद्धान्त का जनक है। इसके अनुसार आदिम मानव विचार विनिमय में संकेत का सहारा लेता था। कुछ समय पश्चात् संकेत विचार विनिमय के लिए अपर्याप्त सिद्ध हुए। ऐसी अवस्था में एक जगह बैठकर सभी मनुष्यों ने समझौते के द्वारा भाषा का निर्माण किया।

(4) **प्रकृतिवादी सिद्धान्त – हर्डर** महोदय इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं। हर्डर के अनुसार भाषा का विकास समझौते के कारण हुआ। भाषा तो आवश्यकता के अनुसार मनुष्य की प्रकृति से अपने आप निकली है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार गर्भस्थ शिशु समय पूरा होने पर अपने आप ही स्वाभाविक रूप से बाहर आ जाता है। आगे चलकर विभिन्न आवश्यकताओं के अनुसार इसका विकास होता है। हर्डर कहता है कि पशुओं का शिशु प्रकृति के अनुसार अपने आप चलता है, पक्षी सहज ढंग से अपने आप उड़ना सीखता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य भाषा का अर्जन भी स्वभाव के अनुसार करता है। आदिकाल में मनुष्य अनुकूल वातावरण में हँसता था और प्रतिकूल वातावरण में रोता था। उसके अन्दर जैसे भाव होते थे, वे प्राकृतिक रूप से बाहर आ जाते थे। बाद में उसके गले में कुछ लोच आ गई और बोलने की प्रवृत्ति के कारण सैकड़ों ध्वनियों का जन्म हुआ। जो आगे चलकर भाषा के रूप में विकसित हुए।

(3) **विकासवादी सिद्धान्त** – विकासवादी **डार्विन** इस सिद्धान्त का समर्थक है। इस सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के प्रत्येक तत्व का क्रमशः विकास हुआ है। मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं, जैसे भोजन, वस्त्र, निवास, धर्म, व्यवसाय, भाषा आदि। भाषा भी उसकी विभिन्न आवश्यकताओं में से एक है और इसका विकास भी विभिन्न स्तरों के द्वारा हुआ है। प्रारम्भ में मनुष्य का वातावरण भिन्न-भिन्न था और वे अलग-अलग गिरोहों में रहते थे, अतः अनेक भाषाओं का जन्म हुआ।

भाषा का समाज में महत्व
(Importance of Language in Society)

समाज में भाषा का क्या महत्व है? समाज और भाषा का क्या सम्बन्ध है? क्या भाषा के बिना समाज की उन्नति नहीं हो सकती? क्या भाषा के अभाव में सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना संभव है? क्या मनुष्य भाषा के अभाव में वास्तविक अर्थों में सामाजिक प्राणी हो सकता है? समाजशास्त्र में भाषा का अध्ययन क्यों किया जाता है? ऐसे ही अनेक प्रश्न हैं जिनका उत्तर देने के लिए हमें भाषा के सामाजिक कार्यों की विवेचना करना होगा। भाषा के महत्व को संक्षेप में दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(A) **भाषा का वैयक्तिक महत्व** – वैयक्तिक महत्व का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के जीवन में भाषा का क्या महत्व है? व्यक्ति के लिए भाषा के महत्व को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है–

(1) भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने मन की भावनाओं को दूसरों तक व्यक्त कर सकता है। ऐसा करने से वह अपने दुःख और सुख की अनुभूति दूसरों को कराने में समर्थ होता है।

(2) भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने अन्दर की साहित्यिक और कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास कर सकता है।

(3) भाषा के द्वारा ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सर्वोत्तम विकास कर सकता है।

(4) भाषा ही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से वस्तुओं का नामकरण सम्भव हो सका है।

(5) भाषा के माध्यम से सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना हो सकती है जो कि सामाजिक प्रगति का आधार है।

(6) भाषा के ही द्वारा हम परिवार के व्यक्तियों की भावनाओं को समझकर पारिवारिक सम्बन्धों को अधिक स्थाई और मधुर बना सकते हैं।

(7) भाषा के अभाव में हम अपने दैनिक जीवन में एक पग भी नहीं चल सकते हैं।

(8) भाषा के माध्यम से ही हम अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को अच्छी तरह पूरी कर सकते हैं।

(9) भाषा के द्वारा ही हम मनोरंजन प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

(10) भाषा के अभाव में कोई भी समाज उन्नति नहीं कर सकता है।

(B) **भाषा का सामाजिक महत्व** – सामाजिक महत्व का तात्पर्य यह है कि समाज के लिए भाषा का क्या महत्व है? समाज में भाषा की उपयोगिता को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है।

(1) भाषा के द्वारा हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाते हैं। यदि समाज में भाषा न होती तो हम अपनी आवश्यकताओं से दूसरों को अवगत न करा पाते और उनकी पूर्ति होना असम्भव हो जाता।

(2) भाषा के अभाव में समाज में शिक्षा और समाजीकरण की प्रक्रिया पूरी नहीं हो पाती।

(3) भाषा के कारण ही समाज में एकता और संगठन का विकास होता है।

(4) भाषा के माध्यम से ही प्रेम, सहिष्णुता, सामाजिक भावों तथा सहानुभूति का विकास हो सकता है।

(5) भाषा के माध्यम से हमारे सम्पर्कों में वृद्धि होती है और सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है।

(6) समाज के कार्यों के सम्पादन में भाषा का महत्वपूर्ण हाथ है।

(7) भाषा के माध्यम से धर्म को संवृद्ध और स्पष्ट किया जा सकता है।

(8) भाषा के माध्यम से राजनैतिक सम्बन्धों की अच्छी तरह स्थापना की जा सकती है।

(9) भाषा के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान का विकास किया जा सकता है।

भारत में जनजातियों का भाषायी वितरण
(Linguistic Distribution of Tribes In India)

भाषा समाज की आत्मा होती है, क्योंकि भाषा के माध्यम से ही आत्मा के उद्गारों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। अनुसूचित जनजातियों की भी अपनी भाषा है, जिसके माध्यम से वे अपने विचारों को अभिव्यक्त करते रहे हैं तथा इन विचारों को सामूहिक आदान-प्रदान करते रहे हैं। भाषाएँ संचार माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित भी होती रहती हैं। चूँकि जनजातियों की कोई लिखित भाषा नहीं है, अत: इनके भाषा की कोई लिपि भी नहीं है। वर्तमान में इनकी भाषा को लिपिबद्ध करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

1961 के भाषा सम्बन्धी सर्वेक्षण में मुण्डा शाखा की 31 भाषाओं का सत्यापन किया गया था तथा 20 भाषाओं का वर्गीकरण क्षेत्रीय भाषा के रूप में किया गया है। इसके साथ ही 7 भाषाएँ सत्यापित तो थीं किन्तु इनका पुन: वर्गीकरण किया गया था। इन भाषाओं को निम्न तालिकाओं में दर्शाया गया है—

जो भाषाएँ सत्यापित थीं

क्र.	मातृभाषाएँ	कुल जनसंख्या	क्र.	मातृभाषाएँ	कुल जनसंख्या
1	असुरी	4540	16	कोरैकू	53
2	अजारिया	98	17	कोरकू	208165
3	भूमिज	131258	18	कोरवा	16268
4	बिरजिया/बृजिया	2399	19	कुर्मी	351
5	विरहार	590	20	माहिली	19697
6	गड़ोबा	40193	21	माँझी	2296
7	हार	9	22	मुअसी	9829
8	हो	648066	23	मुण्डारी	736524
9	जुआंग	15795	24	मुण्डा	167159
10	करमेली	90849	25	निहाली	1167
11	खरिया	18325	26	पहारिया	2287
12	खारिया	171269	27	संताली	3130829
13	खेखारी	647	28	सोबरा	265721
14	कोदाल कोटा	13277	29	सिंगली	7
15	कोल	64465	30	थार	15595
			31	तुरी	1562

क्षेत्रीय रूप में वर्गीकृत भाषाएँ

क्र.	मातृभाषाएँ	कुल जनसंख्या	क्र.	मातृभाषाएँ	कुल जनसंख्या
1	गयारी	16	11	मन्कारी	1081
2	गोरा	1	12	बाइती	5
3	लाहरी संताली	130	13	ढेलकी	58
4	मुरा	513	14	लोधा	5
5	मुइया	10	15	मिरधा खरिया	5822
6	लेरका	32	16	आदिभाषा मुण्डा	13140
7	राहिया	1029	17	लोहारी मुण्डा	123
8	मिरघा कोड़ा	76	18	माहतो	7
9	उदंगमुद्रिया	46	19	प्यागो	767
10	लौहारा	293	20	परिहा	397

मातृ भाषाएँ जो सर्वे में दर्ज, किन्तु पुनर्वर्गीकृत हैं

क्र.	मातृभाषाएँ	कुल जनसंख्या	क्र.	मातृभाषाएँ	कुल जनसंख्या
1	मामेरी सन्ताली	903	5	पहाड़ी विरजुआ	4
2	किसन संताली	41	6	जंगली कोरवा	35
3	किसन भूमिज	4569	7	माँझी मोरवा	1339
4	पारसी भूमिज	4754			

भाषा के आधार पर जनजातियों के विभिन्न परिवारों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(1) **अस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार** (Austro-Asiatic Linguistic Family) — यह आस्ट्रिक भाषा परिवार की शाखा है। इसे मुण्डा अथवा कोल भाषा के नाम से भी जाना जाता है। इसको बोलने वाले भारत के मध्य और पूर्वी भागों में निवास करते हैं। इसके अलावा असम में खाली भाषा, बिहार में सन्थाली भाषा और अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह में निकोबारी भाषा बोली जाती है। इस भाषा परिवार की जनजातियों की संख्या सबसे अधिक है। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में इस परिवार की भाषा बोलने वालों का प्रतिशत 1.5 है। आस्ट्रिक भाषा सबसे प्राचीन भाषा है, जो इस द्वीप समूह में बोली जाती है। इस भाषा की अनेक उपभाषाएँ हैं। इस परिवार की उन्हीं भाषा समूहों की चर्चा की जाएगी, जिनके बोलने वालों की संख्या एक लाख से अधिक है।

(a) **मुण्डारी** — इस भाषा का सम्बन्ध मुख्य रूप से मुण्डा जनजाति से है। इस भाषा को बोलने वाली जनजातियों की संख्या 7 लाख से अधिक है। यह भाषा बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और पश्चिम बंगाल के 40 जिलों में बोली जाती है। इस भाषा को बोलने वाले कुल आस्ट्रिक भाषा को बोलने वालों के 13% हैं। इसे 33 जनजातीय समूह के लोग बोलते हैं। इसकी तीन चौथाई जनसंख्या राँची और सिंहभूमि जिलों में निवास करती है।

(b) **संथाली** — संथाली भाषा को बोलने वाली जनजातियों की कुल जनसंख्या 32 लाख है। यह कुल आस्ट्रिक बोलने वालों का 52.5 प्रतिशत है। इसको 40 से अधिक जनजातियाँ अपनी मातृभाषा के रूप में बोलती हैं। यह बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल तथा मध्यप्रदेश के कुल 35 जिलों में बोली जाती है। यह संथाल परगना, मिदनापुर, सिंहभूमि आदि जिलों में जनजातियों की प्रमुख भाषा के रूप में बोली जाती है।

(c) **हो** — हो भाषा भी आस्ट्रिक परिवार की भाषा है। इसे सिंहभूमि जिले में बोला जाता है। इसको बोलने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत 11 है। इसे कुल 6.5 लाख व्यक्ति बोलते हैं, जो 18 जिलों में फैले हुए हैं।

(d) **भूमिज** — यह भाषा मध्य भारत के 33 जिलों में बोली जाती है। इसको बोलने वाले व्यक्तियों की कुल जनसंख्या 1.3 लाख है। मयूरभंज और सिंहभूमि के 90 प्रतिशत जनजाति व्यक्ति इस भाषा का प्रयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं। यह कुल आस्ट्रिक बोलने वालों का 2 प्रतिशत है।

(e) **खरिया** — इसे 1.6 लाख जनजातियाँ बोलती हैं। यह बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल के 21 जिलों में बोली जाती है। यह कुल आस्ट्रिक परिवार का 2.7 प्रतिशत है। इस भाषा का प्रयोग 14 जनजातीय समूहों द्वारा किया जाता है। इसे बोलने वाले राँची और सुन्दरगढ़ में अधिक हैं।

(f) **सबारा** — इसे बोलने वालों की संख्या 2.6 लाख है। यह 13 जनजातीय समुदायों द्वारा बोली जाती है। इसे बोलने वाले उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश और पश्चिम बंगाल में निवास करते हैं। उड़ीसा में इस भाषा को बोलने वालों का प्रतिशत 60 है।

(g) **कोरकू** — इसे 1.5 लाख व्यक्ति बोलते हैं। यह 7 विभिन्न जनजातीय समूहों द्वारा बोली जाती है। मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, बैतूल, अमरावती, पश्चिमी निमाड़ में देश के 90 प्रतिशत कोरकू निवास करते हैं, जो इस भाषा को बोलते हैं।

(2) **द्रविण भाषा परिवार** (The Drawidian Linguistic Family) — इस भाषा के क्षेत्र के अन्तर्गत भारत के मध्यवर्ती क्षेत्रों तथा दक्षिण भारत को सम्मिलित किया जाता है। इस भाषा परिवार की सबसे महत्वपूर्ण भाषा गौंड़ी है। इस भाषा की अनेक बोलियाँ भी हैं, जो बिहार और उड़ीसा में बोली जाती हैं। बरार तथा आन्ध्रप्रदेश में भी यह भाषा बोली जाती है। अनेक जनजातियों द्वारा इस भाषा को बोला जाता है। इन जनजातियों के नाम हैं— मलार, पोलिया, सावरा, कोथा, पावियन, चेंच, इरुल, कादर, मलसर, मालाकुखन आदि।

(3) **तिब्बती चीनी भाषा परिवार** (The Tibeto - Chinese Linguistic Family) — इस भाषा को बोलने वाले असम के उत्तरी और पूर्वी भागों में फैले हुए हैं। मंगोल प्रजाति में ज्यादातर इसी भाषा को बोला जाता है। इस भाषा परिवार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है —

(a) तिब्बती, (b) चीनी।

यह हिमालय के तराई क्षेत्रों, उत्तरी पंजाब, भूटान तथा उत्तरी एवं पश्चिमी बंगाल में यह भाषा बोली जाती है। नागा, कूकी, अबोर, उफला, माइरिस, खासी, मिकिर जनजातियों द्वारा यह भाषा बोली जाती है।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जनजातियों के भौगोलिक वितरण को स्पष्ट कीजिए।
2. मध्यप्रदेश में जनजातियों का भौगोलिक वितरण स्पष्ट कीजिए।
3. जनजातियों का भाषायी वितरण स्पष्ट कीजिए।
4. भाषा का समाज में महत्व स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जनजातियों का भौगोलिक वितरण विस्तृत में स्पष्ट कीजिए।
2. जनजातियों के भाषायी वितरण का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. जनजातियों के भौगोलिक वितरण की परिभाषा ------- ने दी-

   (अ) गुहा (ब) एल.पी. विद्यार्थी (स) एस.सी. दुबे (द) उपरोक्त सभी

2. भारत में अनुसूचित जनजातियों के भौगोलिक वितरण में -------- है-

   (अ) असमानता (ब) समानता (स) बराबरी (द) इनमें से कोई नहीं

3. मध्यप्रदेश में --------- प्रतिशत से भी अधिक जनजातियों की जनसंख्या है-

   (अ) लगभग 15% (ब) लगभग 20% (स) लगभग 8% (द) लगभग 13%

उत्तर - 1. (द), 2. (अ), 3. (ब)।



4

जनजातियों का आर्थिक एवं प्रजातीय वर्गीकरण
(ECONOMIC AND RACIAL CLASSIFICATION OF TRIBES)

विश्व में प्रत्येक जनजाति अपनी आर्थिक स्थिति के कारण ही चिरस्थायी रह पाई है। हम यहाँ इस अध्याय में जनजातियों के आर्थिक एवं प्रजातीय स्थिति का वर्गीकरण एवं महत्व का अध्ययन करेंगे।

जनजातीय अर्थव्यवस्था

डॉ. एन. मजूमदार एवं मदन ने जनजातीय अर्थव्यवस्था को परिभाषित करते हुए कहा कि "संगठित प्रयास से सीमिततम साधनों द्वारा असीमित लक्ष्यों (आवश्यकताओं) का अधिकतम परितोष प्राप्त करने का नाम ही आर्थिक संगठन है।" अतः आर्थिक व्यवस्था किसी भी समुदाय का मूल आधार है। यह व्यवस्था जितनी सुदृढ़ होगी, समुदाय उतना ही सुदृढ़ होगा, इसके छिन्न-भिन्न होते ही पूरी सामाजिक व्यवस्था बिखरने लगती है। अतः किसी भी मानव समुदाय को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए यह जरूरी है कि उसका आर्थिक आधार व्यापक और सुदृढ़ हो। जनजातीय समाजों में निर्वाह अर्थव्यवस्था की ही प्रधानता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि जनजातीय लोग मात्र निर्वाह के लिए ही उत्पादन करते हैं बल्कि वे अपने उत्पादन से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा करते हैं।

1958 एवं 1964 में भारत की जनजातीय अर्थव्यवस्था का व्यापक अध्ययन दो अर्थशास्त्रियों- डी.एस.नाग तथा आर.पी. सक्सेना ने किया। जहाँ प्रो. नाग ने मध्यप्रदेश के मंडला, बिलासपुर, दुर्ग और बालाघाट के बैगा जनजातीय क्षेत्रों में बैगा-अर्थव्यवस्था का अध्ययन प्रस्तुत किया, वहीं प्रो. सक्सेना ने मध्यप्रदेश के पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र का अध्ययन कर वहाँ के पाँच जनजातीय समूहों की अर्थव्यवस्था की जानकारी प्रस्तुत की। इन दोनों अर्थशास्त्रियों के प्रतिवेदन से सिद्ध होता है कि भारत की जनजातीय अर्थव्यवस्था पूरी तरह से प्रकृति पर निर्भर है। इन दोनों के अनुसार जनजातीय समाजों में तीन प्रकार की अर्थ-व्यवस्थाओं का चलन है जो मानवीय संस्कृति के विकास के विभिन्न चरणों में अपनाये गये साधनों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(1) जो वन पशुओं के शिकार तथा कंद-मूल-फलों के संचय पर निर्भर है।

(2) जो पशुपालन पर निर्भर हैं।

(3) जो कृषि या पशुपालन मिश्रित कृषि पर आधारित हैं।

जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

जनजातियों में पायी जाने वाली अर्थ-व्यवस्था को आदिम अर्थ-व्यवस्था भी कहा जाता है।

जनजातीय अर्थव्यवस्था की संरचना के दो मूल पक्ष- आर्थिक क्रिया-कलापों में मुनाफा वृत्ति का अभाव और सामयिक बाजारों की मौजूदगी विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विशेषताओं के द्योतक हैं। जनजातीय अर्थव्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं की व्याख्या निम्नांकित तथ्यों के माध्यम से की जाती है।

(1) **वन आधारित अर्थव्यवस्था-** सम्पूर्ण जनजातीय अर्थव्यवस्था प्राकृतिक वातावरण पर निर्भर है। वन के चहुँ ओर घूमती रहती है। अपने सरलतम उपकरणों के माध्यम से तथा बिना किसी बाहरी तकनीकी

सहायता के स्थानीय आदिवासी अपनी जरूरत की प्रायः सभी चीजें यथा खाद्योपयोगी फूल, फल, साग-सब्जियाँ, शहद, पशु, पक्षी अन्य जन्तु इत्यादि प्राप्त करते हैं। बिहार के बिरहोर, परहिया आन्ध्रप्रदेश के चेन्चु उड़ीसा के जुआंग, केरल के कादार, तमिलनाडु के पंजियान, मणिपुर के हमार, मध्यप्रदेश के बैगा, कोरकू, भील और अबुझमाड़िया इत्यादि लगभग सभी भारतीय जनजातियाँ वनों पर पूर्णतः निर्भर करती हैं।

(2) **परिवार**- जनजातीय अर्थव्यवस्था में परिवार ही उत्पादकता की प्रमुख इकाई है। परिवार के सभी सदस्य मिलकर यह इकाई बनाते हैं। परिवार के सभी सदस्य किसी न किसी साधन से आजीविका उपार्जित करने के कार्य में लगे रहते हैं। जब कभी परिवार के सदस्य कार्यों को सम्पादित करने में पूर्णतः सक्षम नहीं हो पाते तब दूसरे परिवार की मदद बेझिझक ली जाती है। ये अपनी जरूरतों के मुताबिक ही उत्पादन करते हैं। अतः जो कुछ भी उत्पादित होता है वह उपयोग में ही समाप्त हो जाता है। वास्तव में उत्पादन जीवन-यापन के लिए किया जाता है, आर्थिक लाभ के दृष्टिकोण से नहीं। श्रम-विभाजन परिवार के सदस्यों में उम्र के अनुसार किया जाता है। बच्चे जंगलों में पशुचारण का कार्य करते हैं। उनमें कुछ अपनी माँ की, जंगल से मूल-उच्छेदन, खाद्य पदार्थ एवं जलावन की लकड़ी का संकलन इत्यादि कार्यों में मदद करते हैं। युवक कृषि कार्यों यथा- फसल, बुवाई, कटाई तथा जानवरों का शिकार, मछली मारना इत्यादि महत्वपूर्ण कार्यों का संपादन करते हैं। स्त्रियाँ गृह कार्य के अलावा धनरोपनी, धनकटी और खलिहान की तैयारी करती हैं। वृद्ध जन घर पर रहकर खलिहान एवं घर की देखभाल का कार्य करते हैं। इस तरह सम्पूर्ण परिवार जीवन-यापन हेतु कार्यरत रहता है। परिवार के लोग मिलकर कुटीर उद्योग भी चलाते हैं और हाट बाजार में सामान बेचते हैं जैसे महिलायें बांस की टोकरियों के निर्माण का कार्य करती है तथा चटाई भी बनाती है। बच्चे इस कार्य में माँ की मदद करते हैं। उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय जन-जातियों में "परिवार" एक सम्पूर्ण उत्पादकता की इकाई है।

इस प्रकार लगभग सभी आखेटक जनजातियों के युवा एवं प्रौढ़ पुरुष जंगलों में आखेटन, शहद संग्रह, मत्स्यमारण के लिए जाते हैं तो स्त्रियाँ कंद-मूल संग्रह, फल संग्रह, जलावन संग्रह का कार्य करती हैं। कृषि कार्यरत जनजातियों के पुरुष सदस्य खेतों की जुताई और तैयारी करते हैं तो पशुपालक जनजातियाँ दूध और अन्य पदार्थों का उत्पादन करते हैं। कठिन कार्य यथा जंगलों की सफाई, खेत जुताई और तालाब निर्माण पुरुषों द्वारा किया जाता है। पशुपालक संबंधी कार्य जिसमें बकरी, गाय, भैंस, भेड़, कबूतर, सुअर इत्यादि शामिल है, परिवार के सभी सदस्यों का सामूहिक उत्तरदायित्व समझा जाता है। मध्यप्रदेश के भीलों और बिहार के पहारिया में श्रम विभाजन कार्य-योजना पर आधारित है। पुरुषों-स्त्रियों एवं बच्चों में क्षमतानुसार कार्य विभक्त रहते हैं।

पुरुष कृषि कर्म, बाँस कार्य, गृह निर्माण के लिए जिम्मेदार हैं तो स्त्री गृह कार्य, खाद्य संकलन अनाज की सफाई तथा रख-रखाव की जिम्मेवारी तथा बच्चे मुर्गी-बकरी पालन की पूर्ण जिम्मेवारी संभालते हैं तथा माता-पिता की अन्य कार्यों में मदद करते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि परिवार के सभी सदस्य आर्थिक क्रिया कलापों में संलग्न रहते हैं।

(3) **समुदाय एक सहकारी इकाई**- सभी जनजातियों में प्रचलित श्रम-विभाजन सहकारिता पर आधारित हैं। उनमें बहुत प्रकार के कार्य एकत्र होकर और समूहों के माध्यम से संपादित किये जाते हैं। अधिकांश जनजातियों में आर्थिक अभिरूचि तक समान होती है जैसे- पशुचारण, स्थानान्तरित कृषि कर्म में सभी सदस्य तथा ग्रामवासी मिल-जुलकर काम करते हैं। इस सहकारिता में नातेदारी का विशिष्ट योगदान रहता है। सम्पूर्ण समुदाय एक सहकारी इकाई की तरह कार्यरत रहता है। मुण्डा, उराँव, हो, संथाल, गोंड, भील आदि ग्राम्यवासियों में आर्थिक सन्निकटता का संबंध बना रहता है।

(4) **सरल तकनीक**- ग्रामीणों में उत्पादन की कार्यप्रणाली अत्यंत अपरिष्कृत है। इस कार्य में व्यवहृत उपकरण स्वनिर्मित एवं अपरिष्कृत होते हैं। रस्सी निर्माण का कार्य हाथों द्वारा किया जाता है। कृषि कार्य हेतु अत्यंत सरल कुल्हाड़ा तथा दाँवे का प्रयोग होता है। स्थानान्तरित कृषि हेतु पेड़ों को काटने में अत्यधिक श्रम लगता है और उसके अनुपात में कम प्राप्ति होती है। कृषक जनजातियों में लकड़ी का हल बना होने

के कारण काफी गहराई तक जुताई नहीं हो पाती है। दस्तकार लोहार साधारण भट्टी का प्रयोग करता है। इस तरह आर्थिक उत्पादन में प्रौद्योगिकी के अभाव के कारण श्रम अधिक लगता है।

(5) **आर्थिक व्यवहार में मुनाफे की कमी-** जनजातियों में आर्थिक व्यवहार में मुनाफा वृत्ति का अभाव रहता है। इनमें उत्पादन जीवन-यापन के लिए किया जाता है न कि मुनाफा कमाने के लिए। इनमें वस्तु विनिमय का प्रचलन होने के कारण यह कुछ हद तक इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता है।

(6) **उपहार तथा उत्सव-** जनजातीय समाजों में जो कुछ दिया जाता है उसे नम्रता से स्वीकारा जाता है। वस्तु-विनिमय अर्थात् आदान-प्रदान की विधि जो जनजातियों में बहुतायात में विद्यमान है।

साधारण आदान-प्रदान में प्रदत्त सहायता और उसकी वापसी, आतिथ्य, स्वीकृत उपहार आदि आते हैं। भारत में इस तरह का आदान-प्रदान अनिश्चित एवं गुण, मात्रा तथा अनिर्धारित होता है। सामान आदान-प्रदान भी काफी जनजातियों में प्रचलित है। इसमें बदले गये सामानों का मूल्य बराबर होता है। कृषक जनजाति के लोग अपने कृषि उपकरणों की अदला-बदली लोहार से करते हैं और उपकरणों के बदले उसे अनाज देते हैं।

इस प्रकार जनजातीय लोग विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपनी-अपनी प्राथमिकता के आधार पर अपने साधनों का आवंटन सोच-विचार तथा विवेक से करते हैं।

(7) **परस्पर-निर्भरता-** जनजातियों में कार्यात्मक संबंध यथा- एक ही जनजाति के लोगों में, दूसरी जनजाति के साथ, बाहरी जातियों के साथ परस्पर निर्भरता का संबंध पाया जाता है। इस व्यवस्था के तहत एक ही गाँव या क्षेत्र में बसने वाली विभिन्न जातियाँ एवं जनजातियाँ परस्पर एक दूसरे पर निर्भर रहती हैं। उदाहरणार्थ मध्य भारत के गाँवों में लोहार और बिहार के कुम्हार अन्य जनजातियों व उपकरणों की मरम्मत करते हैं। राजमहल पहाड़ियों पर निवास करने वाली जनजाति सौरिया-पहारिया संथालों पर अनाज के लिए निर्भर रहती हैं तो संथाल पहारिया से जलावन तथा अन्य वन्य सामग्रियों की अपेक्षा करते हैं।

जनजातियों का आर्थिक वितरण
(Economic Distribution of Tribes)

अर्थव्यवस्था समाज की नींव हुआ करती है। यही कारण है कि प्रत्येक समाज में अर्थव्यवस्था का अपना महत्व होता है। अर्थव्यवस्था के आधार पर ही समाज में आर्थिक गतिविधियों का संचालन होता है। जनजातियों का अपना समाज होता है, उनकी अपनी संस्कृति और परम्पराएँ होती हैं। इस संस्कृति और परम्परा के आधार में उनकी अर्थव्यवस्था होती है। समाज की जैसी आर्थिक व्यवस्था होगी, इसी के आधार पर समाज की संस्कृति और परम्परा का निर्माण और विकास होगा। जब हम जनजातियों के आर्थिक विभाजन की बात करते हैं तो इसका सीधा सा तात्पर्य जनजातियों की उन विभिन्न आर्थिक अवस्थाओं से है, जिन अवस्थाओं से होकर मानव समाज का उद्‌विकास हुआ है। जनजातियों की अर्थव्यवस्था अपने आप में एक विशिष्टता लिए हुए है। इसी विशिष्टता के कारण जनजातीय समाज का आर्थिक विभाजन किया जाता है। विभिन्न विद्वानों ने भारतीय समाज की जनजातियों का जो आर्थिक विभाजन किया है, संक्षेप में वह इस प्रकार है —

(1) **टी.सी. दास** — अप्रैल-मई 1957 में कोरापुत में चौथा जनजाति कल्याण सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में श्री टी.सी. दास ने एक शोध पत्र पढ़ा था, जिसमें उन्होंने आर्थिक स्तर के आधार पर जनजातियों को निम्न पाँच भागों में विभाजित किया था —

(i) खानाबदोश, भोजन संग्राहक और चरवाहा,

(ii) पहाड़ी ढालों में स्थानान्तरित खेती करने वाले कृषक,

(iii) पठार और पहाड़ की तलहटी में हल से खेती करने वाले कृषक,

(iv) हिन्दू आर्थिक व्यवस्था के साथ मिल- जुलकर कार्य करने वाले, और

(v) वे जनजातीय समूह, जो पूरी तरह से हिन्दुओं की उच्च स्थिति के साथ अपने को आत्मसात कर लिए हैं।

(2) **हट्टन** – हट्टन ने आर्थिक स्तर के आधार पर जनजातियों को निम्नलिखित तीन समूहों में विभाजित किया है।

(i) जनजातियाँ जो जंगलों से खाद्य सामग्री का संग्रहण करती हैं,

(ii) जनजातियाँ, जो चरवाही की अवस्था में हैं, तथा

(iii) वे जनजातियाँ, जो कृषि कार्य, शिकार, मछली मारना तथा उद्योग, आदि क्षेत्रों में कार्य करती हैं।

(3) **प्रो. एस.सी. दुबे** – प्रो. दुबे ने आर्थिक स्तर के आधार पर जनजातियों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है –

(a) **महत्वपूर्ण**

(i) खाद्य संग्रहण की अवस्था,

(ii) अव्यवस्थित प्राथमिक कृषि अवस्था,

(iii) व्यवस्थित प्राथमिक कृषि अवस्था।

(b) **अर्धमहत्वपूर्ण**

(i) काश्तकारी एवं उद्योग से जीवन-यापन करने वाली,

(ii) पशुचारी अवस्था,

(iii) अपराधों के माध्यम से जीवन-यापन करने वाली।

(4) **मजूमदार और मदन** – मजूमदार और मदन ने अपनी पुस्तक Races and Cultures of India में भारत की जनजातियों को तीन स्तरों में विभाजित किया है, जिसे निम्न तालिका में दिखाया गया है–

क्र.	**क्षेत्र**	**शिकार करना तथा वन सम्पदा एकत्रित करना**	**स्थानान्तरण अथवा कृषि लकड़ी काटना कत्था आदि बनाना**	**स्थायी कृषि, पशुपालन सीढ़ीदार कृषि, मुर्गीपालन, बुनाई**
1.	उत्तरप्रदेश	राजी	कोरवा, सबेरिया, मुइया, खरवार	माँझी, विन्द, खोकसा, खासा, कोलतारु
2.	बिहार	खारिया, पड़ारस, विरहार्स	कोरवा, असुर, खोड़	मुण्डा, हो, तमेरिया, ओराँव, कोरबा
3.	आसाम	खारिया, खड़ारस, बिरहार्स	कोरवा, असुर, खोड़	मुण्डा, हो, तमेरिया, ओराँव, कोरवा
4.	पश्चिम बंगाल	कूफी	गारी, मालब, हाडिया	पोलिया, संथाल
5.	मध्यप्रदेश	हिलमारिया	भूरिया, डंडामी,परजा,मतरा, बैगा, भारिया, गोंड, कमार	मतरा, बैगा

6.	चैन्नई तथा हैदराबाद	चेचू, कुरुम्बाकोया पार्लियान, कोड़ारेड्डी, हिल पन्टारम, पनियान, पनाड़ी,	खोंड, कुरुम्बा, गोड़, साबरा, मुड़ेवान	बराहा, कोटा, इर्यूलास, परजा
7.	उड़ीसा	जुआंग	साबरा	—
8.	मुम्बई तथा राजस्थान	भील	भील	भील तथा गोंड

जनजातियों का प्रजातीय वर्गीकरण

अंग्रेजी के 'रेस' (Race) शब्द के लिए हिन्दी में प्रजाति का प्रयोग किया जाता है। प्राणीशास्त्रीय दृष्टि से दुनिया में जितने भी मानव हैं, वे एक मेधावी मानव (Homo Sapiens) की सन्तानें हैं। विश्व के इतिहास में आज जितने भी महान ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे सभी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि आज के सभी मानव 'आदि पुरुष' और 'आदि-स्त्री' की सन्तानें हैं। यहाँ मौलिक प्रश्न यह पैदा होता है कि यदि सभी मानव एक ही पुरुष और स्त्री की सन्तानें हैं, तो इनमें शारीरिक दृष्टि से इतनी भिन्नता क्यों है? इसका उत्तर पर्यावरण (Environment) देता है। भौगोलिक परिस्थितियों में भिन्नता के कारण ही एक रूप मानव सन्तानें आज अनेक रूपों में परिवर्तित हो गई हैं। एक मानव की यही अनेक रूप सन्तानें आज प्रजातियों के नाम से जानी जाती हैं।

प्रजाति की परिभाषा (Definition of Race)

विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने प्रजाति की जो विशेषताएँ दी हैं, वे इस प्रकार हैं-

(1) **डॉ. मोटवानी** - "प्रजाति मानव जाति का एक ऐसा स्थायी विभेद है, जिसमें कुछ सतत सम्प्रेषणीय ऐसे गुण होते हैं, जो इसके पृथक स्वरूप के रूप में भेद करण करते हैं।"

(2) **हाल्डेन**- "प्रजाति एक ऐसा समूह है, जिसमें निश्चित जन्मजात लक्षण सामान्य रूप से पाये जाते हैं और जिनकी भौगोलिक उत्पत्ति एक निश्चित क्षेत्र में होती है।"

(3) **क्रोबर**- "प्रजाति शब्द एक प्राणीशास्त्रीय विचार है जो एक ऐसा समूह है जिसका सम्बन्ध बंधन वंशानुक्रमण से बँधा हुआ है।"

(4) **डन**- "मानवशास्त्री प्रजाति शब्द उन मानव समूहों के लिए सीमित रखते हैं जिनमें नियमित रूप से शारीरिक भिन्नताएँ दिखाई देती हैं।"

(5) **बीसेंज और बीसेंज**- "एक प्रजाति जन्मजात शारीरिक लक्षणों द्वारा पहचाने जाने वाले लोगों का एक विशाल समूह है।"

(6) **ग्रीन**- "एक प्रजाति एक निश्चित सीमा में परिवर्तित होने वाले अनेक अनुवांशिक लक्षणों वाला एक विशाल, प्राणीशास्त्रीय मानव समूह है।"

(7) **हाबेल**- "एक प्रजाति पीढ़ी दर पीढ़ी शुद्ध रूप में उत्पन्न होने की प्रवृत्ति रखने वाले शारीरिक लक्षणों का एक विशेष योग रखने वाला समूह है।"

प्रजाति की विशेषताएँ
(Characteristics of Race)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रजाति के निम्न तत्व निर्धारित किए जा सकते हैं -

(1) प्रजाति का तात्पर्य 'मानव समूह' से होता है, इसमें पशुओं की नस्ल को सम्मिलित नहीं किया जाता है।

(2) मानव समूह का तात्पर्य 5-10 व्यक्तियों से नहीं है। इसमें मनुष्यों की वृहद् संख्या में होना अनिवार्य है।

(3) मानवीय समूह में समान शारीरिक लक्षणों का होना अनिवार्य है। ये लक्षण वंशानुक्रमण के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। इन शारीरिक लक्षणों के आधार पर इन्हें दूसरी प्रजातियों से भिन्न किया जाता है।

(4) भौगोलिक पर्यावरण के बदलने से भी मूल शारीरिक लक्षण नहीं बदलते हैं।

प्रजाति के तत्व
(Elements of Race)

प्रत्येक प्रजाति कुछ विशिष्ट तत्वों से मिलकर बनी होती है। ये विशिष्ट तत्व उसके अस्तित्व को दूसरी प्रजातियों से पृथक् करते हैं। इन विशिष्ट तत्वों के आधार पर ही प्रजाति का निर्धारण होता है। सामान्यतया प्रजातियों में तीन प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं -

(i) **अन्तर्नस्ल के तत्व** - एक प्रजाति अन्तर्प्रजातीय विवाह नहीं करती है, इसका एकमात्र कारण उनकी भौगोलिक स्थिति होती है। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण वे एक दूसरे से कम मिलजुल पाती हैं। इसके अलावा उनकी विशेषता यह भी होती है कि वे स्थायित्व बनाये रखने की चेष्टा करती हैं। गतिशीलता के अभाव में अन्तर्नस्ल का ताप और भी उग्र रूप से मिलता है। इसका उदाहरण टुन्ड्रा प्रदेश के लैप, सेमीयड और एस्किमों लोगों से दिया जाता है, जिनमें अन्तप्रजातीय विवाह होता है, इसके कारण अन्तर्नस्ल के तत्व उग्र रूप से पाए जाते हैं क्योंकि इस विवाह से रक्त की शुद्धता, संस्कृति की रक्षा, समान प्रजातीय लक्षणों का स्थायित्व होता है।

(ii) **विशेष शारीरिक लक्षणों के तत्व** - 'प्रजाति' शब्द की परिभाषा में शारीरिक लक्षणों के तत्व पर विशेष बल दिया गया है। उनकी पहचान भी शारीरिक लक्षणों के आधार पर होती है। प्रजातियों का वर्गीकरण भी शारीरिक लक्षणों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक प्रजाति में कुछ विशिष्ट शारीरिक लक्षण पाये जाते हैं, जैसे शरीर का रंग, बाल, आँख, खोपड़ी, नासिका, कद, कपड़ों की बनावट आदि। आधुनिक युग में आवागमन के साधनों में वृद्धि हो जाने से ये शारीरिक लक्षण शनैः-शनैः समाप्त होते जा रहे हैं।

(iii) **वंशानुक्रमण के लक्षणों का तत्व** - मेंडल के सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि सहवास से रक्त में उन्हीं कीटाणुओं का अस्तित्व मिलता है जो कि पैतृक हैं और वंश परम्परागत चले आ रहे हैं। शारीरिक लक्षण एक शृंखला की तरह होते हैं जो कि वंश परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी अग्रसर होते जाते हैं। प्रजाति की शुद्धता और संस्कृति की रक्षा पैतृक गुणों के आधार पर होती है। प्रायः देखा जाता है कि नीग्रो का पुत्र नीग्रो ही होता है। यह शायद कभी नहीं देखा गया कि नीग्रो का पुत्र श्वेत जाति के लक्षणों से युक्त हुआ हो।

प्रजातियों का वर्गीकरण
(Classification of Races)

प्रजातियों का वर्गीकरण शारीरिक लक्षणों के आधार पर किया जाता है। लक्षणों के निश्चित और अनिश्चित लक्षणों पर दृष्टिपात करके यह समझना अनुचित है कि इनके द्वारा वर्गीकरण सुगम हो जाता है। इस वर्गीकरण में अनेक बाधाएँ आती हैं, बाधाएँ निम्न प्रकार हैं -

(i) प्रजातियों में एक से लक्षण पाए जाते हैं। बहुत से नीग्रो लोगों का रंग मंगोल प्रजाति से मिलता है। जापान की अयनू प्रजाति (Ainurace) का रंग मंगोल प्रजाति से मिलता है। भारतीयों का रंग काला भी होता है, यद्यपि उनके अन्य लक्षण काकेशायड से मिलते हैं। नीग्रो की शीर्ष देशना श्वेत प्रजाति के समान होती है। अतः ये लक्षण वर्गीकरण में बाधा उत्पन्न करते हैं।

(ii) वंशानुक्रमण (Heredity) और वर्गीकरण (Environment) दोनों शारीरिक लक्षणों को प्रभावित करते हैं, परन्तु यह कहना कठिन है कि किसके द्वारा प्रभावित शारीरिक लक्षण वर्गीकरण के लिए श्रेष्ठ है।

(iii) वंशानुक्रमण में प्रजनन कीटाणु (Genes) होते हैं। प्रथम माता-पिता के प्रजनन कीटाणुओं का पृथक् पृथक् करना कठिन होता है। द्वितीय ये प्रजनन कीटाणु छोटी-छोटी गुरियों के समान चिपटे हुए हैं, अत: उनका अध्ययन करना कठिन-सा प्रतीत होता है।

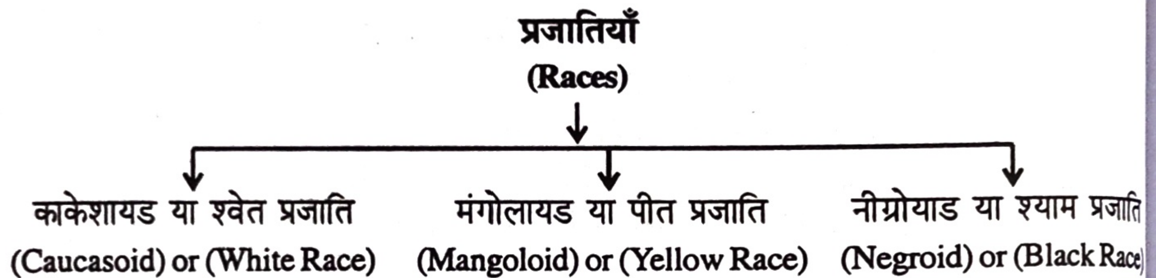
(iv) बहुत से ऐसे शारीरिक लक्षण हैं, जिन पर भोजन, जलवायु आदि भौगोलिक पर्यावरण के कारकों का प्रभाव पड़ता है। जैसे कद हमेशा जलवायु व भोजन से प्रभावित होता है। परिवर्तनशील लक्षणों के आधार पर निश्चित वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है।

(v) प्रजातियों की यह विशेषता रही है कि उनका जीवन भ्रमणशील रहा है। अत: एक स्थान से जाकर वे दूसरे स्थान में बस गई हैं। प्रागैतिहासिक काल अन्धकारमय है, इसलिए इन प्रजातियों का उद्गम स्थान नहीं मिलता है, जिसके आधार पर उनके लक्षणों का निर्धारण करके वर्गीकरण किया जा सके।

(vi) आधुनिक युग में आवागमन के तीव्र साधनों ने प्रजातियों की भ्रमणशील गति में और भी सहयोग प्रदान किया है। प्रजातियों में परस्पर सामंजस्य इतना अधिक बढ़ गया है कि उनके लक्षणों को पहचानना असम्भव हो गया है।

फिर भी सामान्य लक्षणों के आधार पर प्रजातियों का वर्गीकरण किया गया है जो इस प्रकार है-

(1) **सामान्य वर्गीकरण**- यह बहुत प्रसिद्ध वर्गीकरण है, इसे सभी मानवशास्त्री स्वीकार करते हैं



(2) आर्थर कीथ का वर्गीकरण - आर्थर कीथ (Sir Arther Keith) ने त्वचा के रंग के आधार पर मानवीय प्रजातियों को चार समूहों में विभक्त किया -

(i) श्वेत प्रजाति (White Race);

(ii) पीत प्रजाति (Yellow Race);

(iii) भूरी प्रजाति (Brown Race);

(iv) श्याम प्रजाति (Black Race)।

(3) आइकस्टेड का वर्गीकरण - आइकस्टेड (Eickstedt) और यूजन फिश्चर (Eugen Fischer) ने मानव प्रजातियों को तीन वर्गों में बाँटा है -

(i) यूरोपायड (Europoid);

(ii) नीग्रोयाड (Negroid);

(iii) मंगोलायड (Mangoloid)।

(4) डकवर्थ का वर्गीकरण - डकवर्थ (Duckworth) ने प्रजातियों का निम्न वर्गीकरण किया है

(i) आस्ट्रेलियन (Australian),

(ii) अफ्रीकन (African);

(iii) नीग्रो (Negro);

(iv) अन्डमनीज (Andamanese);

(v) यूरोशियाटिक (Eurasiatic);

(vi) पौलीनेशियन (Polinesian);

(vii) ग्रीनलैन्ड्स और दक्षिणी अफ्रीकन (Greenlandish and South African)।

(5) **इलियट स्मिथ का वर्गीकरण** - इलियट से पूर्व रोनाल्ड (Ronald B. Dixon) ने भी वर्गीकरण किया था, परन्तु यह इतना महत्वपूर्ण नहीं था। इलियट के वर्गीकरण से आगे का मार्ग प्रशस्त हो गया। इलियट स्मिथ (Elliot Smith) ने मानवीय प्रजातियों को छह समूहों में विभक्त किया है -

(i) आस्ट्रेलियन (Australian);

(ii) मंगोल (Mangol);

(iii) नीग्रो (Negor);

(iv) नार्डिक (Nordic);

(v) अल्पाइन (Alpine);

(vi) मेडिटरेनियम या भूमध्यसागरीय (Mediterranean)।

(6) **क्रोबर का वर्गीकरण** - क्रोबर (Kroeber) ने सम्पूर्ण मानव प्रजातियों को तीन प्रमुख प्रजातियों में और 11 उप-प्रजातियों में बाँटा है। उनका वर्गीकरण इस प्रकार है -

(i) काकेशायड (Caucasoid),

- (a) नार्डिक (Nordic);
- (b) अल्पाइन (Alpine);
- (c) भूमध्य सागरीय (Mediterranean);
- (d) हिन्दू (Hindu)।

(ii) मंगोलियन (Mangoloid) -

- (a) मंगोलियन (Mangolian);
- (b) मैलेशियन (Malaysian);
- (c) अमेरिकन इन्डियन (American Indian)।

(iii) नीग्रोयाड (Negroid)-

- (a) नीग्रो (Negro);
- (b) मेलेनेशियन (Melenasian);
- (c) पिग्मी ब्लेक (Pigmi-Black);
- (d) बुशमैन (Bushman)।

(7) **हॉबेल का वर्गीकरण**- हॉबेल (Hoebel) का वर्गीकरण क्रोबर से मिलता-जुलता है। उसके अनुसार भी प्रमुख प्रजातियाँ तीन हैं और उनकी अनेक उपप्रजातियाँ। हॉबेल का वर्गीकरण इस प्रकार है -

(i) काकेशायड (Caucasoid)-

(a) नार्डिक (Nordic);

(b) भूमध्य सागरीय (Mediterranean);

(c) अल्पाइन (Alpine)।

(ii) मंगोलायड (Mangoloid)-

(a) एशियाटिक (Asiatic),

(b) ओशेनिक (Oceanic),

(c) अमेरिन्ड (Amerind)।

(iii) नीग्रोयाड (Negroid)-

(a) अफ्रीकन (African),

(b) ओशेनिक (Oceanic),

(c) नैग्रीटो (Negrito)।

(8) **बील्स तथा हाइजर का वर्गीकरण** - बील्स और हाइंजर (Beals & Hoiser) ने प्रजातियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है -

(i) काकेशायड (Caucasoid)-

(a) अल्पाइन (Alpine),

(b) आर्मिनायड (Armenoid),

(c) भूमध्य सागरीय (Mediterranian),

(d) नार्डिक (Nordic)।

(ii) मंगोलायड (Mangoloid)-

(a) एशियाटिक मंगोलायड (Asiatic Mangoloid),

(b) इण्डोनेशियन मलय (Indonesian Malay),

(c) अमेरिकन इण्डियन (American Indian)।

(iii) नीग्रोयाड (Negroid)-

(a) फारेस्ट नीग्रो (Forest Negro),

(b) नैग्रीटो (Negrito)।

(9) **हक्सले का वर्गीकरण** - हक्सले ने प्रजातियों का वर्गीकरण चार प्रमुख प्रजातियों में किया है। हक्सले (Huxlay) का वर्गीकरण इस प्रकार है -

(i) आस्ट्रेलायड (Australoid),

(ii) नीग्रोयाड (Negroid),

(iii) मंगोलायड (Mangoloid),

(iv) केसथोकॉयिक (Caisthocraik)।

(10) **डॉ. रांगेय राघव का वर्गीकरण** - डॉ. रांगेय राघव ने अपनी 'संस्कृति और समाजशास्त्र' के पृष्ठ 224 (1961) में प्रजातियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है -

(i) काकेशायड (Caucasoid)-

- (a) नार्डिक (Nordic),
- (b) भूमध्य सागरीय (Mediterranian),
- (c) अल्पाइन (Alpine),
- (d) हिन्दू (Hindu)।

(ii) मंगोलायड (Mangoloid)-

- (a) एशियाटिक (Asiatic),
- (b) अमेरिकन इण्डियन (American Indian)।

(iii) नीग्रोयाड (Negroid),

- (a) नैग्रीटो (Negrito),
- (b) बुशमैन (Bushman),
- (c) पिग्मी (Pigmi)।

(i) **काकेशायड** - इस प्रजाति का रंग श्वेत होता है, साथ ही कुछ का गेहूँआ भी। इनकी आँखों का रंग नीला और भूरा होता है। बाल सीधे और लहरदार होते हैं। नाक छोटी और ऊँची होती है, होंठ पतले और ठुड्डी की बनावट सुन्दर होती है। इनकी शीर्ष देशना की लम्बाई सर्वाधिक 80 तक होती है। खोपड़ी का घनत्व लगभग 1800 c.c के लगभग होता है। इस प्रजाति के लोग यूरोप, अमेरिका और आस्ट्रेलिया में रहते हैं। इसकी अग्रांकित शाखाएँ हैं -

(a) **नार्डिक** - **मजूमदार** (D.N. Majumdar) ने इस प्रजाति के लक्षणों के बारे में लिखा है कि नार्डिक प्रजाति का लम्बा सिर, पतली नाक, पतले होंठ, ऊँचा इकहरा शरीर, लम्बा चेहरा, सुनहरे घुँघराले बाल, औसत ऊँचाई लगभग 172 से.मी. होती है। इस जाति की अन्य विशेषताओं में लम्बी टाँगें, तंग चेहरा, दाँतों और ठोड़ी के सिरों में दूरी, गुलाबी आभा लिए गौर वर्ण (Pinkish mixed white colour) त्वचा और नीली या हल्की भूरी आँखें, बालों का रंग पीला अथवा भूरा होता है। यह प्रजाति स्केन्डिनेविया से ब्रिटिश द्वीप समूह तक पाई जाती है।

(b) **अल्पाइन** - इस प्रजाति के लोग यूरोप के मध्य में आल्पस पर्वतमाला से यूराल पर्वत तक पाये जाते हैं। आदिकाल से यह प्रजाति आल्पस पर्वत के समीप बसने से अल्पाइन कहलाई होगी। इस प्रजाति का औसत कद 165 से.मी., कंधे चौड़े, छाती गहरी, टाँगें लम्बी तथा चौड़ी, हाथ चौड़े, उँगलियाँ छोटी तथा पाँव छोटे और चौड़े होते हैं।

(c) **भूमध्य सागरीय** - मजूमदार (D. N. Majumdar) के अनुसार इस प्रजाति की ये विशेषताएँ हैं - इनका लम्बा सिर, छोटा कद लगभग 166 से.मी., लम्बा तंग चेहरा, नोकदार ठोड़ी, कुछ छोटी सीधी, बीच में उठी हुई, दबी हुई तथा फिर मुड़ी सिरे वाली नाक, पंखा जैसा फिर मुड़ा हुआ भाग चौड़ा मुँह, पतले तथा झिल्लीदार (Membranous) होंठ, चौड़ा कटि प्रदेश, लहरदार (Wave) तथा हल्के भूरे रंग के बाल, हल्की भूरी त्वचा तथा भूरी काली आँखें होती हैं। इनमें अधिकांश व्यक्तियों का `A' रक्त समूह होता है। शीर्ष देशना 75 के लगभग होती है। इस प्रजाति का उद्भव स्थान भूमध्य सागर के समीप था,

इसी से इस प्रजाति का नामकरण भूमध्य सागर के नाम पर भी पड़ा। भूमध्य सागर के समीपवर्ती देशों में स्पेन, पुर्तगाल, इटली आदि आते हैं।

(d) **हिन्दू** - इसमें अनेक प्रजातियों का सम्मिश्रण हुआ है। सामान्य शारीरिक लक्षणों में औसत लम्बाई 5 फुट 6 इंच या 168 से.मी. के लगभग है। काले तथा मुलायम बाल, सामान्य शीर्ष देशना, नासिका देशना माध्यमिक रंग गेहुँआ, आँखों का रंग काला, होंठ माध्यमिक से लेकर पतले तक पाये जाते हैं। अल्पाइन, नार्डिक, भूमध्य सागरीय, नीग्रो इत्यादि के शारीरिक लक्षणों से युक्त मानव इधर-उधर विभिन्न राज्यों में मिलते हैं।

(ii) **मंगोलायड** - इनका उद्‌गम स्थापना इरावती नदी की ऊपरी घाटी, चीन, तिब्बत, मंगोलिया माना जाता है। आज ये एशिया में चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, श्याम, बर्मा आदि में पाये जाते हैं। भारत में असम तथा बंगाल में इस प्रजाति के व्यक्ति मिलते हैं। मजूमदार (D. N. Majumdar) के अनुसार इस प्रजाति की विशेषताएँ हैं - पीली या भूरे रंग की त्वचा, खड़े या बहुत कम दिशाओं में लहरदार बाल, चौग-चपटा चेहरा, उभरी हुई हड्डियों वाले गाल, छोटी और चपटी नाक, छोटा कद औसत 165 से.मी. से भी कम ऊँचाई, छोटी टाँगें, लम्बा धड़, चौड़े कन्धे, चौड़ा सिर, शीर्ष देशना 80 से ऊपर, सीधा माथा, मोटे होंठ, गोल ठोड़ी, काले भूरे रंग की आँखें, चेहरे और शरीर पर बहुत कम बाल और रक्त में 'बी' `B' रक्त-समूह की अधिकता।

(a) **एशियाटिक** - इसका उद्‌भव-स्थान पूर्वी एशिया माना जाता है। यह मंगोलायड की एक उपशाखा है। इस प्रजाति के शारीरिक लक्षणों में सर चौड़ा, नाक सुन्दर, कुछ लोगों की नाक चौड़ी, पीले रंग से मिला हुआ काला रंग, छोटा कद, आँखें तिरछी और चेहरा चपटा होता है। ये हिमालय प्रदेश, बर्मा, नेपाल, असम आदि में फैले हुए हैं।

(b) **अमेरिकन इन्डियन** - यह भी मंगोलायड की एक शाखा है। अमेरिकन इन्डियन प्रजाति में हापी इन्डियन, रेड इन्डियन आदि आते हैं। इस प्रजाति के शारीरिक लक्षणों में पीला, कुछ लाल तथा गेहुँआ रंग, सामान्य शीर्ष देशना, काले बाल इत्यादि हैं।

(iii) **नीग्रोयाड** - इनका रंग गहरा भूरा या काला होता है। शीर्ष देशना कम, खोपड़ी लम्बी और सिर ऊँचा होता है। इनके होंठ मोटे और बाहर की ओर निकले हुए होते हैं। इनका कद औसतन 5.8 फुट होता है। पूरे शरीर पर बाल छितरे तथा ऊनी होते हैं इसका उद्‌भव स्थान अफ्रीका है। यह जाति दक्षिणी अफ्रीका में केप ऑफ गुड होप तक फैली हुई है।

(a) **नैग्रीटो** - यह प्रजाति कांगों के जंगलों, भारतीय महासागर के द्वीपों, अण्डमान और फिलीपाइन, यूगिनी द्वीप में पाये जाते हैं। इनमें वयस्क पुरुषों का औसत कद 150 से.मी. होता है। इनका सिर छोटा और शीर्ष देशना 83 होती है। इनकी त्वचा का रंग मटियाल पीला तथा बाल काले और घुँघराले होते हैं। मजूमदार (D. N. Majumdar) के अनुसार इनके शारीरिक लक्षणों में ऊँचा सिर, लम्बरूप माथा, छोटा और चौड़ा मुँह, मोटे होंठ, तंग कन्धे, ऊँचा कटि प्रदेश (Pelvis), छोटी टाँगें, लम्बी भुजाएँ, ठोड़ी और शरीर पर [illegible] बाल होते हैं।

(b) **बुशमैन** - बुशमैन कालाहारी के रेगिस्तान में रहते हैं। इनका जीवन भ्रमणशील होता है। इनकी देशना लम्बी और माध्यमिक होती है। इनकी त्वचा और आँखों का रंग पीला और भूरा होता है। कद 4.10' फुट से 5 फुट तक होता है। इनका माथा ऊँचा और भौंहें बहुत कम होती हैं। इनकी नासिका चौड़ी तथा उभरी हुई और होंठ बाहर निकले हुए होते हैं। चेहरा छोटा और ठुड्डी के पास कटाव-सा है।

(c) **पिग्मी** - पिग्मी अफ्रीका के मध्य में, कांगों के बेसिन में रहते हैं। इनका कद छोटा 5 फुट से कम होता है। रंग काला, बाल ऊनी, होंठ उतने मोटे नहीं होते हैं, जितने कि नीग्रो के।

प्रजातिवाद
(Racism)

प्रजाति का आधार मानव के स्पष्ट शारीरिक लक्षण हैं। इन शारीरिक लक्षणों और प्रजाति के सम्बन्ध में अति प्राचीन काल से भ्रान्त एवं अवैज्ञानिक अवधारणाएँ चली आ रही हैं। यही कारण है कि आज विभिन्न प्रजातियों में अनेक प्रकार की गलत विचारधाराएँ प्रचलित हैं। यही कारण है कि कुछ प्रजातियाँ अन्य प्रजातियों से अपने को श्रेष्ठ या उच्च समझती हैं। प्रजाति जब अपने उग्र रूप में स्पष्ट होती है, तो इससे प्रजातिवाद की विचारधारा का जन्म होता है। प्रजातिवाद की धारणा जब किसी समाज में उग्र रूप धारणा करती है तो इससे सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार प्रजातिवाद एक सामाजिक व्याधि (Social pathology) है। इस समस्या के उग्र होने के कारण ही मानवशास्त्री और समाजशास्त्री समान रूप से इस समस्या में रुचि ले रहे हैं।

प्रजातिवाद का मौलिक सिद्धान्त यह है कि कुछ प्रजातियाँ श्रेष्ठ हैं और कुछ प्रजातियाँ हीन हैं। प्रजातियों की इस श्रेष्ठता और हीनता का आधार क्या है? जब प्रजातियों की श्रेष्ठता या हीनता उनके शारीरिक और मानसिक लक्षणों के आधार पर आँकी जाती है तो इसे प्रजातिवाद कहते हैं। ये शारीरिक और मानसिक लक्षण माता-पिता से उनकी सन्तानों को हस्तान्तरित होते रहते हैं। जैकोब्स और स्टर्न ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "प्रजातिवाद मानव समूह को भिन्न-भिन्न भागों में बाँटता है। ये विभिन्न समूह शारीरिक, मानसिक तथा स्वभाव सम्बन्धी विशेषताओं के कारण एक दूसरे से भिन्न रहता है। ये विशेषताएँ वंशानुक्रमण के द्वारा प्राप्त होती हैं और समाज शिक्षा तथा पर्यावरण का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इन वंशानुगत गुणों के कारण एक प्रजाति श्रेष्ठ तथा दूसरी हीन होती है। एक खास प्रजाति की संस्कृति का निर्माण और विकास भी वंशानुक्रमण के द्वारा ही होता है।"

प्रजातिवाद के तत्व (Elements of Racism)- जैकोब्स और स्टर्न की परिभाषा के अनुसार प्रजातिवाद के अग्रांकित तत्व होते हैं -

(1) एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से भिन्न है।

(2) मनुष्यों की इस भिन्नता का आधार उनके शारीरिक, मानसिक और स्वभाव सम्बन्धी विशेषताएँ हैं।

(3) शारीरिक, मानसिक और स्वभाव सम्बन्धी भिन्नताओं का कारण वंशानुक्रमण है।

(4) पर्यावरण के प्रभाव से शारीरिक, मानसिक और स्वभाव सम्बन्धी विशेषताओं में अन्तर नहीं आता है।

(5) मनुष्यों में शारीरिक, मानसिक और स्वभाव सम्बन्धी भिन्नताओं के कारण एक समाज उन्नति करता है तो दूसरा नहीं।

(6) वंशानुगत विशेषताओं के कारण जो समाज उन्नति करता है वह श्रेष्ठ है और जो उन्नति नहीं करता, वह हीन है।

(7) यही श्रेष्ठता और हीनता प्रजातिवाद का आधार है।

प्रजातिवाद का प्रारम्भ
(Origin of Racism)

प्रजातिवाद का प्रारम्भ 18-19 वीं शताब्दी में हुआ। इसके प्रारम्भ होने के दो प्रमुख कारण थे - भाषा-विज्ञान और साम्राज्यवाद।

(1) **भाषा विज्ञान** - प्रजातिवाद के प्रारम्भ होने का पहला कारण भाषा विज्ञान था। अधिकांशत: योरप की भाषाओं में समानता पाई जाती है और यह समानता भारत तक पाई जाती है। जो व्यक्ति इस भाषा को बोलते थे, उन्हें इण्डो-यूरोपियन कहा गया और वेदों में इन्हें आर्य प्रजाति के नाम से जाना गया है।

(2) **साम्राज्यवाद** - प्रजातिवाद के प्रारम्भ होने का दूसरा कारण साम्राज्यवाद है। साम्राज्यवाद के कारण हर एक देश दूसरे पर अपना आधिक्य स्थापित करना चाहता था। अंग्रेज, जर्मन और फ्रांसीसी प्रजाति की श्रेष्ठता का सहारा लेकर दुनिया में अपने साम्राज्य का प्रसार करना चाहते थे।

प्रजातिवाद के आधार
(Bases of Racism)

मौलिक समस्या यह है कि प्रजातिवाद का आधार क्या है? यही आधार एक प्रजाति को दूसरी प्रजाति से अलग करता है तथा समाज में प्रजातिवाद की भावना को विकसित करता है। समाज में जो अनेक व्यक्ति हैं उनमें शारीरिक और मानसिक दृष्टि से भिन्नता पाई जाती है। एक प्रजाति दूसरी प्रजाति से भिन्न है। इसी शारीरिक और मानसिक भिन्नता का आधार बनाकर कुछ प्रजातियों ने अपनी श्रेष्ठता की घोषणा की और इस प्रकार प्रजातिवाद का जन्म हुआ। संक्षेप में प्रजातिवाद के जो आधार हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) **श्रेष्ठता और निम्नता** (Superiority and Inferiority)- प्रजातिवाद का जो पहला आधार है, वह यह है कि कुछ प्रजातियाँ ऊँची हैं तो कुछ प्रजातियाँ निम्न हैं। प्रजातीय श्रेष्ठता और निम्नता की यह भावना समाज में तीन रूपों में क्रियाशील रहती है -

(a) **बौद्धिक** (Intellectual)- प्रजातियों में उच्चता और निम्नता की जो भावना है, उसका पहला आधार बुद्धि है। मानसिक दृष्टि से कुछ व्यक्ति अधिक बुद्धिमान होते हैं, तो कुछ व्यक्ति कम। इन विचारकों का ऐसा भी कहना है कि मानसिक तत्व एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है। इसके प्रमाण के लिए विचारक बुद्धि परीक्षा और खोपड़ी के घनत्व आदि प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

(b) **रक्त** (Blood)- प्रजातियों में श्रेष्ठता और निम्नता का जो दूसरा आधार है वह रक्त से सम्बन्धित है। ऐसा माना जाता है कि रक्त की दृष्टि से भी व्यक्तियों में उच्चता और निम्नता पाई जाती है। इसी उच्चता और निम्नता के आधार पर समाज में अर्न्तविवाह का जन्म हुआ। इसी से एक प्रजाति के व्यक्ति दूसरी प्रजाति में विवाह नहीं करते हैं। इससे रक्त मिश्रण में रोक लगाई जाती है। इससे भी प्रजातिवाद की समस्या को बल मिलता है।

(c) **संस्कृति** (Culture)- प्रजातियों की उच्चता और निम्नता का आधार संस्कृति को भी माना जाता है। जो व्यक्ति प्रजातिवाद में विश्वास करते हैं उनका कहना है कि उच्च प्रजाति के व्यक्तियों की संस्कृति उत्कृष्ट कोटि की होती है। इसके विपरीत निम्न प्रजाति के व्यक्तियों की संस्कृति निम्नकोटि की होती है। यही कारण है कि अविकसित समाजों को हीनता की दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार प्रजाति श्रेष्ठता और निम्नता का आधार संस्कृतियों में पाई जाने वाली श्रेष्ठता और निम्नता है।

(2) **अस्पृश्यता की भावना** (Feeling of Untouchability)- प्रजातिवाद के आधार में शुद्ध-अशुद्ध का भाव भी होता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कुछ प्रजातियाँ शुद्ध होती हैं, तो कुछ प्रजातियाँ अशुद्ध होती हैं। जो प्रजातियाँ शुद्ध होती हैं, वे दूसरों को अस्पृश्य मानती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में विभेदीकरण का जन्म होता है। इससे समाज का संगठन शिथिल होता है।

(3) **प्रजातीय वर्गीकरण** (Racial Classification)- प्रजातिवाद का तीसरा आधार प्रजातियों का किया जाने वाला वर्गीकरण है। प्रजातिवाद के शारीरिक वर्गीकरण के कारण इस भावना को शक्ति मिलती है। वर्गीकरण का परिणाम यह होता है कि समाज कई वर्गों में विभाजित हो जाता है। इस वर्गीकरण से उच्चता, निम्नता आदि का विकास होता है। इस वर्गीकरण के कारण समाज में प्रजातिवाद का अस्तित्व बना हुआ है।

(4) **सार्वजनिक अयोग्यताएँ** (Public Disabilities)- प्रजातिवाद का चौथा आधार सार्वजनिक अयोग्यताएँ हैं। शारीरिक लक्षणों तथा अन्य विशेषताओं के कारण व्यक्ति दूसरे समूहों में विभाजित हो जाता

है। कुछ व्यक्ति सार्वजनिक स्थानों का उपयोग स्वतंत्रता से कर सकते हैं, तो अन्य व्यक्ति नहीं। उपयोगिताओं की यह धारणा प्रजातिवाद को बढ़ावा देती है।

(5) **सामाजिक स्तरीकरण** (Social Stratification)- प्रजातिवाद का पाँचवाँ आधार सामाजिक स्तरीकरण है। प्रत्येक समाज में व्यक्तियों के बीच सामाजिक स्तर पाये जाते हैं। इस स्तर में सामाजिक दृष्टि से कुछ व्यक्ति नीचे होते हैं, तो कुछ व्यक्ति ऊँचे। जो प्रजातियाँ निम्न स्तरों पर होती हैं, वे सभी प्रकार के सामाजिक अधिकारों से वंचित रहती हैं। परिणामस्वरूप सामाजिक बहिष्कार को प्रोत्साहन मिलता है। इससे भी प्रजातिवाद की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

(6) **प्राणीशास्त्रीय भिन्नताएँ** (Biological Discriminations)- प्रजातिवाद का छठवाँ आधार प्राणीशास्त्रीय भिन्नताएँ हैं। प्राणीशास्त्रीय भिन्नता के कारण ही एक प्रजाति दूसरी प्रजाति को श्रेष्ठ या हीन समझती है। इस प्रकार प्राणीशास्त्रीय दृष्टि से जो समूहों में भिन्नताएँ पाई जाती हैं, इसके कारण भी प्रजातिवाद की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

(7) **आर्थिक विभेदीकरण** (Economic Differentiations)- प्रजातिवाद का सातवाँ और अन्तिम आधार आर्थिक विभेदीकरण है। इस विभेदीकरण के कारण कुछ व्यक्ति लाभ की आर्थिक क्रियाओं को सम्पादित करते हैं, तो कुछ व्यक्ति इससे वंचित रहते हैं। जैसे एक समूह पूँजी संग्रह कर सकता है और इसका उपयोग कर सकता है तो दूसरा नहीं। इससे भी प्रजातिवाद को प्रोत्साहन मिलता है।

प्रजातिवाद के विभिन्न स्वरूप
(Different Forms of Racism)

प्रजातिवाद का समाज में विभिन्न स्वरूपों में अस्तित्व है। इन विभिन्न स्वरूपों में कुछ निम्न हैं-

(1) एक प्रजाति द्वारा दूसरी प्रजाति को अलग समझना और उसके साथ प्रतिकूल व्यवहार रखना,

(2) प्रजातिवाद के तर्कहीन और अवैज्ञानिक आधार को मानना और इसी के अनुसार अन्याय और अत्याचार को प्रोत्साहित करना,

(3) अपनी प्रजाति से नीची प्रजाति के व्यक्तियों के साथ विवाह पर रोक लगाना,

(4) कानून में भिन्नता की प्रतिस्थापना करना। एक ही प्रकार के अपराध के लिए नीग्रो की तुलना में श्वेत प्रजाति के व्यक्तियों को कम दण्ड देना या उन्हें दण्ड से मुक्त कर देना, और

(5) दक्षिण अफ्रीका में जब किसी मरीज को रक्त की आवश्यकता होती है और यदि बिना बताए किसी भी प्रजाति का रक्त दे दिया जाए, तो ऐसा करना अपराध माना जाता था। एक प्रजाति दूसरी प्रजाति से भिन्न है। इसी और मानसिक भिन्नता को आधार बनाकर कुछ प्रजातियों ने अपनी श्रेष्ठता की घोषणा की और प्रजातिवाद का आरम्भ हुआ है। उदाहरणार्थ– जर्मनी में हिटलर ने घोषणा की कि जर्मन प्रजाति संसार में सर्वश्रेष्ठ है।

प्रजातिवाद और वास्तविकता
(Racism and Reality)

प्रजातिवाद का आधार श्रेष्ठता है, किन्तु इसकी वास्तविकता यह है कि संसार में अब कोई भी प्रजाति शुद्ध नहीं है। अतः न तो कोई प्रजाति श्रेष्ठ है और न ही हीन है। प्रजाति के निर्माण में पर्यावरण का प्रमुख हाथ रहा है। सभी प्रजातियाँ एक ही 'मेधावी मानव' की सन्तानें हैं। प्रजातिवाद के सम्बन्ध में वास्तविकता की जाँच निम्न आधारों पर की जा सकती है।

(1) **प्रजातीय सम्मिश्रण**- प्रजातिवाद का आधार श्रेष्ठता है और इस श्रेष्ठता का आधार रक्त की शुद्धता है, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि आज कोई भी प्रजाति शुद्ध नहीं है। नस्लों का सम्मिश्रण हर एक प्रजाति में पाया जाता है।

(2) **शारीरिक लक्षण-** प्रजातिवाद का आधार व्यक्ति के शारीरिक लक्षण भी हैं। कुछ प्रजाति के लोग गोरे और लम्बे होते हैं, तो कुछ प्रजाति के काले और छोटे। इन शारीरिक लक्षणों में अन्तर का आधार वातावरण है। अत: यह कहना कि गोरी प्रजाति काली प्रजाति से श्रेष्ठ है, गलत है।

(3) **बुद्धि परीक्षा** - प्रजातिवाद के समर्थन में विद्वान बुद्धि को भी आधार मानते हैं। उनका कहना है कि कुछ लोग अधिक बुद्धिमान होते हैं और कुछ लोग कम। जो बुद्धिमान हैं, वे ऊँची प्रजाति के हैं, किन्तु बुद्धि-परीक्षणों के आधार पर ऐसा सिद्ध हो गया है कि किसी भी प्रजाति के व्यक्ति दूसरी प्रजातियों की तुलना में अधिक बुद्धिमान नहीं है।

(4) **मस्तिष्क की तौल** - भिन्न-भिन्न प्रजातियों का मस्तिष्क तौल भी भिन्न-भिन्न होता है और प्रजातिवाद के समर्थक विद्वानों ने मस्तिष्क के वजन को भी बुद्धि का आधार माना है। आधुनिक युग में ऐसा सिद्ध हो गया है कि किसी भी प्रजाति के मस्तिष्क का तौल अन्य प्रजाति से कम या अधिक होना श्रेष्ठता या हीनता का आधार नहीं है।

(5) **प्रौद्योगिक विकास** - प्रजाति श्रेष्ठता का अन्तिम आधार प्रौद्योगिक विकास है। जिस प्रजाति ने सभ्यता का विकास किया, वह श्रेष्ठ है और जिस प्रजाति ने सभ्यता का विकास नहीं किया, वह हीन है, किन्तु आधुनिक युग में प्रौद्योगिक विकास और प्रजाति का कोई सम्बन्ध नहीं है।

सभी मानवों की उत्पत्ति एक ही मेधावी मानव से हुई है। वातावरण की भिन्नता के कारण शारीरिक और मानसिक लक्षणों में भिन्नता आ गई है। इस भिन्नता को श्रेष्ठता या हीनता का आधार नहीं मानना चाहिये। अत: प्रजातिवाद का सिद्धान्त गलत है।

प्रजाति के सम्बन्ध में आधुनिकतम निष्कर्ष
(Latest Conclusions Regarding Race)

1952 के सितम्बर माह में यूनेस्को (UNESCO-United Nations Educational, Social and Cultural Organization) संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन के तत्वावधान में शरीर मानवशास्त्रियों और प्रजननशास्त्रियों का जो सम्मेलन हुआ था उसमें प्रजाति के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष निकाले गए थे-

(1) भूमण्डल के सम्पूर्ण मानव एक ही जाति के हैं क्योंकि वे एक ही मेधावी मानव की सन्तानें हैं।

(2) राष्ट्रीय, धार्मिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा भाषा समूह प्रजाति नहीं है।

(3) वंशानुक्रमण और पर्यावरण से शारीरिक लक्षणों में अन्तर आ जाता है।

(4) सभी मानवशास्त्री प्रजातियों का निम्न वर्गीकरण स्वीकार करते हैं -

(a) कार्कशायड, (b) मंगोलायड, (c) निग्रोयड।

(5) प्रजातियों के वर्गीकरण में बुद्धि को सम्मिलित नहीं किया जाता है। सभी प्रजातियों में बुद्धिमान व्यक्ति होते हैं।

(6) सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण प्रजातीय भिन्नताएँ नहीं होती हैं।

(7) प्रजाति एक बाधा है क्योंकि यह मानव को मानव से अलग करती है।

भारत की प्रजातियाँ
(Races of India)

भारतीय जनसंख्या में जो प्रजातीय तत्व हैं उनकी समस्या अत्यन्त ही अस्पष्ट और जटिल है। भारतीय जनसंख्या में प्रजातियों का ठीक-ठीक और वैज्ञानिक मूल्यांकन करना असंभव है। यदि हम भारतीय इतिहास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में विभिन्न प्रजातियों

का आगमन होता आया है। यदि इस आवागमन के कारणों की व्याख्या करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसका मूल कारण राजनैतिक कम और भौगोलिक अधिक है। भारतवर्ष एक विशाल उपद्वीप है और आदिकाल से ही यही जीवन साधन की वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रही हैं। यही कारण है कि भारत की ओर अनेक विदेशी प्रजातियाँ आकर्षित हुईं, आक्रमण किया और यहाँ के मूल निवासियों को हराकर बस गए।

अनेक विदेशी प्रजातियों द्वारा आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में अनेक प्रजातियों का जमघट हो गया। यही कारण है कि आज भारत में अनेक प्रकार की प्रजातियाँ निवास करती हैं।

भारतीय प्रजातियों का वर्गीकरण
(Classification of Indian Races)

भारतीय जनसंख्या का आधार अनेक प्रजातीय तत्व (Racial Elements) हैं। इन प्रजातीय तत्वों का वर्णन भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। कुछ प्रमुख विद्वानों के वर्गीकरण को अग्रांकित तालिका में दिखाया गया है -

भारतीय प्रजातियों का वर्गीकरण

रिजले	हड्डन	हट्टन	गुहा
1. द्रविण	1. आदिम द्रविण	1. नीग्रिटो	1. नीग्रिटो
2. इण्डोआर्यन	2. द्रविण	2. प्रोटोआस्ट्रेलायड	2. प्रोटोआस्ट्रेलायड या निषाद
3. मंगोल	3. इण्डोआर्यन	3. भूमध्य सागरीय	3. मंगोलायड या किरात
4. इण्डो-डैवेडियन	4. इण्डोअल्पाइन	4. अल्पाइन	4. भूमध्य सागरीय या द्रविण
5. मंगोलो-डैवेडियन	5. मंगोलायड	5. मंगोलायड	5. चौड़े सिर की प्रजातियाँ
6. सीडियन डैवेडियन		6. इण्डोआर्यन	(i) अल्पाइन
7. तुर्की-इरानियन			(ii) डिनारी
			(iii) आर्मीनायड
			6. इण्डोआर्यन या नार्डिक

रिजले का वर्गीकरण
(Classification By Risley)

भारत में प्रजातियों के सम्बन्ध में सबसे पहले रिजले ने चर्चा की थी। उसने प्रजातियों को सात भागों में बाँटा है। अपने इस वर्गीकरण में उसने अण्डमान के नीग्रटो प्रजाति को सम्मिलित नहीं किया है। उनके अनुसार नीग्रो प्रजाति का भारत की प्रजातियों में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। रिजले के अनुसार भारत की प्रजातियाँ निम्न हैं -

(1) **द्रविण** - द्रविण लोग भारत के दक्षिण में पाये जाते हैं। विशेष रूप से छोटा नागपुर, मद्रास, हैदराबाद तथा मध्यप्रदेश में पाए जाते हैं। पनियन और संथाल प्रजातियों में इस प्रकार के लक्षण पाए जाते हैं। इनकी शारीरिक विशेषताओं में काला रंग, काली आँखें, अधिक बाल और छोटा कद है। इनकी नाक चपटी और खोपड़ी लम्बी होती है।

(2) **इण्डोआर्यन** - यह प्रजाति कश्मीर, राजपूताना, हरियाणा तथा पंजाब आदि जगहों में पाई जाती है। जाट और खत्री इसी वर्ग में सम्मिलित किए जाते हैं। ये शारीरिक दृष्टि से लम्बे-चौड़े व्यक्ति होते हैं। इनका रंग गोरा होता है। नाक उभरी हुई होती है, आँखें कालीं और खोपड़ी लम्बी होती है।

(3) **मंगोल** - इस प्रजाति को किरात भी कहा जाता है। यह प्रजाति हिमालय के तराइयों में पाई जाती है। नेपाल, सिक्किम, असम, मणिपुर, बर्मा आदि स्थानों में यह प्रजाति अधिक मात्रा में पाई जाती है। इनका चेहरा चपटा होता है, सिर चोड़ा, नाक छोटी तथा आँखे ढंकी सी रहती है। इनका कद छोटा होता है। और शरीर पर बाल नहीं होते हैं।

(4) **इण्डो-द्रैवेडियन-** जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, यह प्रजाति इण्डो आर्यन और द्रैवेडियन प्रजाति के सम्मिश्रण से बनी है। ये लोग कद में छोटे होते हैं, नाक चौड़ी तथा खोपड़ी लम्बी होती है। इनका रंग भूरे तथा काले के बीच होता है।

(5) **मंगोलो-द्रैवेडियन-** यह प्रजाति भी मंगोल और डैवेडियन प्रजाति के सम्मिश्रण से बनी है। यह प्रजाति बंगाल तथा गुजरात में पाई जाती है। बंगाल में रहने वाले कायस्थ, ब्राह्मण और मुसलमान इसी प्रजाति के हैं। इनका कद छोटा होता है, रंग काला, सिर गोल तथा चौड़ा, चेहरे पर काफी बाल इनकी विशेषता है।

(6) **सीडियन-द्रैवेडियन-** यह प्रजाति भी सीडियम और डैवेडियन के सम्मिश्रण से बनी है और मंगोल प्रजाति की ही एक शाखा है। ये मध्यप्रदेश, सौराष्ट्र तथा कुर्ग के पहाड़ी इलाकों में पाये जाते हैं। इनका कद मध्यम होता है, रंग गोरा, शरीर पर कम बाल, चौड़े सिर, छोटी-सी नाक इस प्रजाति की अन्य विशेषताएँ हैं।

(7) **टर्की-इरानियन-** यह प्रजाति अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान के सीमावर्ती इलाकों में निवास करती है। ये कद से लम्बे होते हैं, रंग गोरा, आँखों का रंग काला, काफी दाढ़ी, चेहरे पर बाल, नुकीली नाक, चौड़ा सिर उनकी विशेषताएँ हैं।

हड्डन का वर्गीकरण
(Classification of Haddon)

हड्डन के अनुसार भौगोलिक दृष्टि से भारत को 3 भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) हिमालय प्रदेश,

(2) उत्तरी मैदान, और

(3) दक्षिणी पठार।

हड्डन का विचार है कि भारत की मूल प्रजाति आदिम द्रविण है। आपका विचार है कि यहाँ पर आदि काल से ही विदेशियों का आगमन होता रहा है। आगमन के इस क्रम में आर्य प्रजाति सर्वप्रथम रही है। सबसे पहले जब आर्य प्रजाति आई तो इसने पंजाब को अपना निवास-स्थान बनाया। कालान्तर में यह प्रजाति राजस्थान और दोआब के क्षेत्र में फैल गई। हड्डन के अनुसार यद्यपि आर्य जाति और आदिम द्रविण जाति में शारीरिक समानताएँ पाई जाती हैं। आदिम द्रविण प्रजाति के सिर लम्बे और चौड़े होते हैं। हड्डन का वर्गीकरण निम्नलिखित है -

(1) **आदिम-द्रविण** (Pre-Dravidians)- प्रारम्भिक काल में भारत में अनेक प्रजातियाँ थीं जो एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमा करते थे। भारत की इस सर्वप्रथम प्रजाति को प्रोटो आस्ट्रेलायड कहा जाता है। प्रोट का अर्थ है पहला। इस प्रजाति को निषाद के नाम से भी जाना जाता है। यह प्रजाति भारतवर्ष में सबसे पहले आई थी।

(2) **द्रविण** (Dravidian)- इस प्रजाति को भूमध्य सागरीय प्रजाति के नाम से भी जाना जाता है। यह प्रजाति आदिम द्रविण के बाद आई और सर्वप्रथम पश्चिमी बंगाल में बस गए। इसके बाद छोटा नागपुर में फैल गए।

(3) **इण्डो आर्यन** (Ando-Aryan)- द्रविणों के बाद भारत में आर्य भाषाओं को बोलने वाली प्रजाति आई। यह प्रजाति ने सबसे पहले पंजाब को अपना निवास-स्थान चुना। कालान्तर में यह प्रजाति गंगा-जमुना की घाटी में फैल गई।

(4) **इण्डो अल्पाइन** (Indo Alpine)- आर्यों के बाद भारत में काकेशियन प्रजाति की अल्पाइन शाखा के व्यक्ति, जिनका सिर चौड़ा होता है, भारत में आकर बसी। हड्डन का विचार है कि भारत में अल्पाइन शाखा के व्यक्ति मंगोलों से पहले आकर बसे थे।

(5) **मंगोलायड** (Mangoloid)- भारत में इण्डो अल्पाइन के बाद मंगोल प्रजाति के व्यक्ति आए और नेपाल, असम तथा बर्मा में आकर बसे गये। यदि हम भारतीय साहित्य का सहारा लें तो इन मंगोलों को किरात के नाम से सम्बोधित किया गया है।

डॉ. हट्टन का वर्गीकरण
(Classification of Hutton)

डॉ. हट्टन 1929 में भारतवर्ष के जनगणना आयुक्त नियुक्त किए गए थे। इन्होंने भारतीय प्रजातियों को निम्न भागों में विभाजित किया है -

(1) नीग्रिटो, (2) प्रोटो आस्ट्रेलायड, (3) भूमध्य सागरीय, (4) अल्पाइन, (5) मंगोलायड, (6) इण्डो आर्यन।

डॉ. हट्टन का वर्गीकरण अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। अत: इस प्रजाति वर्गीकरण का विस्तृत विवरण नहीं दिया जाएगा। इसके साथ ही रिजले, हट्टन और गुहा के वर्गीकरण का अध्ययन करने से डॉ. हट्टन के वर्गीकरण को भी आसानी से समझा जा सकता है।

डॉ. गुहा का वर्गीकरण
(Classification By Dr. Guha)

डॉ. गुहा ने डॉ. हट्टन के द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण को ही अधिक वैज्ञानिकता प्रदान करने का प्रयास किया था। डॉ. गुहा ने भारतवर्ष को भौगोलिक दृष्टि से निम्न 7 भागों में विभाजित किया है -

(i) उत्तरी पश्चिमी हिमालय क्षेत्र,
(ii) भारतीय गंगा का क्षेत्र,
(iii) मध्य भारत तथा गुजरात,
(iv) भारतीय प्रायद्वीप,
(v) उत्तरी-पूर्वी भारत,
(vi) ब्रह्मा (बर्मा), और
(vii) असम।

डॉ. गुहा ने मानवशास्त्र की वैज्ञानिक पद्धति से भारत के विभिन्न क्षेत्रों के 2511 व्यक्तियों का स्वयं परीक्षण किया था और इन्हीं परीक्षणों के आधार पर उन्होंने भारतीय प्रजातियों को निम्न भागों में विभाजित किया था -

(1) **नीग्रिटो** (Negrito)- यह नीग्रो प्रजाति की ही एक शाखा है। डॉ. गुहा का विचार है कि यह भारत की सबसे पुरानी प्रजाति है। भारत में इस प्रजाति के अंश पूर्वी बिहार की राजमहल की पहाड़ियों की जनजातियों, ट्रावनकोर, कोचीन की पहाड़ियों में निवास करने वाली कादार जनजाति और असम के अंगामी नागाओं में मिलते हैं। इस प्रजाति की शारीरिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

(a) चौड़ा सिर,
(b) गहरा काला रंग,
(c) ऊनी बाल,
(d) चौड़ी नाक,
(e) मोटे होंठ, आदि।

(2) **प्रोटो आस्ट्रेलायड** (Proto-Australoid)- डॉ. गुहा के अनुसार मध्यभारत की अधिक जातियाँ इसी प्रजाति की हैं। दक्षिणी भारत में भी यह प्रजाति पाई जाती है। इस प्रजाति की शारीरिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

(a) लम्बे सिर, (b) छोटा कद, (c) घुँघराले और काले बाल,
(d) चाकलेटी चमड़ी का रंग, (e) चौड़ी नाक, (f) मोटे होंठ,
(g) काली-भूरी आँख।

(3) **मंगोलायड** (Mangoloid)- भारत में इस प्रजाति की दो शाखाएँ हैं -

(a) **प्राचीन मंगोलायड** - जो असम, सीमा प्रान्त, बर्मा और चटगाँव आदि में पाए जाते है।

(b) **तिब्बती मंगोलायड-** यह शाखा तिब्बत, असम, भूटान आदि में पाई जाती है।

इस प्रजाति की प्रमुख शारीरिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

(i) त्वचा का रंग भूरा या पीला, (ii) चपटा हुआ चेहरा,
(iii) उभरी हुई गालों की हड्डियाँ, (iv) छोटी और चपटी नाक,
(v) चौड़ा सिर, (vi) मोटे होंठ।

(4) **भूमध्य सागरीय** (Mediterranean)- भारत में इस प्रजाति की तीन शाखाएँ हैं -

(a) **प्राचीन भूमध्य सागरीय-** यह प्रजाति पंजाब और गंगा की ऊपरी घाटी में पाई जाती है,

(b) **भूमध्य सागरीय-** यह प्रजाति पंजाब और गंगा की ऊपरी घाटी में पाई जाती है,

(c) **पूर्वी प्रारूप-** यह शाखा पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तरप्रदेश में फैली हुई है।

इनकी प्रमुख शारीरिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

(i) मध्यम कद, (ii) लम्बा सिर, (iii) भूरा रंग,
(iv) चौड़ा मुँह, (v) पतले होंठ, (vi) घुँघराले बाल।

(5) **पश्चिमी चौड़े सिर वाले** (Western Brachycephalic)- भारत में इस प्रकार की प्रजाति निम्न तीन शाखाओं में है -

(a) **अल्पाइन** - यह प्रजाति प्रमुख रूप से गुजरात में पाई जाती है। इसके साथ ही साथ यह प्रजाति मध्य भारत-पूर्वी उत्तरप्रदेश, बिहार आदि में भी कहीं-कहीं पाई जाती है। इस प्रजाति की शारीरिक विशेषताएं निम्न हैं -

(i) भूमध्य सागरीय जाति से हल्का भूरा रंग,
(ii) चौड़ा सिर, (iii) सँकरी नाक,
(iv) कद मध्यम, (v) शरीर पर अधिक बाल।

(b) **डिनारी-** यह प्रजाति बंगाल, उड़ीसा, काठियावाड़, कन्नड़ और तमिल भाषा भाषी प्रदेशों में निवास करती है। कुर्ग में यह शाखा सबसे शुद्ध रूप में पाई जाती है। इस शाखा की प्रजाति की शारीरिक विशेषताएँ निम्न हैं -

(i) अपेक्षाकृत काला रंग, (ii) मध्यम चौड़ा सिर,

(iii) लम्बा चेहरा, (iv) लम्बी नतोदर नाक।

(c) **आर्मीनॉयड-** मुम्बई के पारसी इसी शाखा की प्रजाति के व्यक्ति हैं। इनकी शारीरिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

(i) श्वेत वर्ण रंग,

(ii) छोटे से मध्यम तक कद,

(iii) सँकरी दबी हुई नाक।

(6) **नॉर्डिक** (Nordic)- इस प्रजाति के लोग सिन्धु घाटी की उत्तरी घाटी कुमार-चितराल नदियों की घाटियों में और हिन्दूकुश पर्वत के दक्षिण में पाई जाती है। यह प्रजाति पंजाब, कश्मीर और राजस्थान में भी फैली हुई है। इस प्रजाति की शारीरिक विशेषताएँ निम्न हैं -

(i) लम्बा सिर, (ii) ऊँची-पतली नाक, (iii) लम्बे कद,

(iv) पतले होंठ, (v) सीधे-घुँघराले बाल, (vi) गोरा या गेहुँआ रंग।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जनजातियों का आर्थिक वर्गीकरण स्पष्ट कीजिए।
2. जनजातियों का प्रजातीय वर्गीकरण लिखिए।
3. प्रजातियों का वर्गीकरण स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ लिखिए।
2. वनों पर आधारित अर्थव्यवस्था का वर्णन कीजिए।
3. जनजातीय अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण लिखिए।
4. प्रजाति के तत्व लिखिए।
5. प्रजातिवाद के विभिन्न स्वरूप स्पष्ट कीजिए।



5

जनजातीय परिवार

(TRIBAL FAMILY)

यदि परिवार को मानव समाज के इतिहास की धुरी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसका कारण यह है कि समस्त मानव समाज का इतिहास परिवार का इतिहास है। मनुष्य अपने जन्म के साथ से ही परिवार का सदस्य हो जाता है और अपने जीवन के अन्तिम काल तक वह किसी न किसी रूप में परिवार का सदस्य रहता है। मानव समाज का इतिहास उसकी विरासत (Heritage) का भी इतिहास होता है। परिवार वह महत्वपूर्ण संस्था है जो मानव समाज की विरासत की रक्षा करता है और उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने में मदद करता है। परिवार एक ऐसी संस्था है जिसके अभाव में मानव अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। परिवार समाज की ऐसी मूलभूत संस्था है, जो मानव अस्तित्व की रक्षा करती है तथा उसकी सामाजिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती है।

परिवार शब्द अंग्रेजी के Family शब्द का हिन्दी रूपांतर है। Family लैटिन भाषा के Famulus शब्द से निकला है जिसका अर्थ होता है 'नौकर'। इस प्रकार परिवार के अन्तर्गत माता-पिता, बच्चे, नौकर और यहाँ तक कि गुलामों को भी सम्मिलित किया जाता था। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूपों में परिवर्तन होते रहते हैं। परिवार बिना बच्चों के भी हो सकते हैं या माता-पिता और बच्चों को मिलाकर हो सकते हैं। परिवार व्यक्ति पर जबरन लादी गई संस्था नहीं है, बल्कि वह सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जन्म से ही स्वेच्छा से इसकी सदस्यता स्वीकार करता है।

परिवार की परिभाषा
(Definition of Family)

परिवार की सार्वभौमिक और सर्वसम्मत परिभाषा देना असम्भव है। इसका कारण यह है कि देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूप भी भिन्न-भिन्न हैं। फिर भी कुछ विद्वानों ने परिवार की परिभाषा दी है, जिससे परिवार शब्द की आत्मा का बोध लगाया जा सकता है। परिवार की कुछ परिभाषाएं निम्न हैं :

(1) **मैकाइवर और पेज** - "परिवार वह समूह है जिसके अन्तर्गत स्त्री पुरुष यौन-सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो और उसका सम्बन्ध ऐसा हो जिससे सन्तान उत्पन्न हो और उनका पालन-पोषण भी किया जाये।"

(2) **इलियट और मेरिल** - "परिवार पति-पत्नी तथा बच्चों की एक जीवकीय सामाजिक संस्था है। यह एक सामाजिक संगठन है जिसके द्वारा कुछ मानवीय आवश्यकताएँ पूर्ण की जाती हैं।"

(3) **डेविस** - "परिवार ऐसे व्यक्तियों का वह समूह है, जिनके आपस के सम्बन्ध गोत्र व्यवस्था पर आधारित होते हैं और जो इस प्रकार एक दूसरे के रक्त सम्बन्धी होते हैं।"

इस प्रकार "परिवार में सिर्फ माता-पिता एवं बच्चे ही नहीं आते, अपितु वे सभी व्यक्ति आते हैं, जो रक्त सम्बन्धी हों गोद लिए हुए हों तथा जिन्हें परिवार या समाज ने परिवार में रहने की अनुमति प्रदान की हो।"

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने परिवार की अलग-अलग परिभाषा प्रस्तुत की है। यदि इन परिभाषाओं की व्याख्या की जाय, तो स्पष्ट प्रतीत होता है। कि **मैकाइवर** और **पेज** द्वारा प्रस्तुत समाजशास्त्र की परिभाषा अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

परिवार की विशेषताएँ
(Characteristics of Family)

मैकाइवर और **पेज** ने परिवार की आठ विशेषताएँ बतलायी है। ये विशेषताएँ हर एक समाज में पाई जाती हैं। ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

(1) **सार्वभौमिकता** (Universality) - परिवार निम्न कारणों से सार्वभौमिक संस्था है :

(a) परिवार हर एक युग और समाजों में पाया जाता है, चाहे वह समाज आदिम हो या आधुनिक।

(b) भविष्य में भी परिवार का अस्तित्व बना रहेगा।

(c) दूसरी संस्थाएँ परिवार की तुलना में इतनी सार्वभौमिक नहीं है।

(d) परिवार की इस सार्वभौमिकता के दो मूल कारण हैं -

(1) परिवार के माध्यम से व्यक्ति अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(2) इसके अतिरिक्त अन्य अनेक कार्य हैं जो परिवार के ही माध्यम से संपादित किये जाते हैं।

(2) **भावनात्मक आधार** (Emotional Basis) - समाज में जितनी संस्थाएँ हैं वे किसी न किसी आधार पर टिकी हुई हैं। परिवार का भी इसी प्रकार एक निश्चित आधार है। परिवार जिस आधार पर टिका हुआ है, उसका सम्बन्ध भावनाओं से है। कानून या नींव से नहीं। जैसे पति-पत्नी के मानसिक संबंध, माँ का बच्चों के प्रति स्नेह, पालन-पोषण की व्यवस्था, सहायता और सुरक्षा आदि ऐसी अनेक भावनाएँ हैं, जिन भावनाओं के आधार पर परिवार टिका हुआ है।

(3) **रचनात्मक प्रभाव** (Formative Influence) - **अरस्तू** के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसके साथ ही परिवार को शिशु के समाजीकरण की पहली पाठशाला कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि बालक के व्यक्तित्व के विकास में परिवार का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। परिवार के क्रियात्मक प्रभाव के दो कारण हैं :

(a) परिवार के सदस्यों के व्यवहारों में दिखावटीपन नहीं रहता।

(b) परिवार के सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर ध्यान न देकर सामूहिक स्वार्थों की ओर ध्यान देते हैं।

(4) **सीमित आकार** (Limited Size) - परिवार प्राणीशास्त्रीय दशाओं पर आधारित होते हैं। इसलिये परिवार का सदस्य सिर्फ वही व्यक्ति हो सकता है -

(a) जिसने परिवार में जन्म लिया हो।

(b) जिसने उस परिवार के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये हों।

(c) जो अन्य सामाजिक सम्बन्धों या रक्त सम्बन्धों के माध्यम से परिवार से जुड़े हुए हों।

इन सबके अतिरिक्त यदि हम अन्य समाजों से परिवार की तुलना करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसका आकार अत्यन्त ही सीमित और छोटा होता है।

(5) **सामाजिक ढाँचे में केन्द्रीय स्थिति** (Nuclear Position in the Social Structure) - यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू के अनुसार समुदाय परिवारों का एक यन्त्र मात्र है। सामाजिक ढाँचे का निर्माण अनेक छोटी बड़ी संस्थाओं के माध्यम से होता है। ये सभी संस्थाएँ समाज के ढाँचे में भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थायी रहती हैं। परिवार भी इसी प्रकार की सामाजिक संस्था है किन्तु इस सामाजिक संस्था की मौलिक विशेषता यह है कि इसकी स्थिति सामाजिक ढाँचे में है।

यही कारण है कि अन्य संस्थाओं की तुलना में परिवार का महत्व सबसे अधिक है।

(6) **सदस्यों का असीमित उत्तरदायित्व** (Unlimited Responsibility of Members) - परिवार के संगठन का आधार कानून न होकर मानवीय भावना और मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं। यही कारण है कि व्यक्ति पारस्परिक सहायता और सुरक्षा से प्रेरित रहते हैं। परिवार के सदस्यों में व्यक्तिवाद की भावना नहीं पाई जाती। इसका परिणाम यह होता है कि सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थों से परे होकर सामूहिक स्वार्थ का अनुसरण करते हैं। भावनाओं के आधार पर परिवार का निर्माण होने के कारण इसके सदस्यों का उत्तरदायित्व असीमित रहता है।

(7) **सामाजिक विधान** (Social Regulations) - सामाजिक नियन्त्रण परिवार की मौलिक इकाई है। प्रत्येक समाज में सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखकर कुछ विशिष्ट प्रकार के नियमों का निर्माण किया जाता है। इसी प्रकार के नियम परिवार में भी होते हैं। परिवार में नियन्त्रण का यह आधार कानून पर आधारित न होकर मानवीय नियन्त्रण पर आधारित होता है। प्रत्येक परिवार में पारिवारिक निषेध पाये जाते हैं और प्रत्येक सदस्य इन निषेधों का पालन करता है। इस प्रकार परिवार में नियन्त्रण बना रहता है।

(8) **परिवार की स्थायी एवं अस्थायी प्रकृति** (Permanent and Temporary Nature) - परिवार के दो स्वरूप हैं- पहला स्वरूप संस्था के रूप में है जबकि दूसरा स्वरूप समिति के रूप में है। समिति के रूप में परिवार पति-पत्नी, बच्चों तथा अन्य सदस्यों का समूह है। इस अवस्था में परिवार अस्थायी है। विवाह-विच्छेद जन्म और मृत्यु के कारण होता रहता है यह परिवार का समिति रूप है। संस्था के रूप में परिवार नियमों और कार्यप्रणालियों का समूह है। व्यक्तियों के बदलने के बावजूद भी परिवार के नियम सदैव स्थायी रहते हैं। इस प्रकार संस्था के परिवार स्थायी हैं, जबकि समिति के रूप में परिवार अस्थायी हैं। इसलिए परिवार की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा जाता है कि परिवार स्थायी भी है और अस्थायी भी।

परिवार के प्रकार
(Types of Family)

परिवार सार्वभौमिक संस्था अवश्य है किन्तु देश, काल की परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूपों में भिन्नता पाई जाती है। किन्हीं समाजों में मातृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं तो किन्हीं समाजों में पुत्रसत्तात्मक परिवार। इसके अतिरिक्त संयुक्त, विस्तृत और व्यक्तिगत तथा अन्य अनेक प्रकार के परिवार भिन्न-भिन्न समाजों में पाये जाते हैं। परिवार के स्वरूपों में भिन्नताओं को देखते हुए समाजशास्त्रियों ने इसका वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। संक्षेप में परिवार के प्रमुख स्वरूपों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) **सदस्यों की संख्या और संगठन के आधार पर** - परिवार का पहला वर्गीकरण दो आधारों पर किया जाता है :

(a) सदस्यों की संख्या की दृष्टि से। (b) परिवार के संगठन की दृष्टि में।

इन दोनों आधारों को सामने रखकर समाजशास्त्रियों ने परिवार को प्रमुख रूप से निम्न तीन भागों में विभाजित किया है -

(i) **व्यक्तिगत परिवार** - यह परिवार का वह स्वरूप है जिसमें पति, पत्नी और उनके बच्चे सम्मिलित रहते हैं। व्यक्तिगत परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, एक व्यक्ति के परिवार को कहते हैं। आधुनिक सभ्यता और नगरीकरण के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत परिवारों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है।

(ii) **विवाही-सम्बन्धी परिवार** - विवाह सम्बन्धी परिवार को संक्षेप में दो परिवारों का मिलन कहा जा सकता है। यूरोप और अन्य पश्चिमों देशों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। विवाह-सम्बन्धी परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, इस परिवार में विवाह-सम्बन्धों में बंधने वाले दोनों परिवारों के कुछ सदस्य सम्मिलित होते हैं।

(iii) **संयुक्त परिवार** - संयुक्त परिवार कई परिवारों का मिला-जुला स्वरूप है। इसमें अनेक व्यक्तिगत परिवार सम्मिलित रहते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन में संयुक्त परिवारों के सबसे अधिक उदाहरण देखने को

मिलते हैं। इन परिवारों में पति-पत्नी तथा उनके बच्चों के अतिरिक्त अनेक पीढ़ियों के सदस्य तथा सम्बन्धी सम्मिलित रहते हैं। संयुक्त परिवारों के साथ-ही-साथ अब इसका स्वरूप विस्तृत परिवार के रूप में बदलता जा रहा है।

(2) **सत्ता, स्थान तथा वंश परम्परा के आधार पर** - विद्वानों का जो दूसरा वर्गीकरण किया है, उसके आधार में मुख्य रूप से तीन तत्व सम्मिलित हैं -

(a) सत्ता या शक्ति का केन्द्रीकरण।

(b) स्थान का महत्व।

(c) वंश-परंपरा या वंश-नाम का आधार।

इन तीनों दृष्टिकोणों को सामने रखकर प्रमुख रूप से परिवारों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(i) **मातृ-सत्तात्मक परिवार** - मातृसत्तात्मक परिवार जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट होता है परिवार का वह स्वरूप है परिवार की पूरी सत्ता माता या पत्नी के हाथों में होती है। इन परिवारों की वंश परम्परा ही माता के नाम पर चलती है। सम्पत्ति का उत्तराधिकार माता से पुत्री को हस्तांतरित होता है। विवाह उपरान्त पति को अपनी पत्नी के घर में रहना पड़ता है। संक्षेप में ये वे परिवार हैं जिनमें आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा अन्य प्रकार की सत्ता पति के हाथों में रहकर पत्नी के हाथों में होती है। मातृसत्तात्मक समाज विकास की प्रारम्भिक अवस्था में भले ही रहे हों आज ये अत्यन्त ही कम समाजों में देखने को मिलते हैं।

(ii) **पितृसत्तात्मक परिवार** - आधुनिक युग में सभ्य कहे जाने वाले सभी समाजों में पितृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं। पितृसत्तात्मक परिवार मातृसत्तात्मक परिवारों की उल्टी स्थिति वाले होते हैं। इन परिवारों में वंश-परंपरा पुरुष के नाम से चलती है। विवाह के पश्चात पत्नी को पति के घर में रहना पड़ता है। परिवार की पूरी सत्ता पुरुष के हाथों में होती है। परिवार का उत्तराधिकारी भी पुरुष ही होता है।

(3) **विवाह के आधार पर** - विवाह के आधार पर सबसे पहले यह सिद्ध किया गया है कि परिवार एक समिति भी है और एक संस्था भी। यह इस प्रकार की समिति है, जिसका निर्माण वैवाहिक बन्धनों के आधार पर होता है। प्रत्येक समाजों में वैवाहिक बन्धनों में भिन्न-भिन्न आधार होते हैं। जब विवाह भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं तो इसका परिणाम यह होगा कि परिवार भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होंगे। इसी दृष्टि को सामने रखकर विवाह के आधार पर परिवारों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) **एक-विवाही-परिवार** - जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस प्रकार के परिवारों में पुरुष को केवल एक स्त्री से विवाह करने का अधिकार प्रदान किया जाता है। यदि हम सामाजिक उद्विकास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के परिवार आधुनिक सभ्यता के परिणाम हैं। वर्तमान समाज अत्यधिक जटिल और तनावपूर्ण होता जा रहा है। इस तनाव और जटिलता से मुक्ति पाने के लिये इसे एक साधन के रूप में चुना जा रहा है। एक-विवाही-परिवार को साधन के रूप में चुना जा रहा है।

(ii) **बहुविवाही परिवार** - ये वे परिवार हैं जिनमें पुरुष या स्त्री एक से अधिक स्त्रियों या पुरुषों के साथ विवाह करते हैं। बहुविवाही परिवारों को निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है :

(a) **बहुपति-विवाही-परिवार** - वे परिवार है जिनमें परिवार की एक स्त्री का विवाह अनेक पुरुषों के साथ होता है। इन परिवारों में माता की प्रधानता होती है। इसके साथ ही साथ ये परिवार मातृवंशी और मातृस्थानीय भी होते हैं। इस प्रकार के विवाह का मुख्य कारण विषम आर्थिक परिस्थितियाँ हैं।

(b) **बहुपत्नी विवाही-परिवार** - बहुपत्नी-विवाह, विवाह का वह स्वरूप है जिसमें एक पुरुष अनेक पत्नियों से विवाह करता है। इस प्रकार के परिवार पितृसत्तात्मक स्थानीय और पितृवंशीय होते हैं।

परिवार के कार्य
(Functions of Family)

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक **अरस्तू** ने इस प्रकार के विचार व्यक्त किये थे कि 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।'

इसका तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनना है तो इसके लिए समाज अनिवार्य है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में समाज की अनेक संस्थाओं का योगदान रहता है। इन संस्थाओं में परिवार, पड़ोस, शिक्षा संस्थाएँ राजनैतिक संस्थाएँ आदि हैं।

इन सभी संस्थाओं की तुलना में परिवार का सबसे अधिक महत्व है। इसलिये ऐसा कहा जाता है कि परिवार शिशु के समाजीकरण की पहली पाठशाला है। समाजीकरण का अर्थ है कि व्यक्तित्व का विकास करना, मानव व्यक्तित्व के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व के विकास में व्यक्ति के लिये परिवार अनेक कार्यों का सम्पादन करता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मोरेल ने परिवार के कार्यों को निम्न भागों में विभाजित किया है :

(1) **प्राणीशास्त्रीय कार्य** - इनमें यौन-संबंधी इच्छाओं की पूर्ति, सन्तानोपत्ति और उपभोग के कार्य सम्मिलित हैं।

(2) **आर्थिक कार्य** - इसमें उत्पत्ति और उपभोग के कार्य सम्मिलित हैं।

(3) शिक्षा संबंधी कार्य।

(4) व्यक्ति के सामाजिक पद का निर्धारण।

(5) व्यक्ति को धार्मिक मार्ग-दर्शन प्रदान करना।

(6) मनोरंजन सम्बन्धी कार्य।

(7) पारिवारिक स्नेह तथा सहानुभूति के कार्य।

विविध विद्वानों ने परिवार के कार्यों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए परिवार के कार्य निम्न प्रकार है—

(1) मौलिक कार्य

परिवार के प्रमुख मौलिक कार्य निम्न हैं -

(a) **सन्तानोत्पत्ति** - स्त्री और पुरुष में माँ-बाप बनने की एक स्वाभाविक मूल-प्रवृत्ति पाई जाती है। परिवार ही एक ऐसा साधन है जो इस मूल-प्रवृत्ति को पूर्ण करता है।

(b) **प्रजाति का विकास** - मानव-शरीर क्षणभंगुर है, इसका नाश अवश्य होता है, अगर परिवार उत्पादन का कार्य न करे तो एक समय ऐसा आ सकता है जब परिवार और मानव-जाति पूरी तरह समाप्त जाये। परिवार ही एक ऐसा माध्यम है जो मानव-प्रजाति को नष्ट होने से बचाता है।

(c) **मनो-सामाजिक कार्य** - मनुष्य जन्म से न तो मनुष्य होता है और न सामाजिक ही। ये दोनों वह परिवार के द्वारा ही सीखता है। परिवार सांस्कृतिक आदान-प्रदान का केन्द्र होता है व्यक्तित्व के विकास की पहली पाठशाला परिवार ही है, परिवार से ही व्यक्ति बनता या बिगड़ता है। बच्चा केवल सांस्कृतिक इकाई के रूप में ही नहीं पैदा होता है, परन्तु व्यक्तित्व की अन्त:क्रिया के एक पर्यावरण भी पैदा होता है। **बालर और हिल** ने इसीलिये परिवार को व्यक्तित्व की अन्त:क्रिया का अखाड़ा कहा है।

(2) परम्परात्मक कार्य

(1) **बच्चों का पालन-पोषण** - यौन सम्बन्ध का परिणाम सन्तानोत्पादन होता है। बच्चा जब पैदा होता है तो वह अवस्था बड़ी नाजुक होती है अगर परिवार बच्चे का लालन-पोषण न करे, तो असहाय बालक वहीं समाप्त हो सकता है। बच्चों का पालन-पोषण का कार्य परिवार का महत्वपूर्ण कार्य है।

(2) **सदस्यों की शारीरिक रक्षा** - सहायता तथा रक्षा परिवार के मुख्य कार्य हैं। परिवार वृद्धावस्था में व्यक्ति को सहायता प्रदान करता है और आपत्तियों से सुरक्षा प्रदान करता है। परिवार ही एक ऐसी संस्था है जो व्यक्ति की सहायता और सुरक्षा का बीमा प्रदान करता है। इस कार्य के अन्दर शारीरिक चोट व बीमारी से रक्षा, घायल व अपाहिजों की सेवा और जन्म के समय और बाद में माँ और नवजात शिशु की देखभाल आदि सम्मिलित है।

(3) **भोजन की व्यवस्था** - भोजन की व्यवस्था करना परिवार का कार्य है। परिवार अपने सदस्यों के लिये भोजन प्रबन्ध करता है। परिवार सामूहिक उत्पादन का केन्द्र होता है, साथ ही एक चूल्हा का पका भोजन सभी सदस्य करते हैं।

(4) **स्थान तथा कपड़ों की व्यवस्था** - सदस्यों के रहने के लिए एक सामान्य मकान की व्यवस्था करना भी परिवार का कार्य है, जिसमें गर्म, वर्षा और ठण्डक से इसके सदस्य की शारीरिक रक्षा हो सके। मकान के साथ ही आवश्यकताओं के अनुसार वस्त्रों की व्यवस्था करना भी परिवार का कार्य है।

(5) **श्रम-विभाजन** - ऐसा कोई भी परिवार नहीं है जिसमें श्रम-विभाजन न पाया जाता हो। स्त्रियों के कार्य पुरुषों के कार्यों से बिल्कुल भिन्न होते हैं और इसी प्रकार वृद्धों, युवकों और बच्चों के कार्यों में भिन्नता पाई जाती है। इस श्रम विभाजन के मुख्य आधार दो हैं- यौन और आयु।

(6) **उत्पादन केन्द्र** - आय के बिना परिवार के सदस्यों के भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं है। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवार के सदस्य मिलकर उत्पादन करते हैं।

(7) **सम्पत्ति** - प्रत्येक परिवार में कुछ सम्पत्ति होती है जिस पर परिवार का नियंत्रण होता है। चाहे वह सम्पत्ति मकान, जमीन, आभूषण या अन्य किसी रूप से हो। इस सम्पत्ति का प्रबन्ध करना परिवार का कार्य है।

(8) **उत्तराधिकार** - प्रत्येक परिवार में उत्तराधिकार की प्रथा पाई जाती है। परिवार मातृवंशीय और पितृवंशीय मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। मातृवंशीय परिवारों में उत्तराधिकार पुत्रियों को मिलता है और पितृवंशीय परिवारों में उत्तराधिकारी पुनः होते है। व्यक्तियों को उचित उत्तराधिकार प्रदान करना परिवार का मुख्य कार्य है।

(9) **पद निश्चित करना** - परिवार का सदस्य होने पर ही व्यक्ति अपना पद निश्चित करता है। यदि परिवार प्रतिष्ठित है तो समाज में व्यक्ति की स्थिति ऊंची होगी और अगर परिवार प्रतिष्ठित नहीं होगा तो उसी के अनुसार व्यक्ति का पद भी होगा। इसलिए परिवार को सामाजिक स्थिति प्रदान करने वाला प्रतिनिधि कहा जाता है।

(10) **समाजीकरण** - परिवार समाजीकरण की पहली इकाई है। परिवार जैसा होगा उसी के आधार पर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सामाजिक नियमों, व्यवहारों, परम्पराओं और रीति-रिवाजों का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर अमिट छाप पड़ती है। इसलिए यह कहा जाता है कि परिवार की छाप व्यक्तित्व पर अमिट होती है।

(11) **सामाजिक सुरक्षा** - अनेक सामाजिक दुर्घटनाओं से परिवार व्यक्ति की रक्षा करता है। किसी सदस्य का दिवालिया होना, बदनाम होना, अपमानित होना परिवार की प्रतिष्ठा पर आक्रमण समझा जाता है। व्यक्ति को परिवार इस प्रकार की सामाजिक सुविधाएँ प्रदान करता है।

(12) **सामाजिक नियन्त्रण** - परिवार प्राथमिक समूह है, अत: इसका नियंत्रण सदस्यों पर अत्यधिक कठोर होता है। कोई भी सदस्य पारिवारिक नियन्त्रण की अवहेलना नहीं कर सकता है। परिवार को एक संगठित इकाई बनाये रखने में नियन्त्रण का अत्यधिक महत्व है।

(13) **सभ्यता का हस्तान्तरण** - परिवार आने वाली पीढ़ी को सभ्यता का हस्तांतरण करता है। परिवार ही एक ऐसी संस्था है जो सभ्यता और संस्कृति की रक्षा, उसका सम्वर्धन और उसे आने वाली पीढ़ियों को हस्तान्तरित करती है।

(14) **जीवन-साथी का चुनाव** - परिवार जीवन-साथी के चुनाव में सहायता प्रदान करने वाली संस्था है। परिवार की प्रतिष्ठा के आधार पर ही जीवन-साथी का चुनाव सम्भव होता है। परिवार-विहीन व्यक्तियों को जीवन-साथी के चुनाव में काफी अड़चनें आती हैं वैसे शिक्षा के विकास के साथ इस ओर कम ध्यान दिया जाने लगा।

(15) **सांस्कृतिक कार्य** - संस्कृति शब्द संस्कार से बना है और संस्कार व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित होते हैं। शिष्टाचार का प्रभाव बच्चे के जीवन पर अमिट रूप से पड़ता है। परिवार संस्कृति के सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो कार्य करता है, पहला संस्कृति की रक्षा और संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरण करता है। लोक-रीतियाँ और रूढ़ियाँ संस्कृति की रक्षा करते हैं और सन्तानें उसे अपनाती हैं। परिवार का यह महत्वपूर्ण कार्य है।

(16) **धार्मिक और आध्यात्मिक कार्य** - परिवार अनेक धार्मिक उत्सवों और विधियों का केन्द्र होता है। सभी धार्मिक कार्य परिवार के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं और सामूहिक उत्सव में परिवार के सभी व्यक्ति भाग लेते हैं। परिवार के सभी सदस्य एक ही देवता की पूजा करते हैं और समान धार्मिक कार्यों में भाग लेते हैं। एक ही प्रकार से व्रत और त्योहारों में भाग लेते हैं। परिवार में रहकर ही बच्चों में आध्यात्मिक गुणों का विकास होता है। माता-पिता के धार्मिक आचरण बालक के समान आदर्श होते हैं। बालक इन समस्त गुणों को परिवार में ही सीखते हैं।

(17) **नैतिक कार्य** - नैतिकता मानव-जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। जिस मनुष्य में नैतिक गुणों का अभाव होता है, वह मनुष्य नहीं है। सभ्य और सुसांस्कृतिक जीवन के लिए नैतिकता आवश्यक है। परिवार इन गुणों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

(18) **मनोरंजनात्मक कार्य** - काम, आराम और मनोरंजन मानव-जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। यदि मनुष्य को आराम और मनोरंजन न मिले और वह निरन्तर परिश्रम करता रहे, तो उसका शरीर शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा। मनोरंजन एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी खोई हुई शक्ति को पुन: प्राप्त कर लेता है और उसमें नई उमंग आ जाती है। परिवार मनोरंजन का एक ऐसा केन्द्र है जो बिना पैसे के ही स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन प्रदान करता है। जब व्यक्ति दिन भर के कार्य से थका-हारा घर लौटता है तो वह मनमोहक बच्चों को देख और उससे खेलकर प्रसन्न हो जाता है। परिवार में होने वाले उत्सव, त्यौहार आदि भी मनोरंजन करते हैं।

(19) **राजनैतिक कार्य** - परिवार एक प्रशासकीय इकाई है इसलिये इसका राजनैतिक महत्व भी किसी हालत में कम नहीं है। परिवार में अनुशासन के अनुरूप में मुखिया होता है। परिवार में सदस्य जनसंख्या, निवास-स्थान और भूमि होते हैं। राज्य के तत्व परिवार में भी पाये जाते हैं। परिवार राजनैतिक कार्यों में महत्वपूर्ण योग देता है।

(20) **प्रेम** - बच्चे से माँ और परिवार के अन्य सदस्य प्रेम करते हैं। मनुष्य अनुकरणीय प्राणी है, अत: बालक इसका अनुकरण कर प्रेम की भावना को सीख जाता है। आगे चलकर उसका प्रेम परिवार, ग्राम, राष्ट्र से बढ़ते-बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय हो जाता है। परिवार के प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है

कि यह विशुद्ध और स्वार्थ रहित होता है। प्रेम का यह रूप सामाजिक प्रेम में परिणत होकर समाज की शांति और व्यवस्था ठीक करने में सहायता करता है।

(21) **सामंजस्य** - परिवार में एक-दूसरे के सुख-दुख का ध्यान रखा जाता है। पति-पत्नी का सम्बन्ध सामंजस्य का एक उदाहरण है। बालक सामूहिक जीवन सीख जाता है और अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेता है।

(22) **सहयोग** - सहयोग पारिवारिक संगठन का आधार है। अगर सहयोग समाप्त हो जाय तो परिवार विघटित हो जाता है। बाल्यावस्था में ही बालक सहयोग की भावना का अनुकरण करता है और परिवार से सीखे हुए इस सहयोग का प्रयोग बालक समाज पर करता है जो शांति और व्यवस्था के लिए आवश्यक है।

(23) **आत्म-त्याग** - परिवार में माँ बाप अपने बच्चों के लिए प्राणों का भी त्याग कर सकते हैं। यही आत्म-त्याग की भावना बच्चे के मन में घर कर जाती है और बालक सिर्फ परिवार के लिए ही नहीं बल्कि देश और मानवता की रक्षा के लिये आत्म-त्याग करना सीख जाता है।

(24) **परोपकार** - परिवार के सदस्य परोपकार की भावना से ओत-प्रोत रहते हैं। परिवार में अनेक सदस्य ऐसे होते हैं, जो शारीरिक या मानसिक कमियों के कारण अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते हैं, परिवार के अन्य सदस्य इसका उत्तरदायित्व लेते हैं और यही भावना बालक सीख जाता है।

(25) **आज्ञा-पालन** - बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है, वह देखता है कि लोग किस प्रकार अपने बड़ों की आज्ञा का पालन करते हैं, और बालक स्वयं आज्ञा-पालन करना सीख जाता है।

(26) **कर्तव्य-पालन** - परिवार एक ऐसी संस्था है जो हर एक सदस्य के सुख और सुविधा का ख्याल रखता है। इसके बदले लोग कर्तव्य-पालन सीख जाते हैं। कर्तव्य-पालन की भावना व्यक्ति को आदर्श नागरिक बनने में सहायता करती है।

परिवार का समाजशास्त्रीय महत्व
(Sociological Significance of Family)

परिवार समाज की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है और समाजीकरण के क्षेत्र में इसका योगदान सबसे अधिक है। परिवार समाज की मूलभूत संस्था है और इसी के चारों ओर सभी संस्थाएँ केन्द्रित और अन्त: सम्बन्धित हैं। इस दृष्टि से परिवार समाज की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण संस्था है। सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र में परिवार के योगदान या इसके महत्व को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) **समाजीकरण के केन्द्र** (Centre of Socilisation) - **जॉनसन** ने लिखा है कि परिवार विशेष रूप से इस प्रकार संगठित रहता है जो समाजीकरण को संभव बनाता है। इसका तात्पर्य यह है कि परिवारिक संगठन शिशु के समाजीकरण का आधारभूत तत्व है। **अरस्तू** ने इसीलिए परिवार को शिशु के समाजीकरण की आधारभूत संस्था कहकर सम्बोधित किया था। शिशु का सम्पूर्ण जीवन परिवार में बीतता है। वह परिवार में जन्म लेता है और समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा समाज में रहने के योग्य बनाता है। परिवार ही व्यक्तित्व को निर्मित करता है। यहीं से प्राणीशास्त्रीय जीव सामाजिक जीव में परिवर्तित हो जाता है। परिवार ही व्यक्ति को सामाजिक बनाता है और उसमें गुणों का विकास करता है। इस प्रकार परिवार व्यक्ति का समाजीकरण करके उसे सामाजिक प्राणी बनाता है।

(2) **सामाजिक गुणों का विकास** (Development of Social Qualities) - परिवार के सामाजिक कार्यों से स्पष्ट होता है कि इसका कार्य व्यक्ति में अनेक सामाजिक गुणों को विकसित करता है। ये सामाजिक गुण व्यक्ति को आदर्श नागरिक बनाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज के सभी व्यक्ति नियन्त्रण में रहते हैं। इन सामाजिक गुणों में भ्रातृत्व, स्नेह, सहयोग, परोपकार, त्याग सेवा, कर्त्तव्य-पालन, अनुकूलन, आज्ञा-पालन आदि प्रमुख हैं। ये सभी सामाजिक गुण व्यक्ति को समाज में व्यवस्था की स्थापना में सहायता करते हैं।

(3) **व्यवस्थित यौन-सम्बन्ध** (Systematic Sex-relation) - परिवार अपने सदस्यों के यौन-सम्बन्धी व्यवहारों का निगमन और नियन्त्रण करता है। भूख और प्यास जैसे ही यौन-क्षुधा की पूर्ति भी व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। परिवार विवाह को कानूनी आधार प्रदान करके व्यक्ति की यौन-सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति करता है। इस प्रकार व्यक्ति के यौन-व्यवहारों को नियंत्रित आवश्यकता करके सामाजिक जीवन में व्यवस्था करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

(4) **वैवाहिक नियन्त्रण** (Marital Control) - परिवार अपने सदस्यों पर अनेक प्रकार के विवाह सम्बन्धी नियन्त्रण लगाता है। परिवार अपने सदस्यों के विवाह के बारे में सम्पूर्ण व्यवस्था करता है तथा निश्चित करता है कि विवाह का सम्पादन कब और कहाँ किया जाय? वैवाहिक आयु और कार्यों का निर्धारण भी परिवार के द्वारा ही होता है। परिवार विवाह की पद्धतियों का भी निर्धारण करता है। इस प्रकार परिवार अनेक प्रकार से व्यक्ति के कार्यों और व्यवहारों को निश्चित करके समाज में व्यवस्था स्थापित करने में योग देता है।

(5) **आर्थिक व्यवस्था का निर्धारण** (Determination of Economic System) - आर्थिक क्रियाएँ मानव जीवन का आधार हैं। अर्थव्यवस्था के आधार पर ही समाज की व्यवस्था निर्धारित होती है। परिवार व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओं और व्यवहारों को निर्देशित तथा संचालित करता है। परिवार ही सम्पत्ति की व्यवस्था करता है तथा उत्तराधिकार के नियमों का निर्धारण करता है। प्रत्येक परिवार में श्रम-विभाजन (Division of Labour) पाया जाता है और आयु तथा पद के आधार पर सदस्यों को आर्थिक क्रियायें निश्चित की जाती हैं। परिवार की आर्थिक क्रियाएं अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि परिवार के सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना पाई जाती है। परिवार के परम्परागत व्यवसाय होते हैं और सदस्य इन्हीं व्यवसायों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनाते रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बेरोजगारी की समस्या का भी समाज को सामना नहीं करना पड़ता है।

(6) **सम्बन्धों और भावनाओं का विकास** (Development of Relations and Emotions) - परिवार समाज की वह सामाजिक संस्था है जो अपने सदस्यों में स्वस्थ सामाजिक सम्बन्धों और भावनाओं को विकसित करता है। जन्म से ही बालक परिवार के सम्बन्धों के अपने अहं को पराये में परिवर्तित कर देता है। विकास के साथ ही अनुभव करता है कि माता को निःस्वार्थ सेवा तथा परिवार के सदस्यों को स्वस्थ और कल्याणकारी भावनाएँ उसके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। परिवार के सदस्यों में पाई जाने वाली भावनाएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करती हैं। परिवार में सदस्यों के साथ व्यक्ति जिस प्रकार का व्यवहार करता है, उसी प्रकार का व्यवहार वह समाज के सदस्यों के साथ भी करता है और इसका परिणाम यह होता है कि सामाजिक सदस्यों में भावनात्मक एकता स्थापित होती है। यह भावनात्मक एकता सामाजिक व्यवस्था में योग देती हैं।

(7) **संस्कृति का ज्ञान** (Knowledge of Culture) - परिवार अपने सदस्यों को संस्कृति का भी ज्ञान कराता है। संस्कृति समाज की आधार वस्तु होती है और इसी के आधार पर सामाजिक प्राणी अपने व्यवहारों को संचालित तथा निर्देशित करते हैं। यदि हम सामाजिक उद्विकास की विवेचना करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे-ही-जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ है, परिवार के स्वरूप और कार्यों में भी परिवर्तन हुआ है। समाज और परिवार इस प्रकार से अन्तः सम्बन्धित हैं कि उन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। समाज का लघु आकार परिवार है और परिवार का वृहद् आकार समाज है। इसीलिए भारतीय समाजशास्त्रियों ने सम्पूर्ण विश्व को परिवार मानकर 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा को व्यक्त किया। यही कारण है कि **डॉ पी.एन. प्रभु** ने परिवार को सामाजिक नियन्त्रण की महत्वपूर्ण संस्था माना था।

(8) **अनुशासनात्मक कार्य** (Disciplinary Functions) - परिवार अनुशासन की आधारशिला प्रस्तुत करता है। परिवार का यही अनुशासन सामाजिक और राष्ट्रीय अनुशासन में परिवर्तित हो जाता है। परिवार में रहकर बालक माता-पिता की आज्ञा का पालन करता है और इस प्रकार अपने जीवन को अनुशासन

में ढालने का प्रयास करता है। परिवार से बड़ा होकर जब व्यक्ति समाज में आता है, तो सामाजिक प्रशासन को स्वीकार करता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में एकता और नियन्त्रण की स्थापना होती है।

(9) **मनोवैज्ञानिक भूमिका** (Psychological Role) - मनोविज्ञान मानव-जगत को सबसे अधिक प्रभावित करता है। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे की मन:स्थिति या मनोदशा का अध्ययन करते हैं और उनके अनुरूप व्यवहारों तथा क्रियाओं को सम्पादित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ ऐसी मनोवैज्ञानिक लालसाएँ होती हैं, जिनकी पूर्ति परिवार में सम्भव है। उदाहरण के लिए दाम्पत्य प्रेम, पिता-पुत्र का स्नेह, माँ और पुत्री का स्नेह आदि। इन मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार के बाहर सम्भव नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि परिवार मनोवैज्ञानिक सूत्रों से व्यक्ति की क्रियाओं को बाँधता है तथा उन्हें संशोधित करता है। इससे जीवन में एकता का विकास होता है और यही एकता सामाजिक नियन्त्रण के लिए आधार प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्य संस्थाओं की तुलना में परिवार का समाजशास्त्रीय महत्व अत्यधिक है।

परिवार में परिवर्तन के कारण
(Causes of Changes in Family)

आधुनिक परिवार परिवर्तन प्रक्रिया से गुजर रहा है। इसके स्वरूप, ढाँचे और कार्यों में परिवर्तन हो रहा है। इसका कारण क्या है? परिवार में परिवर्तन क्यों हो रहे हैं? **गिलिन और गिलिन** के अनुसार कोई भी एक कारण परिवर्तन के लिए उत्तरदायी नहीं है। अनेक कारण पारिवारिक परिवर्तन में योगदान दे रहे हैं। **गिलिन और गिलिन** ने परिवार में परिवर्तन के प्रमुख कारणों को चार भागों में बाँटा है- आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और दार्शनिक।

(1) **आर्थिक कारण** - परिवार में परिवर्तन के कारणों में आर्थिक कारण सबसे महत्वपूर्ण हैं। प्रमुख कारण, जो परिवार में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हैं, निम्न हैं :

(a) **औद्योगिक क्रांति** - औद्योगिक क्रांति का आगमन जीवन के महान क्षेत्रों में परिवर्तन के साथ हुआ। औद्योगिक क्रांति से पूर्व समुदाय और परिवार आत्मनिर्भर थे। परिवार में कृषि के अतिरिक्त छोटे-छोटे उद्योग होते थे और इन्हीं से परिवार के सदस्यों की आवश्यकताएं पूरी हो जाती थीं। औद्योगिक क्रांति ने विशाल नगरों को जन्म दिया। अर्थ-व्यवस्था परिवर्तित हो गई। परिवार के सदस्य नौकरी की तलाश में घर से बाहर फैक्टरियों में जाने लगे। व्यापारिक उतार-चढ़ाव ने नौकरी को अस्थिर बना दिया। दिन-प्रति-दिन औरतें फैक्टरियों में काम की तलाश में जाने लगीं और परिवार का स्वरूप धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगा।

(b) **उच्च जीवन-स्तर** - औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप परिवार के उत्पादन सम्बन्धी कार्यों में अवनति के साथ ही जीवन-स्तर की उन्नति हुई। औद्योगीकरण में धन की मात्रा में वृद्धि हुई और इससे आवश्यकताओं में वृद्धि हुई। भौतिक वस्तुओं के संग्रह को अधिक महत्व देने से पारिवारिक जीवन की स्थिरता पर भी प्रभाव पड़ा है। 'पारिवारिक आय या व्यय' परिवार के झगड़ों का मूल कारण है।

(c) **स्त्रियों की आर्थिक निर्भरता** - आधुनिक पत्नी अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने पति की दास नहीं है। घर का काम आधुनिक स्त्री के लिए पिछड़ेपन की निशानी समझा जाता रहा है और दूसरों की गुलामी करना सभ्य समाज का प्रमुख अंग बनता जा रहा है। विवाह उनके लिए धार्मिक बन्धन नहीं है वे विवाह को आर्थिक सहायता, सहानुभूति और प्रेम के रूप में देखना चाहती हैं। वे सुखहीन वैवाहिक जीवन को कदापि स्वीकार नहीं कर सकती हैं। इसका कारण यह है कि अब ये स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होने लायक हैं। परिणामस्वरूप तलाकों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

(d) **पत्नी की आर्थिक निर्भरता** - आधुनिक युग में परिवार के कार्य राज्य तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं द्वारा किये जाने लगे हैं। कार्यों के अभाव में आज की पत्नी सिर्फ अपने पति के मनोरंजन का साधन

मात्र रह गई है और इसे वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकती है। वह खाली समय का सदुपयोग करना चाहती है। वह पति के साथ कार्यालयों तथा अन्य संस्थाओं में काम कर सकती है। इसका परिणाम यह होता है कि संयुक्त परिवारों की संख्या में कमी होती है और वे व्यक्तिगत परिवारों में परिवर्तित हो जाते हैं। व्यक्तिगत परिवारों में तनाव और संघर्षों की संख्या में वृद्धि हो रही है। ऐसी परिस्थितियाँ परिवार की स्थिरता को नष्ट करने में सहायक हो रही हैं।

(e) **नौकरी में लगी माताएँ** - बहुधा कार्य करने वाली माताएं अपने बच्चों की देखभाल नहीं कर पाती हैं। इस कारण बच्चे नियन्त्रण से परे हो जाते हैं, उनमें अनेक बुराइयों का विकास हो जाता है। उनमें आवारापन और भगोड़ापन की भावना का विकास हो जाता है और अन्त में इन सबकी परिणति बाल अपराध के रूप में होती है। काम करने वाली पत्नियों के स्वभावों में अहम् की भावना का विकास हो जाता है। पत्नी अपने को स्वेच्छापूर्ण परिस्थितियों में पाती है और इस प्रकार परिवार का विघटन प्रारम्भ हो जाता है।

(f) **मशीन, उद्योग और श्रम का सूक्ष्म विभाजन** - औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व मनुष्य कृषि पर निर्भर था और उसकी सभी आवश्यकताएँ परिवार में ही पूरी होती थीं। औद्योगिक क्रान्ति के बाद मशीन ने अनेक व्यवसायों को जन्म दिया इससे परिवार की आत्मनिर्भरता पर करारी चोट लगी। इसके कारण भी परिवार के कार्यों और स्वरूपों में परिवर्तन हुआ है।

(2) **राजनैतिक कारक** - राजनीतिक कारक भी परिवार में परिवर्तन लाने में सहायक हुए हैं। आज पारिवारिक सत्ता में महान परिवर्तन हुए हैं। प्रमुख राजनीतिक कारक निम्न हैं :

(a) **माता-पिता के ऊपर राज्य की प्रभुसत्ता** - आज राज्य की सर्वसत्ता सम्पन्न है और वह माता-पिता के कार्यों पर नियन्त्रण रखता है। राज्य को अधिकार है कि वह लापरवाह, अज्ञानी और दुराचारी माता-पिता से सन्तानों की रक्षा करे। इस उद्देश्य से बाल न्यायालयों का गठन किया गया है। वाल न्यायालय बुद्धिमान माता-पिता की भाँति बालकों के विकास में सहायता करता है। राज्य ने शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की व्यवस्था करके माता-पिता के अधिकारों में कमी कर दी है। आज भी माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजने या टीका लगवाने से इन्कार नहीं कर सकता है।

(b) **स्त्रियों का निर्वाचन का राजनैतिक अधिकार** - आधुनिक युग स्वतन्त्रता और असमानता का है। इस युग में लिंग के आधार पर स्त्रियों को किसी कार्य से वंचित नहीं किया जा सकता है। वे राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में समान रूप से भाग ले सकती हैं। उन्हें अनेक प्रकार के अधिकारों के उपभोग की छूट है। तलाक को कानूनी मान्यता प्राप्त है और इसे बुरा नहीं माना जाता है।

(3) **सामाजिक कारण** - परिवार के स्वरूप और कार्यों में परिवर्तन के लिए सामाजिक कारक भी महत्वपूर्ण हैं। प्रमुख सामाजिक कारक निम्न हैं :

(a) **जनसंख्या की गतिशीलता** - औद्योगीकरण, यातायात और सन्देश वाहन के साधनों में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनसंख्या अत्यधिक गतिशील हो गई है। आधुनिक परिवार भी गतिशील हो गये हैं। काम की खोज में व्यक्ति घरों से दूर जाने लगे हैं, इससे परिवारों की स्थिरता समाप्त हो गई है। सदस्यों के दूर चले जाने से नियन्त्रण का अभाव हो गया है। पारिवारिक सम्बन्ध शिथिल पड़ गये हैं।

(b) **स्त्रियों की उच्च शिक्षा** - स्त्रियों की उच्च-शिक्षा के परिणामस्वरूप अब स्त्रियाँ परिवार के निर्णयों में स्वतन्त्र रूप से भाग ले सकती है। उच्च-शिक्षा के परिणामस्वरूप विवाह की आयु में वृद्धि हो गई है। अधिक आयु में विवाह करने से स्त्री और पुरुषों में सामंजस्य नहीं हो पाता है। अनेक पुरुष अपनी उच्चता बनाये रखने के लिए कम पढ़ी-लिखी लड़कियों से विवाह करते हैं। उच्च शिक्षा-प्राप्त स्त्रियाँ वर्तमान परिवारों से भी सामंजस्य नहीं कर पाती हैं। शिक्षित पत्नी होने से बच्चे कम होते हैं अत: इसका परिवार के आकार पर भी प्रभाव पड़ा है।

(c) **नगरीकरण** - नगरीकरण परिवार के सदस्यों को एक-दूसरे से दूर कर देता है। पिता परिवार से दूर फैक्ट्री या ऑफिस की चहारदीवारों में रहता है, माँ घर के काम या फैक्ट्री के काम में व्यस्त रहती है। पति-पत्नी एक दूसरे की थकान और आराम का अनुभव नहीं कर पाते हैं। बच्चे नियन्त्रण से परे हो जाते हैं। माता-पिता में संघर्ष और झगड़े बने रहते हैं और पारिवारिक विघटन को बल मिलता है।

(d) **शहरी मकान** - शहरों में मकानों की कमी के परिणामस्वरूप 'मकान विहीन परिवार' और 'मकान विहीन बच्चों' की संख्या में वृद्धि हो रही है। शहरी मकानों में गोपनीय स्थानों का अभाव रहता है। एक मकान में कई परिवारों के सदस्य रहते हैं और उसी में जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी कुछ होता है। इस प्रकार के मकानों में सबसे अधिक धक्का नव-दम्पत्तियों को लगता है और वैवाहिक विरोध का जन्म होता है।

(e) **व्यावसायिक मनोरंजन** - छोटे मकान और उनमें पूर्ण व्यवस्था न होने के कारण परिवार के सदस्य घर के बाहर पैसा देकर मनोरंजन करते हैं। माता-पिता इतने थके होते हैं कि परिवार के लिए अधिक समय नहीं दे पाते हैं। बच्चे भी व्यावसायिक मनोरंजन में समान रूप से भाग लेते हैं। इसका बालक पर अमिट और बुरा प्रभाव पड़ता है।

(f) **बिजली** - विद्युत ने पारिवारिक व्यवहारों पर गहरा प्रभाव डाला है। विशेषकर टेलीफोन, रेडियो, लैंप, टेलीविजन, विद्युत, इस्त्री, रेफ्रीजरेटर आदि का परिवार पर गहरा प्रभाव पड़ा है। नौकरों की संख्या में कमी हो गई है। धुलाई और सिलाई का काम घर पर होने लगा है। बिजली से खाना पकाया जाने लगा है।

(g) **औषधियाँ** - चिकित्सा के क्षेत्र में अपूर्व उन्नति हुई है, इससे व्यक्ति की औसत आयु बढ़ गई है, मनुष्य ने असाध्य रोगों पर विजय प्राप्त कर ली है, बच्चों की मृत्यु दर में कमी आई है। आज बुढ़ापा और बुढ़ापे की समस्या में वृद्धि हो गई है।

(4) **दार्शनिक कारक** - परिवार का परिवर्तन करने वाले प्रमुख दार्शनिक कारक निम्न हैं :

(a) **विवाह के धार्मिक सिद्धान्त का ह्रास** - आज विवाह एक धार्मिक संस्कार न होकर मात्र समझौता बनकर रह गया है। यह समझौता त्याग, अपहरण और तलाक के द्वारा टूट सकता है। परिवार भंग हो जाने से सामाजिक अव्यवस्था, स्त्रियों का अनादर और यौन-व्यभिचार में वृद्धि हो रही है।

(b) **भौतिकवादी और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण** - आज व्यक्ति भौतिक सुख-सुविधा पर अधिक ध्यान देता है। साथ ही वह 'स्वतः प्रदर्शन' को महत्व देता है। वह परिवार और समाज से दूर हटकर सिर्फ अपने बारे में सोचता है। इन विचारों ने पारिवारिक संगठन को प्रभावित किया है।

(c) **प्रस्तावित नये दर्शन** - पारिवारिक सम्बन्धों के बारे में प्रस्तावित दर्शन निम्न हैं :

(i) पहला दर्शन यह है कि प्रेम में स्वतन्त्रता होनी चाहिए। स्वतन्त्रता के इस विचार ने परिवार में अनेक परिवर्तन किये हैं।

(ii) इस युग में वैयक्तिक सुख की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(iii) प्रायोगिक विवाहों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

(iv) 'संतान् आवश्यक नहीं' इस प्रकार की धारणाओं का विकास हो रहा है।

(v) पारिवारिक जीवन में सन्तानोत्पत्ति की अपेक्षा 'काम' (Sex) को अधिक महत्व दिया जा रहा है।

(vi) आजकल स्त्री और पुरुषों के मिलने-जुलने, साथ-साथ घूमने-पढ़ने आदि की स्वतन्त्रता मिल गयी है।

उपर्युक्त सभी सामाजिक दर्शनों ने परिवार को परिवर्तित किया है।

जनजातीय परिवार
(Tribal Family)

समाज अत्यन्त ही विस्तृत संरचना है। इसकी संरचना का निर्माण अनेक संस्थाओं और समूहों के द्वारा होता है। सामाजिक संरचना में परिवार सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। इसके साथ ही परिवार की मौलिक विशेषता यह है कि परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। परिवार संस्था का अस्तित्व सभी समाजों में समान रूप से है। परिवार का अस्तित्व आदिम और आधुनिक, शिक्षित और अशिक्षित, संगठित और विघटित सभी समाजों में समान रूप से है। इतना निश्चित है कि अलग-अलग समाजों में परिवार के स्वरूप में विविधता पाई जाती है। परिवार के कुछ निश्चित सामान्य लक्षण होते हैं जो कम या अधिक मात्रा में विश्व के प्रत्येक परिवार में होते हैं। इन्हीं लक्षणों के आधार पर परिवार को अन्य संस्थाओं से पृथक किया जाता है। **मैकाइवर** और **पेज** ने इसी दृष्टि को सामने रखकर परिवार की निम्न परिभाषा की है :-

"परिवार उस समूह का नाम है, जिसका स्त्री-पुरुष का यौन सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो और ये इतनी देर तक साथ रहें जिससे सन्तान उत्पन्न हो जाय और उनका पालन पोषण भी किया जाय।"

वन्यजातियों (Tribe) में भी परिवार पाया जाता है। वन्यजातियों के सामाजिक संगठन में परिवार एक महत्वपूर्ण इकाई है। वन्यजातीय समाजों में परिवारिक संगठन के भिन्न-भिन्न रूप पाए जाते हैं। भारतवर्ष में वन्यजातियों में परिवार के जो स्वरूप मिलते हैं, उनकी संक्षिप्त विवेचना निम्नलिखित हैं -

(1) **मातृसत्तात्मक परिवार** (Matriarchal Family) - यदि हम परिवार और विवाह संस्था की प्रारम्भिक अवस्थाओं पर विचार करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक काल में परिवार मातृसत्तात्मक होते थे। इन परिवारों में माता की सत्ता ही प्रधान होती थी। ये मातृसत्तात्मक परिवार मातृस्थानी (Matrilocoal) और मातृवंशी (Matrilineal) होते थे। इस प्रकार के मातृसत्तात्मक परिवारों का अस्तित्व आज भी भारतीय वन्यजातियों में है। भारत की निम्न वन्यजातियों में मातृसत्तात्मक परिवार पाए जाते हैं :-

(a) **खासी** - भारत में खासी वन्यजाति का निवास-स्थान आसाम में ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिणी तट पर है। ये मातृसत्ता परिवारों के सबसे ज्वलन्त उदाहरण हैं। मातृसत्ता के साथ ही खासियों में परिवार मातृस्थानी और मातृवंशी भी होते हैं। मातृ सत्तात्मक खासी परिवार में विवाह के बाद पति अपनी पत्नी के घर में रहता है। वह अपनी सम्पूर्ण कमाई अपनी सास को सौंप देता है। पति स्थायी तौर पर सास के घर में नहीं रहता है। सिटेंग खासी जाति के अतिरिक्त जब नव विवाहित खासी दम्पत्ति के बच्चे पैदा होते हैं, तो वे पृथक घर का निर्माण कर लेते हैं। वंश परम्परा तो माँ के नाम से चलती ही है, सम्पत्ति उत्तराधिकार भी लड़कों को न मिलकर लड़कियों को मिलता है। खासी वन्यजाति में ऐसा नियम है कि परिवार की अधिकांश सम्पत्ति उत्तराधिकार के रूप में छोटी लड़की को मिलती है।

(b) **गारो** - भारतवर्ष की दूसरी वन्यजाति जिसमें मातृसत्तात्मक परिवार पाए जाते हैं, गारो है। वह वन्यजाति केरल में निवास करती हैं। परिवार में प्रमुख स्थान माँ का होता है और लड़की ही सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती है। गारो वन्यजाति के परिवार भी मातृस्थानी और मातृवंश होते हैं।

(2) **पितृसत्तात्मक परिवार** (Patriarchal Family) - पितृसत्तात्मक परिवार इसके नाम से स्पष्ट होता है, यह वह परिवार है जिसमें परिवार की सत्ता पिता के हाथ में रहती है। साथ ही इस प्रकार के परिवार पितृ-वंशी और पितृस्थानी होते हैं। इन परिवारों से उत्तराधिकार पिता से पुत्र को प्राप्त होता है। वंश पिता के नाम पर ही चलता है। ये वे परिवार हैं, जिनमें स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की प्रधानता होती है। इन परिवारों में विवाह के पश्चात् स्त्रियाँ आकर पति के घर में निवास करती हैं।

भारत की प्राय: सभी वन्यजातियों में पितृसत्तात्मक परिवार पाए जाते हैं। इन परिवारों में विवाह के पश्चात् पुत्र प्राय: अलग घर बनाते हैं और पुत्रियाँ अपने पति के घर चली जाती हैं।

भारतवर्ष में जिन वन्यजातियों में इस प्रकार के परिवार पाए जाते है उनमें गोंड़, कोल, बैगा, जौनसार बावर, नीलगिरि के टीडा, उत्तर प्रदेश की तराइयों में रहने वाले थारू, भील, सन्याल, कोरवा, पनिका, अगरिया आदि प्रमुख हैं। इन वन्यजातियों में पिता की प्रधानता होती है। पिता की भूमिका परिवार के संचालन में महत्वपूर्ण होती है। इसके अतिरिक्त इन परिवारों में स्त्रियों की तुलना में पुरुषों का पद भी ऊंचा होता है।

(3) **एक विवाही परिवार** (Monogamous Family) - एक विवाही जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता हैं, कि यह वह परिवार है जिसमें स्त्री और पुरुष केवल एक ही विवाह करते हैं। भारत की अधिकांश वन्यजातियों में इसी प्रकार का परिवार पाया जाता है। भारतवर्ष में जिन वन्यजातियों में एक विवाह का प्रचलन है, उनमें बम्बई की महादेव कोली, दक्षिण की कादर, बिहार के संथाल, आसाम के खासी और केरल के काडर प्रमुख हैं।

(4) **बहुविवाही परिवार** (Polygamous Family) - बहुविवाही परिवार को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(a) **बहुपत्नी विवाही परिवार** - बहुपत्नी विवाह वह है जिसमें एक पुरुष अनेक स्त्रियों के साथ विवाह करता है। भारत के वन्यजातियों में अधिकांश रूप से बहुपत्नी विवाह पाए जाते हैं। अधिकांशतः बहुपत्नी विवाह उन आदिवासियों में पाया जाता है जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं। अधिकांशतः वही व्यक्ति अनेक पत्नियों से विवाह करते हैं जो या तो मुखिया होते हैं या अपनी जाति के सरदार होते हैं।

(b) **बहुपति विवाही परिवार** - बहुपति विवाह का वह स्वरूप है जिसमें एक स्त्री अनेक पतियों के साथ विवाह करती है। इस प्रकार का विवाह भारत के बिरले वन्यजातियों में ही पाया जाता है। भारतवर्ष के जिन वन्यजातियों में इस प्रकार के विवाह पाए जाते हैं, उनका विवरण निम्नलिखित है -

(i) नीलगिरि के टोडा वन्यजातियों में बहुपति विवाह पाया जाता है। इनमें भ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह पाया जाता है। पत्नी जब किसी व्यक्ति से विवाह करती है, तो उस व्यक्ति के सभी भाई अपने आप ही उसके पति हो जाते हैं। यदि किसी टोडा परिवार में 6 भाई हैं और उनमें से दो का विवाह दो स्त्रियों से होता है तो ये दोनों ही स्त्रियाँ छः भाइयों की स्त्रियाँ कहलाएगी।

(ii) उत्तराखण्ड की कुछ पहाड़ी जातियों में भी बहुपति विवाह की प्रथा का प्रचलन है। इस जाति में एक परिवार के सिर्फ बड़े भाई का विवाह होता है और उसके सभी छोटे भाई उसके पति मान लिए जाते है। इस पत्नी पर बड़े भाई का विशेषाधिकार होता है और वंश परम्परा भी बड़े भाई के नाम पर ही चलता है। इस जाति में यद्यपि छोटा भाई भी दूसरा विवाह करने का अधिकारी होता है किन्तु उसकी पत्नी पर बड़े भाई का भी अधिकार होता है।

(iii) मालाबार क्षेत्र की एक जाति में भी बहुपति विवाह पाया जाता है। इस जाति में परिवार का संगठन शिथिल रहता है। इसका कारण यह है कि विवाह के बाद पत्नी अपनी माँ के घर रहती है और पति अपने पिता के घर रहता है।

(5) **संयुक्त परिवार** (Joint Family) - उस परिवार को संयुक्त परिवार कहा जाता है जिसमें माता-पिता, पुत्र-पुत्री, पौत्र-पौत्री तथा अन्य अनेक सम्बन्धी एक ही छत के नीचे निवास करते हैं। भारतवर्ष की जिन वन्यजातियों में संयुक्त परिवार पाये जाते हैं, उनमें जौनसार बावर के खस, भील, गोंड, सन्थाल, थारू आदि हैं। संयुक्त परिवारों में भोजन, उद्योग, व्यवसाय तथा सम्पत्ति का स्वरूप संयुक्त होता है। बच्चों का पालन-पोषण भी संयुक्त रूप से ही किया जाता है। संयुक्त परिवारों में परिवार का सबसे बुजुर्ग व्यक्ति परिवार का मुखिया होता है।

(6) **व्यक्तिगत परिवार** (Nuclear Family) - उस परिवार को व्यक्तिगत कहा जाता है जिसका निर्माण पति-पत्नी तथा उनके बच्चों से होता है। भारत की अधिकांश वन्यजातियों में इस प्रकार के परिवार

पाये जाते है। इन परिवारों में जब बच्चे बड़े हो जाते हैं, तो उनका विवाह कर दिया जाता है और विवाह के बाद नवदम्पत्ति नए परिवार की आधारशिला रखते हैं। भारत की अधिकांश वन्यजातियों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। भारत में जिन वन्यजातियों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं, उनमें महादेव कोली, सन्थाल, थारु, कादार, भील आदि प्रमुख हैं।

भारत में वन्यजातियों में पाए जाने वाले परिवारों के स्वरूपों की यह एक संक्षिप्त रूपरेखा है। भारत में अनेक प्रकार की वन्यजातियाँ और उनकी उपशाखाएँ पाई जाती हैं। इन सभी वन्यजातियों में पाये जाने वाले परिवारों की विवेचना यहाँ सम्भव नहीं है। ऊपर जो वर्णन किया गया है, उससे भारतीय वन्यजातियों के परिवारों की एक सामान्य झलक मिलती है।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. परिवार की विविध परिभाषाएँ लिखकर उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. जनजातीय परिवार का विस्तृत में वर्णन कीजिए।
3. परिवार में परिवर्तन के कारण लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. परिवार की विविध परिभाषाएँ लिखिए।
2. परिवार की विशेषताएँ लिखिए।
3. परिवार के कार्यों का वर्णन कीजिए।
4. परिवार का समाजशास्त्रीय महत्व स्पष्ट कीजिए।
5. परिवार में परिवर्तन के कारण लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. परिवार की --------- की विशेषताएँ हैं-
   (अ) सार्वभौमिकता (ब) भावनात्मक आधार (स) रचनात्मक आधार (द) उपरोक्त सभी
2. परिवार के कार्य------- हैं-
   (अ) मौलिक कार्य (ब) परंपरागत कार्य (स) नैतिक कार्य (द) उपरोक्त सभी
3. गारो वन्यजाति निवास करती है-
   (अ) उड़ीसा (ब) छत्तीसगढ़ (स) आसाम (द) केरल
4. ब्रह्मपुत्र नदी के निकट ---------- जाति वन्य जाति निवास करती है-
   (अ) खासी (ब) गोंड (स) नागा (द) इनमें से कोई नहीं

उत्तर - 1. (द), 2. (द), 3. (द), 4. (अ)।



6

जनजातीय विवाह
(TRIBAL MARRIAGE)

विवाह प्रत्येक समाज, चाहे वह समाज आदिम हो या आधुनिक, संस्कृति की मौलिक विशेषता है। इसका मौलिक कारण यह है कि विवाह वह साधन है जिसके माध्यम से समाज की मौलिक इकाई 'परिवार' का निर्माण होता है। प्रत्येक देश और काल की परिस्थितियों में भिन्नता होती है। इसका परिणाम यह होता है कि विवाह के स्वरूपों में भिन्नता आ जाती है। यौन सम्बन्ध स्त्री और पुरुष की मौलिक आवश्यकता है। इस आवश्यकता को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए विवाह की संस्था का समाज में जन्म हुआ। यौन सम्बन्धों में स्थिरता और निश्चितता लाने के लिए विवाह नामक संस्था का विकास हुआ। **नोट्स एन्ड क्वेरीज ऑन एन्थ्रापोलाजी** नामक पुस्तक में विवाह की जो परिभाषा दी गई है, वह निम्नलिखित है -

"स्त्री तथा पुरुष का ऐसा सम्बन्ध जिससे इन दोनों सहयोगियों की इस सम्बन्ध द्वारा उत्पन्न संतान वैध मानी जाय, विवाह कहलाता है।" विवाह स्त्री और पुरुषों का वह संगठन है, जिसके माध्यम से दोनों सामाजिक बन्धन में बंध जाते हैं। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार विवाह के स्वरूपों में भिन्नता पाई जाती है। विवाह संस्था के निश्चित उद्देश्य होते हैं। इन उद्देश्यों (Aims) को सुविधा की दृष्टि से निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) विवाह समाज की वह संस्था है जिसके माध्यम से मानव की मूलभूत इच्छा यौन सम्बन्ध को नियमित और नियंत्रित किया जाता है,

(2) सन्तानोत्पत्ति एक सामाजिक कार्य है और इसकी पूर्ति के लिए विवाह आवश्यक होता है,

(3) विवाह से परिवार नामक संस्था का जन्म होता है। इस परिवार के माध्यम से बच्चों का पालन-पोषण किया जाता है,

(4) मानसिक शान्ति और संतोष की दृष्टि से भी विवाह समाज की अनिवार्य संस्था है।

(5) विवाह संस्कृति की भी आधारशिला है, इसके माध्यम से वंश परम्परा चलती है, और

(6) आर्थिक तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी विवाह अनिवार्य है।

जनजातीय विवाह के स्वरूप : भारत की वन्यजातियों में जो इस प्रकार के विवाह पाए जाते है, वे इस प्रकार हैं -

(1) एक विवाह - भारतीय वन्यजातियों में एक विवाह का प्रचलन बहुत कम है। फिर भी ऐसा नहीं है कि भारतीय वन्यजातियों में एक विवाह का प्रचलन नहीं है। भारत में जिन वन्यजातियों में एक विवाह का प्रचलन है उनमें केरल के कादर, आसाम के खासी, बिहार के संथाल आदि प्रमुख हैं।

(2) बहुविवाह - बहुविवाह प्रमुख प्रकारों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(a) बहुपत्नी विवाह - भारत की अधिकांश वन्यजातियों में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन है। फिर भी वन्यजातियाँ व्यावहारिक रूप से अनेक पत्नियों के साथ विवाह करने में असमर्थ होते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है। वन्यजातियों में जो सरदार या मुखिया होते हैं, उनमें विशेष रूप से इस प्रकार का विवाह पाया जाता है। भारत में पहाड़ी कोरबा, गोड़, वैगा, कोल, अगरिया, पनिका, टोडा, नागा, निषाद आदि वन्यजातियों में बहुपत्नी विवाह पाया जाता है।

(b) **बहुपति विवाह** - बहुपति विवाह को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) **भ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह** - भ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह वह है जिसमें एक स्त्री के अनेक पति परस्पर भ्राता होते हैं।

(ii) **अभ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह** - अभ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह वह है जिसमें एक ही स्त्री के अनेक पति परस्पर भाई नहीं होते हैं।

भारतवर्ष में जिन वन्यजातियों में बहुपति विवाह पाया जाता है, वे इस प्रकार है -

(a) तिब्बत, उत्तरी भारत, आसाम और काश्मीर में इस प्रकार का विवाह पाया जाता है।

(b) नीलगिरि की पहाड़ियों में निवास करने वाले टोडा जाति के परिवारों में भी बहुपति विवाह का प्रचलन है।

(c) कोचीन, मालाबार और ट्रावनकोर की कुछ जाति के परिवारों में भी यह प्रथा पाई जाती है।

(c) **द्विविवाह** - द्विविवाह में एक पति दो पत्नियों से वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना करता है। भारतवर्ष में अनेक वन्यजातियों के पति दो पत्नियाँ रखते हैं किन्तु जहाँ तक प्रथा के रूप में इस विवाह के अस्तित्व का प्रश्न है, भारतवर्ष में ऐसा विवाह नहीं पाया जाता है।

भारत की वन्यजातियों में विवाह-साथी के चुनाव की विधियाँ

(Methods of Mate Selection in Indian Tribes)

प्रत्येक समाजों में विवाह के साथी का चुनाव करने की अलग-अलग विधियाँ होती हैं। भारत के विभिन्न वन्यजातियों में जीवन साथी के चुनाव की अलग पद्धतियाँ है। संक्षेप में भारतीय वन्यजातियों की विधियों को आगे तालिका में दिखाया जा सकता है -

विवाह-साथी के चुनाव की विधियाँ

क्र.सं.	विवाह का नाम	विवाह की विधियाँ	जनजातियों के नाम जिनमें इस प्रकार का विवाह प्रचलित है
(1)	क्रय-विक्रय	(1) इसमें जो लड़का विवाह करने को इच्छुक रहता है, उसे लड़की के पिता को वधू-मूल्य (Bride Price) देना पड़ता है, (2) इसे लड़की का मूल्य न समझा जाकर उसका सम्मान समझा जाता है,	भारत की कुछ वन्यजातियों में इस प्रकार का विवाह प्रचलित है।
(2)	सेवा विवाह	(1) सेवा विवाह उन व्यक्तियों के लिए है जो कन्या मूल्य देने में असमर्थ रहते हैं, (2) इस विवाह के अनुसार होने वाले वर को एक निश्चित समय तक अपने ससुर के घर में रहकर सेवा करना होता है। यह सेवा दो प्रकार की होती है - (a) कुछ वन्यजातियों में विवाह से पहले, और (b) कुछ वन्यजातियों में विवाह के बाद।	गोंड, वैगा, बिरहोर, गूजर, खस, रंगखोल, कूकी आदि वन्यजातियों में इस प्रकार का विवाह पाया जाता है।
(3)	परिवीक्षा विवाह	(1) विवाह से पूर्व होने वाले पति-पत्नी को साथ-साथ रहने का अवसर दिया जाता है,	मध्यप्रदेश में 'घोटुल' की जो परम्परा पाई जाती है, वह इसी

		ताकि वे एक दूसरे को समझ सकें, (2) परिवीक्षा के दौरान यौन सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, (3) यदि स्त्री में गर्भधारण क्षमता होती है, तो प्राय: विवाह हो जाता है, (4) यदि विवाह नहीं होता है, तो लड़के को, लड़की को कुछ हर्जाना देना पड़ता है।	प्रकार के विवाह का आधार है।
(4)	अपहरण विवाह	(1) निर्धनता, लड़कियों की कमी तथा अन्य कारणों से अनेक वन्यजातियों के विवाह नहीं हो पाते हैं, (2) ऐसी स्थिति में वर अपनी मनचाही कन्या को उसके माता पिता की इच्छा के विरुद्ध जबरन विवाह कर लेता है, (3) हरण के अन्तर्गत, साधारण मारपीट रस्साकशी, प्रतिद्वन्दिता आदि को सम्मिलित किया जाता है।	नागा, हो, भील, गोंड, संथाल, मुराडा, भूमिज चिन्दा, बोरे आदि वन्यजातियों में इस प्रकार के विवाहों का प्रचलन है।
(5)	परीक्षा विवाह	(1) इस विवाह का मुख्य उद्देश्य नायक के साहस और शक्ति की परीक्षा करना होता है, (2) परीक्षा की अनेक विधियाँ होती हैं जैसे होली के अवसर पर खम्भे के ऊपरी छोर पर नारियल और गुड़ बाँध देना तथा चारों ओर से विवाहित अविवाहित स्त्रियों द्वारा उसे घेर लेना। पास में ही पुरुष नृत्य करते रहते हैं। इस नृत्य समूह से जो पुरुष खम्भे में चढ़कर नारियल और गुड़ खा लेता है, वह वैवाहिक परीक्षा में सफल माना जाता है। जब पुरुष खम्भे पर चढ़ता है तो स्त्रियाँ डन्डे, झाडू तथा हाथ से उसे मारती हैं।	गुजरात के भील वन्यजातियों में इस प्रकार के विवाह का प्रचलन है। इसके साथ ही अनेक वन्यजातियों में इस प्रकार के विवाह पाए जाते हैं।
(6)	हठ विवाह	(1) इस प्रकार के विवाह में लड़की को विवाह के लिए हठ करना पड़ता है, (2) लड़की जिस व्यक्ति से भी विवाह करना चाहती है, चुपचाप उसके घर में घुस जाती है और इसके लिए हठ करती है। लड़की को घर से निकालने के अनेक प्रयास किये जाते हैं। इन प्रयासों के बावजूद भी यदि लड़की के हठ में विजय होती है, तो उसका विवाह उस लड़के से हो जाता है।	हो, बिरहोर, कमार, ओरांव और मुण्डा वन्यजातियों में इस प्रकार का विवाह पाया जाता है।
(8)	सहमति विवाह	(1) अनेक परिस्थितियों में युवक और युवती समाज द्वारा स्वीकृत तरीकों से विवाह नहीं कर पाते हैं, (2) परिणामस्वरूप सामाजिक बन्धनों की अवहेलना कर देते हैं, (3) युवक और युवती में प्रेम हो जाने से भी इस प्रकार के विवाह हो जाते हैं, (4) कभी-कभी प्रेमी और प्रेमिका सामाजिक भय के कारण एक स्थान से भागकर विवाह कर लेते हैं।	राजस्थान के भील और बिहार के हो जाति के अतिरिक्त भी भारत की प्रायं: सभी वन्यजातियों में इस प्रकार का विवाह पाया जाता है।

विवाह निषेध
(Marriage Restrictions)

प्रत्येक समाजों में विवाह से सम्बन्धित निषेध पाए जाते हैं। भारत वन्यजातियों में भी इसी प्रकार के वैवाहिक निषेध पाए जाते हैं। सुविधा की दृष्टि से इन निषेधों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) **बर्हिविवाह** (Exogamy) - बर्हिविवाह विवाह का वह निषेध है जिसमें विवाह वर्ग या समूह के बाहर किया जाता है।

प्रत्येक जनजाति में कुछ ऐसे निर्देश होते हैं जो यह बताते हैं कि व्यक्ति को विवाह कहाँ नहीं करना चाहिये। इस प्रकार प्रतिबन्धित विवाहों को बहिर्विवाह कहा जाता है। इस संबंध में **हाबेल** ने कहा है, "बहिर्विवाह एक सामाजिक नियम है जो किसी व्यक्ति को उस समूह में विवाह करने से वंचित करता है जिसका वह स्वयं सदस्य है।" बहिर्विवाह के अनुसार एक व्यक्ति को अपने गोत्र या समूह के बाहर विवाह करना चाहिये। इस प्रथा के अन्तर्गत निकट रक्त संबंधों में विवाह करना वर्जित है।

बहिर्विवाह के कारण-

(1) अपने समूह की संस्कृति को दूसरे समूहों तक पहुँचाने एवं उसके विकास के लिए जनजातियों में बहिर्विवाह की प्रथा का प्रचलन हुआ।

(2) 'रिजले' के अनुसार मनुष्य सदा से नवीनता को चाहता है और वह बाह्य सम्पर्क में आने का इच्छुक रहता है। इसलिये भी व्यक्ति बहिर्विवाह की ओर आकर्षित रहता है।

बर्हिविवाह के जो प्रमुख स्वरूप हैं उन्हें निम्न तालिका में दिखाया गया है -

बर्हिविवाह के स्वरूप
(Forms of Exogamy)

बर्हिविवाह के स्वरूप	भारतीय जनजातियाँ
1. वर्ग बर्हिविवाह	आसाम के नागा, दक्षिण भारत के इरुला।
2. ग्राम बर्हिविवाह	छोटा नागपुर के मुण्डा, उड़ीसा के जुआंग और कोड़।
3. गोत्र बर्हिविवाह	खासी वन्यजाति के अतिरिक्त प्राय: सभी वन्यजातियों में।
4. टोटम बर्हिविवाह	प्राय: सभी वन्यजातियों में।

(2) **अर्न्तविवाह** (Endogamy) - यह विवाह का वह स्वरूप है जिसके द्वारा अपने समूह के अन्दर ही विवाह करने की इजाजत रहती है। भारत की प्राय: सभी वन्यजातियाँ अपनी ही जाति के अन्दर विवाह करती हैं। कोई भी वन्यजाति अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं करती है।

जब एक जनजाति के पुरुष या स्त्री अपनी ही जनजाति में विवाह करते हैं तो उस विवाह को अन्तर्विवाह कहते हैं। अन्तर्विवाह के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुये श्री मदान और मजूमदार ने कहा है, कि "अपने समूह या गोत्र से विवाह करना अन्तर्विवाह कहलाता है।"

अन्तर्विवाह के कारण

(1) एक जनजाति के व्यक्ति एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं इसलिये उनका अन्य समाजों से कोई सम्पर्क नहीं होता। इस अलगाव के कारण भी अन्तर्विवाह प्रथा को प्रोत्साहन मिलता है।

(2) प्रत्येक जनजाति अपनी परंपरा का पालन करना चाहती है। इसलिये वह अपने से भिन्न जनजाति में विवाह नहीं करना चाहती।

(3) जनजातियों में एक यह विश्वास बना हुआ है कि समूह के बाहर विवाह करने से उसके अपने समूह की शक्ति निर्बल हो जाती है। इसलिये भी जनजाति के व्यक्ति अन्तर्विवाही होते हैं।

अनुलोम विवाह

यह विवाह पुरुष को अपनी जाति की सामाजिक स्थिति के बराबर या उससे निम्न स्थिति की जाति की लड़की से विवाह करने की इजाजत देता है। जैसे एक उच्च जाति के पुरुष अपने से निम्न जातियों की लड़की से शादी कर सकता है। इस प्रकार के विवाह अनुलोम विवाह कहलाते हैं।

प्रतिलोम विवाह

यह अनुलोम विवाह से बिल्कुल उल्टा है इसमें उच्च वर्ग की लड़की निम्न वर्ग के लड़के से शादी करती है तो वह प्रतिलोम विवाह कहलाता है।

विवाह विच्छेद
(Divorce)

प्रत्येक समाज ऐसा प्रयास करता है कि वैवाहिक बन्धन अधिक शक्तिशाली बने। किन्तु अनेक ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं, जो वैवाहिक बन्धनों को शिथिल बना देती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि विवाह तलाक के रूप में परिवर्तित हो जाता है। प्रत्येक समाजों में तलाक की इस प्रथा का प्रचलन है। भारत की प्राय: सभी वन्यजातियों में तलाक की प्रथा है। किन्तु इतना अवश्य है कि वन्यजातियों में तलाक देने की अलग-अलग प्रक्रियाएँ हैं।

भारतीय वन्यजातियों में पति निम्न दशाओं के आधार पर तलाक दे सकता है -

(i) यदि पत्नी सदैव ही अपने पिता के घर रहती है,

(ii) यदि पत्नी व्यभिचारिणी हो,

पत्नी अपने पति को निम्न अवस्थाओं में तलाक दे सकती है -

(i) यदि पति नपुंसक हो,

(ii) यदि पति पत्नी के साथ क्रूरता का व्यवहार करता हो,

(iii) यदि पति निकम्मा हो और पत्नी तथा बच्चों का उचित पालन-पोषण न कर सकता हो, आदि।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जनजातीय विवाह के स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2. विवाह विच्छेद एवं विवाह के विविध प्रकारों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. विवाह संस्था के उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
2. अनुलोम विवाह पर टिप्पणी लिखिए।

3. अन्तर्विवाह का विस्तृत में वर्णन कीजिए।

4. बर्हिविवाह पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. --------- यह संस्कृति की मौलिक विशेषता है-

(अ) विवाह (ब) मृत्यु (स) व्यापार (द) व्यवसाय

2. जनजातीय में विवाह की पद्धतियाँ ----------- हैं-

(अ) क्रय-विक्रय (ब) सेवा विवाह (स) परिवीक्षा विवाह (द) उपरोक्त सभी

3. जब एक जनजाति के व्यक्ति अपनी ही जनजाति में विवाह करते हैं तो उस विवाह को ----- कहते हैं-

(अ) अनुलोम विवाह (ब) प्रतिलोम विवाह (स) अन्तर्विवाह (द) इनमें से कोई नहीं

उत्तर - 1. (अ), 2. (द), 3. (स)।



7

जनजातीय नातेदारी व्यवस्था
(TRIBAL KINSHIP SYSTEM)

समाज सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था है। संबंध अनेक प्रकार के होते है। संबंधों की जितनी विविधता है, उतनी ही जटिलता है। समाज में अनेक व्यक्ति हैं। ये अनेक व्यक्ति संबंधों की विविधता और जटिलता के कारण किस प्रकार से संबोधन करें? जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के संपर्क में आता है, तो वह उस व्यक्ति अथवा उन व्यक्तियों का संबोधन किस प्रकार करे? नातेदारी संबंधों की एक छोटी व्यवस्था है। उस छोटी व्यवस्था में भी जब एक नातेदार दूसरे नातेदार से मिले, तो वह उसे किस प्रकार से संबोधित करे? नातेदारी के बीच संबोधन की इस जटिल व्यवस्था को सरल और स्पष्ट बनाने के लिए कुछ शब्दों का निर्माण किया गया है। शब्दों के इसी समूह को नातेदारी शब्दावली के नाम से जाना जाता है। नातेदारी एक सामाजिक व्यवस्था तो है ही, यह सार्वभौमिक भी है। संसार में ऐसा कोई समाज नही होगा, जहॉं नातेदारी की व्यवस्था किसी न किसी रूप में विद्यमान न हो। मानव समाज का उद्विकास हुआ है। यह उद्विकास अनेक स्तरों से गुजरा है। प्रारम्भ में मानव पशुवत जिन्दगी बिताता था। एक समूह के सभी पुरूष उस समूह की सभी स्त्रियों से यौन संबंध स्थापित करते थे। इस स्थिति को यौन साम्यवाद या कामाचार के नाम से जाना जाता था। इस अवस्था में बच्चा मां की पहचान तो कर लेता था, किन्तु पिता की पहचान करना कठिन था। इस स्थिति के कारण समाज में मातृसत्ता परिवार अस्तित्व में आए। क्रमशः मानव समाज उद्विकास की प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ आगे बढ़ा। समाज बदला । परिवार और विवाह के स्वरूपों में भी परिवर्तन हुए। इन अनेक स्तरों से गुजरने के कारण व्यक्ति में चेतना का विकास हुआ। आखेट अवस्था का समाज आगे बढ़कर पशुपालन और खेती की अवस्था में आया। अस्थायी जीवन की प्रवृत्ति स्थिरता की ओर अग्रसर हुई। संस्थाओं का ढांचागत विकास हुआ, जिसमें व्यक्तियों के पदों और भूमिकाओं का निर्धारण हुआ। व्यक्तियों के पदों और भूमिकाओं के निर्धारण के कारण ही व्यक्ति का संबोधन प्रारम्भ हुआ। यह संबोधन अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग हुआ। कालान्तर में जब यही संबोधन परिवार और विवाह के आधार पर किया जाने लगा, जो कालान्तर में नातेदारी शब्दावली के नाम से जानी गई।

प्रत्येक समाज में रिश्तों की एक परम्परा है। रिश्तों के द्वारा समाज में व्यक्ति को एक नाम दिया जाता है। जब ये नाम रक्त संबंधों पर आधारित होते हैं तो इन्हें नातेदारी कहा जाता है। नातेदारी के लिए प्रयुक्त शब्द अनेक हैं। इन्हीं अनेक शब्दों के समूह को नातेदारी शब्दावली के नाम से जाना जाता है।

नातेदारी शब्दावली की अवधारणा
(Concept of Kinship Terminology)

नातेदारी शब्दावली क्या है? इस संबंध में कुछ विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, जो इस प्रकार हैं :-

1. **रिवर्स** (Rivers) का विचार है कि नातेदारी शब्दावली विभिन्न संज्ञा सूचक हैं, जो सामाजिक प्रकार्यों पर आधारित होती हैं।
2. **मैलिनोवस्की** का विचार है कि नातेदारी में बीजगणित की उपेक्षा की है, क्योंकि यह मात्र संज्ञा शब्दों का अध्ययन है। उन्होंने सुझाव दिया है कि नातेदारी शब्दावली के अन्तर्गत व्यवहारों और नियमों का अध्ययन किया जाना चाहिए।

3. **लेबी स्ट्रास** का मत है कि नातेदारी शब्दावली को 'विवाह योग्य' और 'विवाह के लिए अयोग्य' में वर्गीकृत करने की एक प्रणाली है।

4. **ब्राउन** के अनुसार नातेदारी शब्दावली संज्ञा शब्द ने अहं (Ego) के अधिकारों और कर्तव्यों को समानान्तर करने की एक प्रणाली कहा है।

5. **मैक्लैनन** का विचार है कि नातेदारी शब्दावली संज्ञा व्यवस्था के संबोधन की एक तालिका मात्र है।

6. **क्रोबर** का मत है कि नातेदारी शब्दावली वर्गात्मक संज्ञाएँ हैं, जिनके द्वारा विशेष स्वजनों के बीच संबंधों की स्थापना की जाती है।

7. **एण्डूलेंग** का विचार है कि वर्णात्मक संबंध संज्ञाएं प्रतिष्ठा, सम्मान और कर्तव्य की द्योतक होती है।

नातेदारी वंशावली की विशेषताएँ
(Characteristics of Kinship Terminology)

नातेदारी वंशावली की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. वंशावली वंश से संबंधित शब्दों का एक समूह है।
2. वंश से संबंधित इन शब्दों का आधार नातेदारी होती है।
3. नातेदारी का निर्धारण विवाह और परिवार के आधार पर होता है।
4. विवाह और परिवार से संबंधित सभी सदस्य वंशावली के माध्यम से आपस में जुड़े रहते हैं।
5. वंशावली का निर्धारण निम्न दो आधारों पर होता है -
   a. पितृवंश के आधार पर, और
   b. मातृवंश के आधार पर।
6. नातेदारी वंशावली के दो प्रमुख आधार और हैं जो वंश के सदस्यों को निकटता और दूरी के आधार पर निर्धारित होते हैं।
   a. वंश समूह के वे सदस्य, जो आपस में निकटता के आधार पर परिभाषित होते हैं, तथा
   b. वंश समूह के वे सदस्य जो एक दूसरे से दूरी के आधार पर परिभाषित होते हैं।
7. वंशावली के माध्यम से वंश के सदस्यों को एक नाम प्राप्त होता है, जिस नाम के आधार पर उस सदस्य को संबोधित किया जाता है।
8. इस प्रकार वंशावली नातेदारी, विवाह और परिवार के मिलन का एक केन्द्र बिंदु है।

नातेदारी के प्रकार
(Types of Kinship)

फर्थ ने लिखा है कि "यह एक छड़ है, जिसके सहारे प्रत्येक व्यक्ति जीवन भर रहता है।" प्रत्येक समाज की दो मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं- विवाह और रक्त सम्बन्ध। इन्हीं आधारों पर नातेदारी को भी निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जाता है-

(i) **रक्त सम्बन्धी नातेदारी** (Consanguineous Kinship)- यह नातेदारी व्यवस्था का वह प्रकार है, जो रक्त-सम्बन्धों पर आधारित होता है। इसमें प्राणीशास्त्रीय रक्त-सम्बन्धी और गोद लिये हुए दोनों ही प्रकार के सम्मिलित किये जाते हैं। अनेक जनजातियों में जहाँ पिता का कोई निश्चय नहीं होता है, ऐसी स्थिति में भी बालक और पिता के बीच नातेदारी इस आधार पर मानी जाती है कि वह व्यक्ति सामाजिक संस्कारों द्वारा बालक का पिता बन जाता है।

(ii) **विवाह सम्बन्धी नातेदारी** (Affinal Kinship)- पति और पत्नी में विवाह के कारण दोनों पक्षों के अनेक व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों में आबद्ध हो जाते हैं। ये सभी व्यक्ति एक स्त्री और एक पुरुष के विवाह बन्धनों के कारण नातेदार बन जाते हैं।

(iii) **काल्पनिक नातेदारी** - काल्पनिक नातेदारी कल्पना पर आधारित होती है। जब कोई व्यक्ति किसी को गोद लेता है, तो वह उसका असली बेटा न होकर, रक्त संबंधी न होकर गोद लिया होता है। यही कारण है कि इस प्रकार नातेदारी वास्तविक न होकर काल्पनिक होती है।

नातेदारी की श्रेणियाँ
(Categories of Kinship)

श्रेणियों का तात्पर्य सम्बन्ध के उन अंशों से है, जिनके द्वारा नातेदारी व्यवस्था में सभी व्यक्ति आबद्ध होते हैं। दूसरे शब्दों में इसे नातेदारी का विस्तार कहकर भी सम्बोधित किया जा सकता है। संक्षेप में नातेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन प्रकार की श्रेणियाँ पायी जाती हैं-

(i) **प्राथमिक नातेदारी** (Primary Kinship)- इस श्रेणी के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं, जो प्रत्यक्ष सम्बन्धों के आधार पर आबद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए माता-पिता और बच्चे, पति-पत्नी आदि जो परस्पर प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।

(ii) **द्वैतीयक नातेदारी** (Secondary kinship)- इसके अन्तर्गत वे नातेदार आते हैं, जो व्यक्ति के प्राथमिक श्रेणी के सम्बन्धों द्वारा सम्बन्धित होते हैं। इनसे व्यक्ति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु वे प्रथम श्रेणी के सम्बन्धों से सम्बन्धित होते हैं। इसके अन्तर्गत विमाता और साले-सालियाँ आदि आते हैं।

(iii) **त्रैतीयक नातेदारी** (Tertiary Kinship)- इसके अन्तर्गत द्वैतीयक श्रेणी के सम्बन्धियों से प्राथमिक रिश्तेदार आते हैं। इस व्यवस्था के कारण विशिष्ट प्रकार के व्यवहार प्रतिमानों का निर्धारण होता है।

नातेदारी के नियामक व्यवहार या रीतियाँ
(Kinship usages)

समाज सामाजिक संबंधों का जाल है। ये संबंध अत्यंत ही विस्तृत है। समाज में जब किसी भी व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संबंध बनता है तो प्रश्न यह पैदा होता है कि वह व्यक्ति जिसका दूसरे व्यक्ति से संबंध बनता है, किस प्रकार का व्यवहार करे या किस प्रकार का व्यवहार न करे। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संबंधों के इसी व्यवहार को नातेदारी के नियामक व्यवहार अथवा नातेदारी की रीतियों के नाम से जाना जाता है। समाज में व्यक्तियों के व्यवहार अनन्त और असीमित होते हैं। इन्हीं अनंत और असीमित व्यवहारों के आधार पर व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। व्यवहारों के अनेक प्रकार होते हैं। उदाहरण के लिए दूसरो के प्रति श्रृद्धा का व्यवहार, मधुरता का व्यवहार, हास-परिहास का व्यवहार, प्रतिबंधों का व्यवहार आदि। इस प्रकार समाज में व्यक्तियों का दूसरे व्यक्तियों के साथ व्यवहार को ही नातेदारी की रीतियों या नियामकों के नाम से जाना जाता है। नातेदारी के जो प्रमुख नियामक व्यवहार या रीतियाँ हैं, उन्हें निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत परिभाषित तथा उनकी व्याख्या का प्रयास किया गया है, जो इस प्रकार हैः-

निकटाभिगमन
(Incest)

इसे परिहार (Avoidance) भी कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि नातेदार आपस में यौन संबंध स्थापित न करें। **रेडक्लिफ ब्राउन** ने इसको परिभाषित करते हुए लिखा है कि - 'सही शब्दों में कहें, तो निकटाभिगमन यौन संबंधी पाप या अपराध है, जो परिवार के निकट संबंधियों, जैसे पिता-पुत्री, मां-पुत्र, भाई-बहन के बीच यौन संबंधों के कारण पनपता है।' इस प्रकार के संबंधों को निषिद्ध करना निकटाभिगमन निषेध कहलाता है। संसार के प्रायः सभी समाजों में निकट संबंधियों के बीच यौन संबंधों को स्थापित करने का निषेध है। इस संबंध में कुछ प्रमुख उदाहरण निम्न हैं -

1. **पुत्र वधू तथा सास-ससुर के मध्य** - अनेक जनजातियों और यहाँ तक कि कुछ मे अन्य समाजों में भी पुत्रवधू, सास-ससुर तथा जेठ से पर्दा करती है तथा उनसे सीधा वार्तालाप नहीं करती। और न ही उनके कमरों में सोती है।

2. **दामाद और सास के मध्य** - कुछ जनजातियों में दामाद तथा सास के मध्य बातचीत नहीं होती है। दामाद तथा सास एक दूसरे को नहीं छूते हैं और न ही देखते हैं तथा एक दूसरे का नाम भी नहीं लेते हैं।

3. **भाई-बहन के मध्य** - अनेक जनजातियों में भाई तथा बहन के बीच कुछ व्यवहारों पर प्रतिबन्ध है। उदाहरण के लिए वे एक दूसरे से बातचीत नहीं कर सकते हैं, भाई बहन दोनों एक ही कमरे में नहीं रह सकते हैं, दोनों एक साथ भोजन नहीं कर सकते तथा अपने शरीर को ढँककर रखते हैं।

4. **पुत्रवधू एवं जेठ के मध्य** - अनेक जनजातियों तथा हिन्दू समाज में भी कई जगह छोटे भाई की पत्नी जेठ के सामने घूँघट में रहती है तथा जेठ के लिए छोटे भाई की पत्नी का मुँह देखना वर्जित है। वे दोनों एक दूसरे से आपस में बातचीत भी नहीं कर सकते हैं।

निकटाभिगमन के कारण
(Causes of incest)

निकटाभिगमन के क्या कारण हैं? इसमें मानवशास्त्रियों के विचारों में भिन्नता है। फिर भी कुछ सामान्य कारण हैं, जो इस प्रकार हैं -

(a) प्रसिद्ध मानवशास्त्री **टायलर** ने इसके मूल कारणों में मातृसत्तात्मक परिवार की प्रथा को माना है। मातृसत्तात्मक परिवार के कारण इस प्रथा को बल मिलता है।

(b) **लोवी** के अनुसार पुत्रवधू बाहरी तथा भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की होने के कारण परिवार के प्रभावों से बचाने के लिए ऐसा किया जाता है।

(c) **टर्नी हाई** के अनुसार इससे पारिवारिक संघर्ष से बचा जा सकता है।

(d) **ब्राउन** का विचार है कि परिवार के सदस्यों में अधिक सम्पर्क होने से जहाँ एक ओर प्रेम की प्रगाढ़ता बढ़ती है, वहीं दूसरी ओर सदस्यों में आपसी द्वेष की भावना का विकास भी होता है। ये दोनों ही बातें पारिवारिक भावना के लिए हानिकारक होती हैं। इसलिए परिवार के सदस्यों के बीच परिहार आवश्यक है।

(e) **मैलिनोवस्की** का विचार है कि निकटाभिगमन का कारण सदस्यों के बीच एक दूसरे के लिए सम्मान की भावना है। परिहार के कारण ही सदस्यों में एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना का विकास होता है। डॉ. मजूमदार ने भी मैलिनोवस्की के विचारों से अपनी सहमति जताई है।

(f) **चेपल तथा कून** का मत भी इसी प्रकार है। उनके अनुसार सामाजिक संरचना के विघटन को रोकने एवं कुछ व्यक्तियों के बीच अंतःक्रिया को प्रतिबंधित करने के लिए ही परिहार की प्रथा का जन्म और विकास हुआ।

इस प्रकार निकटाभिगमन सार्वभौमिक नियामक रीतियाँ है, जो प्रायः सभी समाजों में समान रूप से पाई जाती है। चाहे वह समाज शिक्षित हो या अशिक्षित, आदिम हो या आधुनिक। इतना अवश्य है कि देश काल और परिस्थितियों के अनुसार इनमें भिन्नता पाई जाती है। इसका उद्देश्य समाज में व्यवस्था की स्थापना है। जिससे सामाजिक संगठन बना रहे तथा इसको विघटित होने से रोका भी जा सके।

परिहास या हंसी-मजाक के संबंध
(Joking Relations)

परिहार और परिहास एक दूसरे के विरोधी संबंध है। परिहार जहाँ संबंधों को रोकना है वही परिहास संबंधों की स्थापना करना है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह मनोरंजनात्मक संबंध है, जिसके माध्यम

से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ हंसी-मजाक के संबंध स्थापित करता है। इसका उद्देश्य संबंधों में घनिष्ठता का विकास करना हैं इस प्रकार के संबंध प्रायः विवाह संबंधियों के बीच पाए जाते हैं जिसके द्वारा विवाह संबंधी आपस में हंसी-मजाक करते हैं। इसमें गाली-गलौज को भी सम्मिलित किया जाता हैं एक दूसरे के प्रति भद्दे शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए -

1. भारत में ओराँव और बैगा जनजाति में दादी तथा पोते के बीच परिहास संबंध पाया जाता है।
2. जीजा तथा साली के बीच परिहास आधुनिक समाजों में भी पाया जाता है। जनजातियों में भी इसी प्रकार के परिहास पाए जाते हैं।
3. देवर तथा भाभी के बीच परिहास के उदाहरण सामान्य हैं।
4. जीजा और साला के बीच परिहास,
5. ननद-भाभी परिहास,
6. मामा-भांजा परिहास,
7. मामी-भांजा परिहास,
8. दादा-पोती परिहास,
9. चाचा-भतीजा परिहास,
10. फूफा-भतीजा परिहास आदि।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि आदिम समाजों में सामाजिक प्रथाओं और मर्यादाओं के अनुसार परिहास संबंध जाए जाते हैं। इन संबंधों का प्रचलन विशेष अवसरों पर होता है। उदाहरण के लिए होली, विवाह तथा अन्य त्यौहार आदि। हंसी-मजाक के इन संबंधों के कारण अनेक अवसरों पर यौन संबंध भी स्थापित हो जाता है। इन परिहासों के माध्यम से एक दूसरे की खिल्ली उड़ाना, नीचा दिखाना, पानी छिड़कना, कपड़े फाड़ देना, रंग डालना, काली वस्तु फेंकना, चेहरे पर किसी प्रकार की आकृति बना देना आदि सम्मिलित हैं।

परिहास संबंधों के कारण
(Causes of Joking Relations)

परिहास संबंध क्यों ? इसके प्रमुख कारण क्या हैं? इस संबंध में कोई निश्चित मापदण्ड नही हैं, जिनके आधार पर इसके कारणों का पता लगाया जा सके और न ही ये सार्वभौमिक है, जो सभी समाजों, कालों और परिस्थितियों में समान रूप से लागू हो। इस संबंध में कुछ विद्वानों ने विभिन्न जातियों और जनजातियों का अध्ययन करने के उपरांत कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। इन विद्वानों के निष्कर्षों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

(1) **ब्राउन** - रेडक्लिफ ब्राउन ने परिहास के कारणों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार परिहास एक ऐसी मित्रता का प्रतीक है, जिसे शत्रुता पूर्ण व्यवहार के रूप में व्यक्त किया जाता है। आपसी गाली-गलौज, एक दूसरे के साथ मारपीट, अपमानजनक शब्द आदि का दिखावटी प्रयोग किया जाता है। मामा-भांजे के परिहास संबंध को विवाह से संबंधित कुलाशो के बीच समावित वैमनस्य को मिटाने के एक साधन के रूप में किया जाता है।

(2) **वेस्टरमार्क** - का विचार है कि जिन व्यक्तियों के बीच परिहास के संबंध होते हैं, उनमें पारस्परिक संबंध, समानता और घनिष्ठता इतनी अधिक होती थी, कि अनेक अवसरों पर वे विवाह के संबंधों में भी बंध जाते थे। उदाहरण के लिए जीजा-साली और देवर-भाभी के ऐसे परिहास संबंध हैं, जो अनेक अवसरों पर विवाह के सूचक बन जाते हैं।

(3) **डॉ. रिवर्स-** का विचार है कि परिहास संबंध ममेरे, फुफेरे विवाह संबंध के कारणों के प्रतीक हैं।

(4) **डॉ. चेपल तथा कून-** का विचार है कि इस प्रथा को कुछ व्यक्तियों के बीच अंतःक्रिया बढ़ाने के लिए उत्प्रेरक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

माध्यमिक संबोधन
(Teknonymy)

अंग्रेजी का टेक्नोनिमी शब्द ग्रीक भाषा से बना है। प्रसिद्ध मानवशास्त्री **टायलर ने सबसे** पहले इस शब्द का प्रयोग किया था। इस शब्द के लिए हिंदी में प्रयुक्त शब्दों में अनुसंतति संबोधन, संताननामी व्यवहार, माध्यमिक संबोधन, अनुतामिता आदि का प्रयोग किया जाता है। भारत में आदिवासियों तथा गैर आदिवासी समाजों में आज भी एक प्रथा पाई जाती है। इस प्रथा के अनुसार विवाहित स्त्री अपने पति का नाम नहीं लेती है। जब उसे पति को संबोधित करना होता है, तो इसके लिए पुत्र या पुत्री के नाम के संबोधन से अपने पति को बुलाती हैं। उदाहरण के लिए रानी के पापा सुनते हो। ऐसा कहते ही उसका पति अपनी पत्नी की बात की ओर ध्यान देता है। टायलर के अतिरिक्त फ्रेजर, लोवी आदि मानवशास्त्रियों ने दुनिया के विभिन्न भागों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि इस प्रकार के सम्बन्ध प्राय- दक्षिणी अफ्रीका, पश्चिमी कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी, मलाया, चीन, उत्तरी साइबेरिया, ब्रिटिश कोलम्बिया, लंका, फिजी द्वीप समूह, मलेशिया, आदि की अनेक जनजातियों में पाए जाते हैं।

मातुलेय
(Avunculate)

इसे मातुल प्रधान व्यवहार के नाम से भी जाना जाता है। यह प्रथा मातृसत्तात्मक समाजों में पाई जाती है। यहाँ भाँजे-भाँजियों के लिए पिता की अपेक्षा माता का अधिक महत्व होता है। इसका कारण यह है कि भाँजे-भाँजियों का लालन-पालन माता के घर पर ही होता है। इसके साथ ही माता के स्थान पर मामा ही उनका अभिभावक और संरक्षक होता है तथा भाँजे ही मामा की संपत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं। भारत की खासी और टोडा जनजातियों में मातुल संबंधी व्यवहार पाया जाता है।

मातुलेय का तात्पर्य यह है कि सभी पुरुष संबंधियों की तुलना में मामा का भांजे एवं भांजियों के लिए परिवार में पहला स्थान होता है। इस प्रकार की सत्ता को मातुल सत्तात्मक सत्ता के नाम से जाना जाता है।

पितृश्वश्रेय
(Amitate)

सत्ता के आधार पर परिवार दो प्रकार के होते है - मातृसत्ता और पितृसत्ता। मातृसत्ता परिवारों में मामा का अधिक महत्व तथा विशेषाधिकार होता है। ठीक इसके विपरीत पितृसत्ता परिवारों में बुआ का अधिक महत्व और विशेषाधिकार होता है। इन परिवारों में पिता की बहन को पितृश्वसा कहा जाता है। डॉ. रिवर्स ने बैक्सद्वीप में इस प्रथा के प्रचलन को पाया है। वहाँ बुआ ही भतीजे के लिए वधु ढूढ़ती है तथा भतीजा अपनी बुआ का सम्मान करता है। बुआ की संपत्ति का उत्तराधिकारी भी वही होता है। दक्षिणी अफ्रीका की अनेक जनजातियों में इस प्रकार की प्रथा का प्रचलन है। भारत में टोडा जनजाति में बच्चों को नामकरण बुआ ही करती है। इस संबंध में **चैपल और कून** का विचार है कि जिन संबंधियों से विवाह के बाद सामाजिक अंतःक्रिया के शिथिल होने की संभावना होती है, उन्हें निरंतर बनाए रखने के लिए इस प्रथा का प्रचलन हुआ है। बुआ विवाह के बाद दूसरे परिवार में चली जाती है। अतः इस प्रथा को बनाए रखने के लिए ही पितृश्वश्रेय प्रथा का प्रचलन हुआ।

सह प्रसविता या सहकष्टी
(Couvade)

इसे कूवाद या सहकष्टी के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रथा का संबंध प्रसवकाल से है। इसमें प्रसूता स्त्री के साथ उसके पति को भी कष्ट साध्य जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है। उसे प्रसूता की तरह नियत भोजन दिया जाता है तथा प्रसूता की भाँति ही उन सभी निषेधों का पालन करता है, जिन्हें प्रसूता को करना पड़ता है।

प्रथा की मनोवैज्ञानिक व्याख्या
(Psychological Interpretation of Custom)

अनेक विद्वान इस प्रथा की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते है। उनका कहना है कि इस प्रथा के कारण पति-पत्नी में परस्पर प्रेम का विकास होता है। पत्नी को यह जानकर मानसिक प्रसन्नता होती है कि उसका पति उसके कष्टों में सहभागी है।

सहप्रसविता के कारण (Causes of Couvade) - सहप्रसविता क्यों? इसके कारण क्या हैं? अनेक मानवशास्त्रियों ने इसके कारणों के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विचारों को दिया गया है -

1. मैलिनोवस्की का विचार है कि वैवाहिक संबंधों को अधिक दृढ़ बनाने और पैतृक प्रेम को प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के संबंधों का जन्म और विकास हुआ।
2. रेगलन ने इसे विवाह नामक संस्था के उद्विकास में एक सहयोगी कारक के रूप में स्वीकार किया है।
3. डॉ. एस.पी. दुबे के अनुसार इस प्रथा का प्रचलन पितृत्व निर्धारण करने के लिए हुआ होगा।
4. कुछ विद्वानों का विचार है कि सहप्रसविता का कारण मातृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक संकुल की संक्रमण की अवस्था का एक अवशेष है। दोनों अवस्थाओं में जब संक्रमण की स्थिति का जन्म हुआ होगा, तो सहप्रसविता की रीति का जन्म और विकास हुआ होगा।

नातेदारी से संबंधित अवधारणाएँ

मानव समाज के अध्ययन में नातेदारी एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है, जो व्यक्ति और समाज को अनेक दृष्टिकोणों से जोड़ती है। जहाँ यह विवाह बंधनों से व्यक्ति को जोड़ती है वही दूसरे व्यक्तियों से संबंधों की एक विशिष्ट श्रेणी का निर्माण करती है। केवल इतना ही नहीं, यह परिवार की आधारशिला भी रखती है। ये अवधारणाएँ समूहों की बाहरी सीमा के साथ ही उनकी आंतरिक सीमाओं का भी निर्धारण करती हैं। नातेदारी व्यक्ति के लिए अनेक प्रणालियों का भी निर्धारण करती हैं। इन प्रणालियों के कारण जहाँ सामाजिक व्यवस्था का निर्धारण होता है, वही अनेक समस्याओं का समाधान हो जाता है। इस दृष्टिकोण से अनेक अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है। इन अवधारणाओं की व्याख्या अनिवार्य है। इस दृष्टि से नातेदारी की जो प्रमुख अवधारणाएँ हैं, वे इस प्रकार हैं -

1. **पीढ़ी** (Generation) - नातेदारी अनेक पीढ़ियों का समूह है। ये पीढ़ियाँ आपस में संबंधित रहती है। उदाहरण के लिए पिता-पुत्र की पीढ़ी। इन पीढ़ियों के स्थान पर व्यक्ति के संबंधों का निर्धारण होता है तथा श्रेणियों में स्पष्टता रहती है। चचेरा, ममेरा, बाबा, परबाबा, प्रपौत्र, बुआ आदि पीढ़ियों के नाम है। संक्षेप में पीढ़ियाँ सोपान क्रम है, जो संबंधों की व्याख्या करते हैं।

2. **वंश** (Lineage) - यह वंशानुक्रमण (Heredity) की एक व्यवस्था है। सरल शब्दों में यह रिश्तेदारों का एक समूह है, जिसके सभी सदस्य अपने को एक ही वंशानुक्रमण से मानते हैं। वंश के माध्यम से अपने पूर्वजों को जानने में मदद मिलती है। ये वंश वास्तविक और काल्पनिक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं।

यह गोत्र (Clan) का छोटा रूप है। इसमें कई पीढ़ियों के सदस्य होते हैं। इससे सदस्यों को एक पहचान मिलती है। अनेक बार इनके अपने टोटम होते हैं।

3. **फ्रैटरी** (Phratry) - फ्रैटरी भी वंश समूह का एक विस्तृत स्वरूप है, जिसमें दो या दो से अधिक इकाईयों का सम्मिश्रण होता है। उदाहरण के लिए 'मुण्डा', 'उरांव' और 'हो'। इस प्रकार फ्रैटरी संबंधित गोत्रों और बड़े समूह को कहते हैं। इनमें वंशानुक्रम की कड़ी अवर्गीकृत (Unspecified) होती है।

4. **मोइटी** (Moiety) - मोइटी वह प्रणाली है, जिसमें समाज दो एकान्विक वंशानुक्रम (Unilineal Descent) समूह में बँट जाता है। ये दोनों समूह एक समान होते हैं तथा दोनों को मोइटी कहते है। मोइटी का निर्माण कई गोत्रों (Clans) और वंशों (Lineges) से होता है। मोइटी को इसीलिए द्वैघ व्यवस्था समूहों (Dual Organization Group) के नाम से भी जाना जाता है। उदाहरण के लिए टोडा में तारथारांल और तेइवाली, मोइटी तथा बोडों में ओंथांल और किल्लों मोइटी पाई जाती है।

5. **विवाह संबंध** (Affinity) - व्यक्तियों, परिवारों और समूहों के बीच जो संबंध (Relations) विवाह के परिणामस्वरूप बनते हैं, उन्हें Affinity के नाम से जाना जाता है। उदाहरण के लिए माता और सास में अन्तर है, किन्तु इस अंतर को जब विवाह के दायरे में देखा जाता है, तो समाप्त हो जाता है। इस प्रकार Affinity वह संबंध है, जो व्यक्तियों, परिवारों और समूहों को विवाह के माध्यम से आपस में जोड़ते हैं।

6. **रक्त संबंध** (Consanguinity) - व्यक्ति, परिवार और समूहों को जोड़ने वाले संबंध दो प्रकार के होते है - वैवाहिक और रक्त संबंधी। जो व्यक्ति परिवार और समूह रक्त संबंधों के आधार पर जुड़े होते हैं, वे आपस में विवाह नही करते है। इसकी व्याख्या वैवाहिक संबंधों के संदर्भ में की जाती है। इसका सीधा संबंध वंशानुक्रम (Descent) से होता है।

7. **लिंग** (Sex) - लिंग का प्रयोग रिश्तेदारों को पृथक करने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए मामा शब्द का प्रयोग माता के भाई के लिए और मौसी शब्द का प्रयोग माता की बहन के लिए किया जाता है। लिंग के माध्यम से रिश्तेदारों की जानकारी होती है तथा उसके आधार पर संबंधों की स्थापना की जाती है। लिंग का वैवाहिक संबंधों को स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण स्थान होता है।

8. **संबंध जोड़ने वाले रिश्तेदार का लिंग** (Sex of linking Relative) - इसके अनुसार रिश्तेदार दो प्रकार के होते है -

a. क्रास रिश्तेदार b. समानान्तर रिश्तेदार

क्रास रिश्तेदार के अंतर्गत, ममेरे, चचेरे और फुफेरे आते है, जब कि समानान्तर रिश्तेदार के अंतर्गत वे आते है जो एक दूसरे दो भाइयों या दो बहनों से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए पिता के भाई की संताने। विवाह संबंधों में इसे भी महत्व दिया जाता है। माता-पिता की लाइन के रिश्तेदार समानान्तर है, जब कि सास-ससुर के रिश्तेदार समानान्तर नहीं है।

9. **द्विभाजन** (Bifurcation) - जब माता की ओर के रिश्तेदारों को पिता की ओर के रिश्तेदारों से अलग किया जाता है, तो इसे द्विभाजन कहते हैं।

10. **तुलनात्मक आयु** (Relative Age)- इसका आधार आयु है। इसका प्रयोग एक ही वर्ग के व्यक्तियों को विभाजित करने के लिए किया जाता है। इसका आधार वक्ता की उम्र है। वे वक्ता की उम्र से छोटे है या बड़े। इस प्रकार आयु का भी व्यक्ति के सामाजिक जीवन में महत्व है।

11. **भिन्नशाखीय संबंध** (Collaterality)- रिश्तेदारों के विभाजन की दो रेखाएँ हैं -

a. सीधी रेखा, और b. समानान्तर रेखा।

इन्हीं रेखाओं के आधार पर मामा, मौसी और चाचा-चाची में भेद किया जाता है।

नातेदारी व्यवस्था

नातेदारी व्यवस्था के आधार होते हैं (i) वैवाहिक संबंध (ii) रक्त मूलक संबंध। वैवाहिक संबंधों में निर्मित नातेदारी तब बनती है जब दो स्त्री-पुरुष आपस में पति-पत्नि बन जाते हैं। पुत्रवधु के घर में आते ही वह किसी की देवरानी, किसी की मौसी तथा किसी की जेठानी बन जाती है। ऐसे ही पति दूसरे परिवार में किसी का दामाद, किसी का जीजा और किसी का फूफा बन जाता है। रक्तमूलक नातेदारी के उदाहरण पिता-पुत्र, भाई-बहिन और पिता-पुत्री, मामा-बुआ हैं।

नातेदारी व्यवस्था का महत्व

नातेदारी व्यवस्था का विश्लेषण जनजातीय समाज के अध्ययन में एक प्रमुख विषय माना जाता है। आदिम समाज के सदस्यों के व्यवहार, सामूहिक अवधारणा, नैतिक आचरण तथा आर्थिक संरचना को समझने के लिए नातेदारी व्यवस्था का अध्ययन बहुत आवश्यक है इसलिए ट्रांस, रेडक्लिफ, ब्राउन, मेलिनोवास्की, मुरडोक आदि मानव शास्त्रियों ने जनजातीय नातेदारी के अध्ययन को प्रमुखता दी है। आदिकाल से जिन कारको ने समूह के व्यक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर संगठित रखा है, उनमें नातेदारी सबसे प्रमुख कारक रही है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह परिवार में जन्म लेता है। उसका शैशविक पालन-पोषण, माता-पिता, भाई-बहन और अन्य करीबी रिश्तेदारों के मध्य होता है। वयस्क होने पर उसके सामाजिक संबंधों की परिधि में वृद्धि होती जाती है। जनजाति में तो नातेदारी का बन्धन और अधिक सुदृढ़ होता है क्योंकि उसमें संयुक्त परिवार प्रथा एवं पारिवारिक सघनता के प्रतिमान आज भी व्यापक रूप से विद्यमान हैं। समाजशास्त्री जनजातियों की नातेदारी व्यवस्था के अध्ययन को अधिक महत्वपूर्ण मानने लगे हैं। उत्तराधिकार, सम्पत्ति हस्तान्तरण, पितृ अधिकार संविदा आदि विधि अवधारणाओं को समझने में नातेदारी व्यवस्था का अवलोकन विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। नातेदारी व्यवस्था के महत्व निम्नानुसार हैं-

(1) **विवाह तथा परिवार**- विवाह एक आधार भूत और महत्वपूर्ण संस्था है और परिवार एक सीमित रूप में सार्वभौमिक सत्ता का स्वरूप। विवाह तथा सभी सम्बंधों के बारे में जिज्ञासाओं के हल किसी समाज विशेष की नातेदारी व्यवस्था में ही मिल सकते हैं। किसी भी परिवार में प्रायः दो प्रकार के सदस्य पाये जाते हैं- एक वे जो रक्त आधार पर जुड़े होते हैं और दूसरे वे जो वैवाहिक संबंधों के कारण अस्तित्व रखते हैं। समाजशास्त्र की सैद्धांतिक दृष्टि में इन दोनों ही प्रकार के सदस्यों में आपस में नातेदारी होती है। अतः जनजातीय समाज के अध्ययन में नातेदारी व्यवस्था का विश्लेषण उपयोगी सिद्ध होता है।

(2) **वंश उत्तराधिकार एवं पदाधिकार का निर्णय**- जनजातीय समाजों तथा सभी अन्य समाजों में भी कुनबा/नातेदारी लोगों को प्रभावित करता है। नातेदारी व्यवस्था वंशावली निर्धारित करती है तथा जानकारी देती है कि किसी परिवार की संपत्ति किन-किन सदस्यों में किस प्रकार विभक्त होनी चाहिए? मातृवंशीय, पितृवंशीय परिवारों में उत्तराधिकार के भिन्न-भिन्न सामाजिक नियम होते हैं। आगे आने वाली पीढ़ियों तक के लिये उत्तराधिकार और तत्संबंधी अलिखित या लिखित सामाजिक नियम बने हुये होते हैं।

(3) **उच्छृंखल यौन संबंधों पर नियंत्रण**- मनुष्य कामेच्छा की संतुष्टि हेतु यौन संबंध स्थापित करता है। यदि नातेदारी व्यवस्था न हो तो इन संबंधों को परिसीमित करना बहुत कठिन हो जाये। नातेदारी के निषेध नियमों का महत्वपूर्ण कार्य यौन संबंधों को नियंत्रित और सीमित करना है। ये नियम भाई-बहिन, माता-पुत्र, सास-दामाद आदि में यौन संबंधों पर अंकुश लगाते हैं। ट्रीवियाण्ड द्वीप के निवासियों में नातेदारी निषेध सम्बंधों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था है। न्यूगिनी की बुकाऊ जनजाति में सास दामाद के सामने एकान्त में नहीं जा सकती। नातेदारी निकटवर्ती संबंधियों में यौन आकर्षण को निषेध करती है।

(4) **पारिवारिक शान्ति के लिये आवश्यक**- परिवार में या नातेदारी में कुछ ऐसे घनिष्ठ संबंध होते हैं जो निरन्तर संपर्क की स्थिति बनाये रखते है। सास-ससुर, पुत्र-पुत्रवधु, भाई-बहिन, पति-पत्नी आदि

के रिश्ते नजदीकी और घनिष्ठ होते हैं। रुचि विभिन्नता, जन्मजात प्रवृत्तियों और स्वार्थों की टकराहट से किसी भी क्षण मनमुटाव हो जाने की संभावना रहती है। ऐसे में नातेदारी व्यवस्था के नियम परिवार में शांति बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसमें परिवार के उन सदस्यों को जिनसे संघर्ष के कारण विवाद उत्पन्न हो सकते हैं उन्हें नातेदारी नियमों के अनुसार अलग-अलग रखने का प्रावधान रहता है। ससुर और पुत्रवधु तथा सास और दामाद को यथासंभव अलग रखा जाता है ताकि पारिवारिक संबंध मधुर बने रहें। कहीं-कहीं तो भाई-बहिन के अधिक संपर्क के लिये भी परिवार नियम प्रचलित हैं। कुछ जनजाति में पुत्रवधु अपने ससुर का मुख नहीं देख सकती। तो कुछ जनजातिओं में जवान होने पर भाई-बहिन एक कमरे में नहीं रह सकते।

(5) **उत्तरदायित्व एवं सहयोग को प्रोत्साहन-** नातेदारी व्यवस्था समूह के सदस्यों में सहयोग, उत्तरदायित्व एवं श्रम विभाजन की भावना भी जागृत करती है। मनुष्य अपनी किसी भी जैविक या सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति अकेले नहीं कर सकता। समय-समय पर उसे दूसरे व्यक्तियों का सहयोग लेना पड़ता है और यह सहयोग उसे उन लोगों से अधिक उपलब्ध हो सकता है जो उससे निकट का संबंध रखते हैं। नातेदारी व्यवस्था समूह या परिवार के सदस्यों के कर्तव्यों का निर्धारण कर श्रम-विभाजन के सिद्धांत को लागू करती है। नातेदारी के नियमों में बँधकर प्रत्येक सदस्य को अपने-अपने पद का दायित्व निभाना पड़ता है।

(6) **मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाती है-** जन्म के समय बालक को किसी प्रकार के सामाजिक या पारिवारिक दायित्व का बोध नहीं होता। यह एक साधारण प्राणी के रूप में जीवन प्रारंभ करता है। नातेदारी के अन्य सदस्यों के मध्य रहते हुये धीरे-धीरे उसका सामाजिक अनुबंधों और संबंधों का ज्ञान होने लगता है। नातेदार उसे अपनी वंशपरम्परागत संस्कृति से अवगत कराते हैं। नातेदारी की रीतियों, प्रथाओं, मान्यताओं और विश्वासों के अनुरूप वह स्वयं को ढालने लगता है। कालान्तर में वह समाज का एक जागरुक सदस्य बन जाता है। समाजीकरण की यह समस्त प्रक्रिया नातेदारी व्यवस्था के माध्यम से ही होती है।

(7) **समानता और प्रेम संबंधों को मजबूत करने के लिये-** नातेदारी प्रथा में कई ऐसी प्रथायें हैं जो समूह के सदस्यों में समानता के भाव का संचार करती हैं और एक-दूसरे के प्रेम संबंधों में मधुरता लाने में सहायक होती हैं। उन्हीं में से एक है परिहास प्रथा। जीजा-साली, देवर-भाभी, दादा और पोता-पोती का हास-परिहास व्यापक रूप से समाजों में प्रचलित है।

(8) **आत्म गौरव की भावना-** नातेदारी के बंधन में रहने वाले व्यक्ति को यह आत्म संतुष्टि रहती है कि वह पूर्वजों की एक सुदृढ़ संस्था का सदस्य है, वह अकेला नहीं है, उसके पीछे एक पूरा कुनबा/समाज है जो उसके सुख-दुख में शामिल हैं। यही कारण है कि अपने पूर्वजों के चित्रों को कक्ष में टांग कर या एल्बम में संग्रहीत कर लोगों को गौरव की अनुभूति होती है। एक लम्बे समय से हम एक ऐसे संगठन से स्वयं को जुड़े हुए देखते हैं जिससे हमारा घनिष्ठ संपर्क रहा है। उसके सदस्यों से हम परिचित होते हैं।

इस प्रकार नातेदारी व्यवस्था जनजातीय समाज का आधार स्तम्भ है। इस संस्था के कारण आदिम समाज में सुख-शान्ति, सहयोग, आदर, प्रेम और श्रम-विभाजन की भावनायें बनी रहती हैं।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. नातेदारी का अर्थ लिखकर उसकी श्रेणियाँ लिखिए।
2. जनजातीय समाज में नातेदारी व्यवस्था का महत्व लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. नातेदारी शब्दावली की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

2. नातेदारी वंशावली की विशेषताएँ लिखिए।
3. नातेदारी के प्रकार लिखिए।
4. परिहास के संबंध पर टिप्पणी लिखिए।
5. पितृश्वश्रेय की जानकारी लिखिए।
6. टोडा जनजाति में नातेदारी पर टिप्पणी लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. नातेदारी वंशावली की विशेषताएँ --------
   (अ) वंश से संबंधित समूह (ब) पितृवंश के आधार पर
   (स) विवाह और परिवार के आधार पर (द) उपरोक्त सभी
2. नातेदारी के प्रकार ------- हैं-
   (अ) रक्त संबंधी नातेदारी (ब) विवाह संबंधी नातेदारी
   (स) काल्पनिक नातेदारी (द) उपरोक्त सभी
3. मातृ सत्तात्मक समाजों में पाई जाने वाली प्रथा अर्थात------- है-
   (अ) मातुलेय (ब) पितृश्वश्रेय
   (स) माध्यमिक संबोधन (द) सहकारी
4. टोडा परिवार दक्षिण के -------- पहाड़ियों में निवास करने वाली जनजाति है-
   (अ) हिमालय (ब) नीलगिरी (स) सतपुड़ा (द) प. घाट

उत्तर - 1. (द), 2. (द), 3. (अ), 4. (ब)।



8

जनजातीय महिलाओं की परिवर्तनशील स्थिति

(CHANGING STATUS OF TRIBAL WOMEN)

किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति का ज्ञान उस समाज की परम्परा, रीति-रिवाज, सांस्कृतिक मूल्यों आदि के आधार से ही निश्चित होता है। अतः जनजातीय महिलाओं की स्थिति को उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में ही समझा जा सकता है, भारत में जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति निम्न प्रकार है—

(1) जनजातीय महिलाओं की स्थिति - जनजातीय महिलाओं की स्थिति समाज में सम्मानजनक है तथा वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जीवन व्यतीत करती है। जनजातीय समाज में महिलाओं के प्रति सामाजिक, आर्थिक दृष्टिकोण में क्या परिवर्तन आया है? क्या भील जनजातीय महिलाओं के अधिकार अन्य समाज की महिलाओं से अधिक या कम है? ये कुछ प्रश्न शोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाते हैं और उनके सामाजिक, आर्थिक एवं दैनिक गतिविधियों को समझने के लिए बाध्य करते हैं।

(2) जनजातियों में कन्या जन्म शुभ - जहाँ अन्य समाज में कन्या के जन्म को अच्छा नहीं माना जाता है, वहीं भील समाज में कन्या जन्म को शुभ माना जाता है।

(3) जातकर्म संस्कार - जनजातीय समाज में जातकर्म संस्कार महिलाओं की प्रसव पीड़ा से संबंधित है। प्रसव सहायक को 'सोपाणी' कहा जाता है। कन्या का जन्म शुभ माना जाता है और बच्चे के जन्म की सूचना ढोल बजाकर दी जाती है। यहाँ लड़का उत्तराधिकार होता है। वहीं लड़की वधू-मूल्य दिलवाती है, जिसका अन्य समाज में प्रचलन नहीं है यह परम्परा आज भी प्रचलित है, जो महिला की श्रेष्ठता को प्रदर्शित करती है।

(4) जनजातीय समाज में पति का घर अपना घर - अन्य समाजों की तरह जनजातीय समाज की लड़कियाँ विवाह के पश्चात् अपने पति के घर रहती हैं लेकिन लड़कियों को अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार इस जनजाति की परम्परा के अनुसार नहीं होता। पिता ही परिवार को संगठित तथा नियंत्रित करता है एवं सामाजिक, आर्थिक और सामुदायिक समस्त कार्यों में परिवार का प्रतिनिधित्व करता है।

(5) बाल विवाह नहीं होना - इस समाज में लम्बे समय से विवाह के क्षेत्र में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को अधिक अधिकार प्राप्त हैं, इसलिए इस जनजाति के विवाह में ऐसे तत्वों का समावेश है, जिसका अन्य समाजों में नितांत अभाव है। इसमें विवाह विच्छेद, पुनर्विवाह और विधवा को मान्यता दी जाती है। इससे संबंधित महिला की स्वीकृति आवश्यक होती है। सामान्यतः भीलों में बाल विवाह नहीं होता है, लड़की का विवाह तब करते हैं, जब वह गृह एवं कृषि कार्य करने योग्य हो जाती है। विवाह के लिए कोई निश्चित आयु-निर्धारण का नियम नहीं है विवाह के लिये लड़की की आयु पन्द्रह से बीस वर्ष के मध्य होती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भील नारियाँ जीवन साथी चुनने में अच्छे बुरे का ध्यान रखती हैं।

(6) शिक्षित भील महिलाओं में जागृति - वर्तमान समय में शिक्षित भील महिलाएँ अत्यंत जागरूक हो गयी हैं, वे अब आधुनिक विवाह की ओर अग्रसर हुई हैं और शासकीय नियमों को ध्यान में रखकर अपने जीवन-साथी के चुनाव के बारे में सोचती हैं।

(7) वधु-मूल्य की परम्परा- भीलों में वधू-मूल्य विवाह की एक अनिवार्य शर्त है। वधू-मूल्य वह राशि है जो कि वर पक्ष के द्वारा वधू के माता-पिता को दी जाती है, जिसे यह लोग 'दापा' कहते हैं। भीलों में विवाह अपनी ही उपजाति में करना अनिवार्य होता है। इसमें सहगोत्र विवाह की अनुमति नहीं है। अपने गोत्र से अलग अन्य गोत्र के साथ विवाह किया जा सकता है।

(8) पति के काम में हाथ बंटाई - पत्नी के रूप में भील नारी खेतों पर पति के कामों में हाथ बंटाती है। इस क्षेत्र में भील परिवार पहाड़ियों पर निवास करते हैं। वहाँ की भूमि कंकरीली-पथरीली व बंजर है, जिस पर खेती करना आसान काम नहीं है। भीली महिलाएँ कृषि के सभी कार्यों में खेत तैयार करने से फसल काटने तक में बराबर सहयोग करती है। जब खेत पर कार्य नहीं होता है तो ये मजदूरी कर आय अर्जित करती हैं। इस प्रकार महिलाएं परिवार पर बोझ नहीं होती है।

(9) परम्परागत परिधानों का त्याग - शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा गैर जनजाति लोगों के सम्पर्क में आने के परिणामस्वरूप अब ये लोग धीरे-धीरे परम्परागत वस्त्रों को छोड़ आधुनिक वस्त्रों को धारण करने लगे है।

(10) महिला संगठनों की भूमिका - वर्तमान समय में जनजातीय महिलाओं के सशक्तिकरण में सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों की अहम् भूमिका दृष्टिगोचर होती है, जिसमें प्रमुख रूप से वनवासी कल्याण आश्रम, बाबा बालेश्वर दयाल का आश्रम, पीपलखूंटा आश्रम, शिक्षा ग्यारंटी योजना, राजीव गांधी शिक्षा मिशन, क्रिश्चियन मिशनरी, गुरूजी योजना, स्वास्थ्य जीवन सेवा ग्यारंटी योजनाएँ शामिल हैं। भारत सरकार एवं प्रदेश सरकारों द्वारा महिलाओं को प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर करने के लिए सराहनीय कार्य किये गये हैं, जिसके फलस्वरूप महिलाएं अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग रहकर कार्य करने लगी हैं।

आदिवासी नारी को सशक्त बनाने का सुझाव -

आदिवासी नारी को सशक्त बनाने तथा और अधिक सम्मान दिलाने की आवश्यकता है जिस हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत है-

(i) आदिवासी महिलाओं की शिक्षा पर अधिक जोर देना चाहिए।

(ii) महिलाओं में आत्मविश्वास जाग्रत करना होगा, उनसे प्रत्यक्ष व्यक्तिगत सम्पर्क कर उनकी क्षमताओं और योग्यताओं के बारे में अवगत करना होगा।

(iii) महिलाओं को पर्दा प्रथा से मुक्त करना होगा। उनमें नेतृत्व की क्षमता विकसित करनी होगी, साथ ही समाज के प्रति जागरुकता उत्पन्न करनी होगी।

(iv) उनको नौकरियों में आरक्षण देना होगा, जिससे वह अपना जीवन सम्मानजनक जी सके।

(iv) अन्य समाज की महिलाओं को संगठित होकर महिला शक्ति को दिखाना होगा। तब धीरे-धीरे वे समाज में उभर पायेगी।

जनजातीय महिलाओं की दशा
(Condition of Triblal Women)

भारत की कुल जनसंख्या का 8.02 प्रतिशत भाग जनजातियों का है। म.प्र. में जनजातियों की जनसंख्या 20.3 प्रतिशत है। म.प्र. के 53 जिलों में कुल 42 जनजातियाँ पाई जाती हैं।

शैक्षणिक स्थिति : तमाम शैक्षणिक कार्यक्रमों एवं सुविधाओं के पश्चात् भी जनजाति महिलाओं में साक्षरता दर कम रही है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार म.प्र. में महिलाओं की साक्षरता दर 50.3 प्रतिशत है, जबकि जनजाति महिलाओं में साक्षरता दर 28.44 प्रतिशत रही है। जनजातीय पुरुषों की साक्षरता दर 53.55 प्रतिशत रही है। आदिवासी महिलाओं में साक्षरता दर अनुपात म.प्र. सामान्य महिलाएँ एवं जनजातीय पुरूष बहुत कम है।

साक्षरता दर कम होने के कारण

1. कम उम्र की बालिका का माँ के साथ गृहकार्य में हाथ बंटाना।
2. आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र में शिक्षा एवं शिक्षकों की कमी।
3. पुरूषों द्वारा शिक्षित महिलाओं के प्रति गलत धारणा।
4. धार्मिक मान्यता एवं अंधविश्वास।

भारत की 60 प्रतिशत महिलाएँ आजादी के बाद भी प्रगति से कोसो दूर है। इनके साथ आज भी दोयम दर्जे का व्यवहार होता है। इसके विभिन्न कारण हैं।

1. कानूनों के क्रियान्वयन में शिथिलता
2. कानूनों के प्रति अज्ञानता
3. कानूनी प्रक्रिया की जटिलता
4. कमजोर आर्थिक स्थिति
5. महंगी एवं लम्बी कानूनी प्रक्रिया
6. शिक्षा का अभाव।
7. जिम्मेदारियों का पुरुषों में अभाव।
8. पुरुषों की विकृत मानसिकता।

स्वास्थ्य : विशिष्ट सेवाएँ प्रदान करने के लिए ग्राम, अस्पताल एवं औषधालय बनाये गये हैं परन्तु आज भी म.प्र. के साथ देश की जनजातीय महिलाओं के स्वास्थ्य में निरन्तर गिरावट आई है। जिसके निम्न कारण हैं -

1. कुछ जनजातियों (बैगा) में झाड़फूंक, गण्डा-तावीज पर विश्वास किया जाता है।
2. अस्पताल में डॉक्टर का अभाव एवं जननी सुरक्षा योजना की जानकारी नहीं होना।
3. पर्याप्त मजदूरी के अभाव में कुपोषण का शिकार होना।

नारी संबंधी रोजगार : ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि में रोजगार की कमी के पश्चात् जनजातियाँ आधुनिक और नगरीय सभ्यता के सम्पर्क में आई। महिलाओं में विनिमय, वितरण तथा सम्पत्ति का समायोजन करने के लिए महिलाओं द्वारा पुरूषों के समान शारीरिक श्रम किया जाता है। शहरों में जनजाति महिलाएँ घरेलू काम, पुराने कपड़ों के बदले बर्तन बेचना, दुकान में साफ-सफाई का कार्य आदि के माध्यम से पारिवारिक आवश्यकताओं को पूरा करती रही है।

नारी एवं आवास : प्रायः जनजाति के लोग एक साथ समूहों में निवास करते हैं। इनके मकान पक्के, लकड़ी के, टीन के बीच खपरेल एवं घास-फूँस के बने हुए रहते हैं। इनमें महिलाओं का बराबर का सहयोग लिपाई-छबाई रहता है।

महिला व बंधुआ मजदूरी : जनजाति परिवार पर्याप्त आय के अभाव में बंधुआ मजदूर बनकर रह जाते हैं। पुरूषों का तो शोषण होता है साथ ही महिलाओं का भी शोषण होता हैं। यदि महिलाएँ थाने, कोर्ट -कचहरी में रिपोर्ट लिखवाने जाती हैं तो वहाँ रिपोर्ट नहीं लिखकर उसे कई बार दुर्व्यवहार का शिकार होने को मजबूर होना पड़ता है।

प्रदेश में विकास की तमाम कल्याणकारी योजनाओं के बाद भी जनजातियों की महिलाओं में शोषण तथा उत्पीड़न में विशेष अन्तर नहीं आया है। बड़े-बड़े उद्योगों एवं बाँध बनाने में जनजातियों की भूमि अधिग्रहण की गई, परन्तु आज तक उन्हें ठीक से मुआवजा तक नहीं मिला है और न ही पुनर्वास। स्वतंत्रता पश्चात् अधिकाधिक संख्या में जनजातीय क्षेत्रों में नौकरी करने वाले प्रशासकों, ठेकेदारों, दुकानदारों, महाजन, सेठ, साहूकार व एजेण्टों ने प्रवेश करके इन जनजातियों का शोषण किया है।

महिलाओं के सुधार हेतु सुझाव

1. ग्राम स्तर पर महिला मण्डल स्थापित हो।
2. नारी शोषण एवं उत्पीड़न के विरूद्ध महिला मण्डलों द्वारा आंदोलनों की व्यवस्था की जाय।
3. गांव में स्कूल शिक्षकों व अस्पताल में डॉक्टरों की समुचित व्यवस्था होना।
4. महिला मण्डल द्वारा महिलाओं को विभिन्न विकास कार्यक्रमों की जानकारी उपलब्ध कराना।
5. महिलाओं को रोजगार से जोड़ना।
6. नागरिक संरक्षण अधिनियम का कड़ाई से पालन करना।
7. शासकीय योजनाओं का सही क्रियान्वयन, भ्रष्टाचार को खत्म करना आदि।
8. महिलाओं की समस्या निदान हेतु निरन्तर बैठकें होती रहें।
9. महिला अधिकार एवं शिक्षण, प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
10. महिलाओं के लिए स्व-सहायता समूह बनाना।
11. जिला सूचना केन्द्र द्वारा शासकीय योजनाओं को फिल्म, नुक्कड़ नाटक, नौटंकी व खेलो द्वारा चित्रण करना।
12. नशाखोरी के खिलाफ अभियान चलाने की व्यवस्था करना।
13. आरक्षण का प्रतिशत राज्य में जनजाति एवं अनुसूचित जाति की जनसंख्या अनुसार करना चाहिए।
14. अगली सहस्त्राब्दी में महिलाओं को पितृसत्तात्मक पक्षपात से सुरक्षित करना है।
15. वर्तमान संसद में महिलाओं का प्रतिशत 8.9 है जबकि संसद में महिलाओं के लिए संरक्षण एक तिहाई होने की आवश्यकता है।

जनजातीय महिलाओं को सशक्त जागरूक होकर सामाजिक शक्तियों का सतत् प्रयास कर आत्मसम्मान के लिए निडर एवं भयमुक्त हो कर संघर्ष करते हुए सरकारी ढाँचे को भी जनजाति विकास में पूर्ण सहयोग कर प्रदेश को प्राणवान इकाई बनाना होगा। वर्तमान नारी ने पंचायती राज में अपने आप को बहुत हद तक सुदृढ़ कर लिया है और समाज में विकास के लिए उन्होंने नशा विरोधी जैसे अभियानों को प्राथमिकता दी है लेकिन गाँव की अधिकांश महिलाएं अभी भी अशिक्षित हैं जिसके कारण उनकी सक्रिय भागीदारी प्रभावित होती है। कानून का निर्माण एवं संशोधन आसान है, परन्तु सामाजिक प्रथाओं और लोगों के व्यवहार में परिवर्तन लाना आसान नहीं है। अतएव अपने व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को संवारने के लिए और सामाजिक न्याय एवं प्रतिष्ठा को हासिल करने के लिए महिलाओं को जागरुक करना होगा, जिसमें हम सभी को बराबरी का सहयोग देना पड़ेगा।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जनजातीय समाज के महिलाओं की स्थिति का वर्णन कीजिए।

2. जनजातीय महिलाओं की दशा का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जनजातीय नारी को सशक्त बनाने के सुझावों का वर्णन कीजिए।
2. जनजातीय महिलाओं के उत्थान हेतु विविध सुझावों का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. जनजाति महिलाओं की साक्षरता दर–

   (अ) 28.44 (ब) 20.44 (स) 32.44 (द) 23.44

2. मध्यप्रदेश में जनजातियों की लगभग संख्या–

   (अ) 35 (ब) 30 (स) 41 (द) 50

3. देश में सर्वाधिक जनजातियाँ हैं–

   (अ) मध्यप्रदेश (ब) उत्तरप्रदेश (स) पश्चिम बंगाल (द) बिहार

4. आदिवासी जनजाति में कन्या जन्म ...

   (अ) शुभ माना जाता है (अ) अशुभ माना जाता है

   (स) अच्छा नहीं माना जाता (द) इनमें से कोई नहीं

5. भारत में कुल जनसंख्या का कितना प्रतिशत भाग जनजातियों का है

   (अ) 8.02 (ब) 12 (स) 17 (द) 22

Ans. 1. (अ), 2. (स), 3. (अ), 4. (अ), 5. (अ)



9

जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ
(FEATURES OF TRIBAL ECONOMY)

मनुष्य निरन्तर आवश्यकताओं से घिरा रहता है। ये आवश्यकताएँ आज ही भर नहीं हैं, अपितु आदि काल से मनुष्य के सामने अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ रही हैं। इन आवश्यकताओं में भौतिक आवश्यकताओं की प्रकृति तो इस प्रकार की होती है कि इनके अभाव में मानव अपने अस्तित्व की रक्षा ही नहीं कर सकता है। आर्थिक व्यवस्था मानव जीवन का आधार है। ऐसा कोई भी समाज नहीं, जहाँ अर्थव्यवस्था के महत्व को स्वीकार न किया जाता हो। वन्यजातीय समुदाय समाज का ही एक भाग है। इस दृष्टि से वन्यजातियों की आर्थिक व्यवस्था भी सम्पूर्ण समाज की आर्थिक व्यवस्था का एक भाग है। इस दृष्टि से हमारे अध्ययन का एक आकर्षक विषय है। इसका कारण यह है कि वन्यजाति हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक हैं। यदि हम वन्यजातियों की अर्थ-व्यवस्था की तुलना आधुनिक समाज की अर्थ-व्यवस्था से करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी अर्थ-व्यवस्था ही पिछड़ी हुई है। इनका सम्पूर्ण आर्थिक जीवन आदिम है। विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने अर्थ-व्यवस्था या आर्थिक संगठन की जो परिभाषाएँ की हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं —

(1) **बील्स तथा हाइजर** — "आर्थिक संगठन व्यवहारों के प्रतिमान हैं तथा समाज का वह परिणामस्वरूप संगठन है जो कि समाज तथा सेवाओं के उत्पादन, वितरण तथा उपभोग से सम्बन्धित है।"

(2) **पिडिंग्टन** — "आर्थिक व्यवस्था लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए उत्पादन की व्यवस्था, वितरण पर नियन्त्रण तथा समुदाय में स्वामित्व के अधिकारों तथा दावों को निर्धारित करती है।"

इस प्रकार 'वन्यजातीय अर्थ-व्यवस्था वन्यजातीय स्रोतों के उपभोग, संरक्षण और संगठन के वास्तविक तथा ऐच्छिक साधनों की संरचना का अध्ययन है।'

वन्यजातीय अर्थ-व्यवस्था की विशेषताएँ
(Characteristics of Tribal Economy)

भारतीय वन्यजातियों की आर्थिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है —

(1) कृषि की प्रधानता — भारतीय वन्यजातियों की भौतिक विशेषता कृषि की प्रधानता है। यदि हम मानव समाज के उद्विकास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानव समाज का उद्विकास बर्बरता से हुआ है। आदि काल में मानव का जीवन शिकार पर आधारित था और विकास के क्रम में उसने बाद में कृषि को अपनाया। भारत की सम्पूर्ण वन्यजातियों में तीन चौथाई कृषि पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इनकी कृषि की विधियाँ अत्यन्त ही प्राचीन हैं।

वन्यजातियों में कृषि पद्धतियों में 'भूमि कृषि' (Shifting Cultivation) का महत्व अधिक है। प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष में विभिन्न नामों से भूमि कृषि की प्रथा पाई जाती है। इसे आसाम और त्रिपुरा में भूमि, मध्य- प्रदेश में बेबर अथवा दहिया, आन्ध्रप्रदेश में पान्डू, उत्तर उड़ीसा में पामे, दाही, कोमन अथवा ब्रिगना और दक्षिण उड़ीसा में गुदिया अथवा डोगार पास।

भारतवर्ष में करीब 26 लाख वन्यजातियाँ झूम-कृषि करती हैं। कुछ प्रदेश ऐसे हैं जहाँ यह समस्या अत्यन्त ही गम्भीर है। इनमें आंध्रप्रदेश, आसाम, बिहार, उड़ीसा और केन्द्र शासित प्रदेश मणिपुर, त्रिपुरा

तथा नागालैण्ड प्रमुख हैं। झूम-कृषि भारतीय वन्यजातियों की मौलिक विशेषता है। इसके अतिरिक्त अनेक वन्यजातियाँ हल से भी खेती करती हैं, किन्तु इनके तरीके अत्यन्त ही प्राचीन और अविकसित हैं।

(2) **अदला-बदली व्यवस्था** (Barter System)– भारतीय वन्यजातियों की दूसरी आर्थिक विशेषता अदला-बदली प्रथा है। इसका कारण यह है कि वन्यजातियों में रुपये का अभाव पाया जाता है। इसलिए आदान-प्रदान के लिए वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। दो व्यक्तियों या दो परिवारों के बीच अदला-बदली का आधार आवश्यकताएँ होती हैं। इसलिए इन वन्यजातियों में मूल्य-निर्धारण (Price determination) की कोई व्यवस्था नहीं है और न ही शाखा व्यवस्था के लिए किसी प्रकार की विकसित संस्था ही।

(3) **प्रकृति पर आधारित** – भारतीय वन्यजातियों की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था प्रकृति पर आधारित है। उनको पानी प्राकृतिक स्रोतों तथा नदी- नालों से प्राप्त होता है। कृषि पूरी तरह पानी तथा अन्य प्राकृतिक दशाओं पर आधारित होती है। ये अपनी खाद्य-सामग्री भी जंगली फल-फूल, जड़ और पत्तियों से प्राप्त करते हैं, जिनका आधार प्रकृति होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सारी अंर्थ-व्यवस्था प्रकृति पर आधारित होती है।

(4) **आर्थिक संस्थाओं का अभाव** – वन्यजातियों में आर्थिक संस्थाओं का भी अभाव पाया जाता है। इसका कारण यह है कि वहाँ लाभकारी कृषि, उद्योग और व्यापारों का अभाव पाया जाता है। यही कारण है कि वन्यजातियों में विकसित आर्थिक संस्थाओं-बैंक, बाजार, स्टाक एक्सचेंज आदि का अभाव पाया जाता है।

(5) **सम्पत्ति का कम महत्व** – वन्यजातियों के जीवन में भी यद्यपि संपत्ति को स्थान दिया जाता है, किन्तु सम्पत्ति को वे उतना महत्व प्रदान नहीं करते हैं, जितना कि आधुनिक समाजों में। वे अस्थायी जीवन व्यतीत करते हैं, इससे भूमि पर भी उनका स्वामित्व स्थायी नहीं रह पाता है। वे भूमिहीन होते हैं। जंगली जानवर और पालतू पशु ही उनकी सम्पत्ति है। सोना, चाँदी, यन्त्र, आदि का वे संग्रह नहीं करते हैं।

(6) **अविकसित उद्योग** – भारतीय वन्यजातियों के जीवन में उद्योगों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक वन्यजातियाँ ऐसी हैं, जो जीविकोपार्जन के लिए उद्योगों का सम्पादन करती हैं, किन्तु इन उद्योगों की मौलिक विशेषता यह है कि इन उद्योगों का स्वरूप अत्यन्त ही आदिम, परम्परात्मक और अविकसित होता है। वन्यजातीय क्षेत्रों में कुछ व्यक्तियों ने उद्योगों की स्थापना की है। इन उद्योगों में वन्यजाति के व्यक्ति श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं।

(7) **सामूहिकता** – वन्यजातीय अर्थ-व्यवस्था की मौलिक विशेषता सदस्यों में पाई जाने वाली सामूहिकता की भावना है। वन्यजातियों में सामूहिक जीवन अत्यन्त ही दृढ़ होता है। इसका कारण यह है कि ये घोर जंगलों और पहाड़ों में निवास करते हैं, जंगली हिंसक पशुओं तथा अनेक प्राकृतिक विपदाओं से घिरे होते हैं। इससे इनके जीवन में सुरक्षा का महत्व सबसे अधिक होता है। इसके साथ ही अनेक ऐसे आर्थिक कार्य हैं, जिन्हें कोई भी व्यक्ति अकेला नहीं कर सकता है। इन कार्यों में आखेट करना, मछली मारना, खेती करना आदि प्रमुख हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वन्यजातियों में सामूहिक अर्थ-व्यवस्था का जन्म होता है।

(8) **विशेषीकरण का अभाव** – वन्यजाति जो भी आर्थिक क्रियाएँ करते हैं, इन क्रियाओं का उद्देश्य लाभ कमाना न होकर जीवन-यापन करना होता है। इसका परिणाम यह होता है कि आर्थिक क्रियाओं में श्रम-विभाजन (Division of Labour) और विशेषीकरण (Specialization) का अभाव पाया जाता है। सभी आर्थिक क्रियाएँ सामूहिक आधार पर संचालित की जाती हैं– जैसे शिकार करना, खेती करना, मछली मारना आदि ऐसी ही आर्थिक क्रियाएँ हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष समान रूप से भाग लेते हैं।

(9) **प्रथाओं पर आधारित** – वन्यजातीय अर्थ-व्यवस्था की अगली विशेषता यह है कि इसमें सांस्कृतिक और सामाजिक प्रथाओं की छाप को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सभी वन्यजातियाँ आर्थिक

क्रियाओं का संचालन प्रथाओं के आधार पर करते हैं। इसीलिए आर्थिक संगठनों और आर्थिक क्रियाओं पर धर्म, देवी-देवता, प्रथाओं तथा परम्पराओं की छाप को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

(10) **अविकसित प्रौद्योगिकी** – वन्यजातीय समाजों में प्रौद्योगिकी (Technology) है, किन्तु इसका स्वरूप अत्यन्त ही अविकसित है। वन्यजातियों के उत्पादन और रहन-सहन की जो पद्धतियाँ हैं, वे अत्यन्त ही प्राचीन हैं। आधुनिक यन्त्रों का नितांत अभाव है। वे उद्योगों को संचालित करने वाली नवीन पद्धतियों के ज्ञान से पूर्णतया अपरिचित हैं।

(11) **मिश्रित अर्थ-व्यवस्था** – अन्त में भारतीय वन्यजातियों की अर्थ-व्यवस्था को मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) कहना अधिक उपयुक्त होगा। इनके जीवन के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पहलू परस्पर अन्तः सम्बन्धित हैं। इसके साथ ही अर्थ-व्यवस्था का स्वरूप मिश्रित है।

आर्थिक संस्थाएँ
(Economic Institutions)

मानव स्वभावतः सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे अनेक प्रकार की क्रियाओं का सम्पादन करना पड़ता है। ये क्रियाएँ जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित होती हैं, जिनमें सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रियाएँ प्रमुख हैं। मानव जीवन अनेक प्रकार की मूल प्रवृत्तियों (Instincts) द्वारा संचालित और निर्देशित होता है। सामाजिक क्रियाओं के सम्पादन में इन मूल प्रवृत्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भूख और प्यास मानव की सबसे आवश्यक मूल प्रवृत्ति है। इस मूल प्रवृत्ति को सन्तुष्ट किये बिना मनुष्य के जीवित रहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

मानव समाज के ऐतिहासिक विकास की व्याख्या करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जन्म के साथ ही मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ थीं। इन आवश्यकताओं में भौतिक आवश्यकताएँ सर्वप्रथम थीं। इन आवश्यकताओं में भोजन, वस्त्र और निवास की आवश्यकताओं को सम्मिलित किया जा सकता है। मानव अस्तित्व की रक्षा के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति अनिवार्य है। अत्यन्त प्राचीनकाल से मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक साधनों का प्रयोग करता आया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनेक आवश्यकताओं में आर्थिक आवश्यकताएँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं।

आर्थिक संस्थाओं का ऐतिहासिक विकास
(Historical Development of Economic Institutions)

समाज की अनेक संस्थाओं का मनुष्य के साथ ही शनैः-शनैः उद्भव और विकास हुआ है। आर्थिक संस्थाएँ भी सामाजिक उद्विकास की इसी प्रक्रिया से गुजरी हैं। संक्षेप में, आर्थिक संस्थाओं के उद्भव और विकास को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(1) **भौतिक साधन एकत्रित करने तथा शिकारी अवस्था** – यह आर्थिक संस्थाओं के विकास की पहली अवस्था है। यदि हम **डार्विन** के शब्दों में मानव उद्विकास की विवेचना करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य बन्दरों की भाँति था, जंगलों और पहाड़ों में निवास करता था तथा अपनी भूख शान्त करने के लिये कन्दमूल और फल एकत्रित करता था। वह पशुओं का शिकार करके भी अपनी भोजन सामग्री एकत्रित करता था। यह आर्थिक संस्थाओं के विकास की पहली अवस्था थी। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(a) इस अवस्था में श्रम विभाजन का अभाव था। पुरुष शिकार करते थे। इसी प्रकार के अन्य कठिन कार्यों को सम्पादित करते थे तथा इसके विपरीत स्त्रियों का काम भोजन बनाना तथा परिवार के लिए फल-फूल इकट्ठा करना और बच्चों की देखभाल करना था।

(b) इस युग की दूसरी विशेषता यह थी कि व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसी कोई वस्तु नहीं थी, जो भी फल-फूल या शिकार एकत्रित करते थे, वह समूह की सम्पत्ति मानी जाती थी।

(c) इस अवस्था की तीसरी विशेषता यह थी कि सम्पूर्ण समुदाय आत्म-निर्भर था। समुदाय के सभी सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने आप ही करते थे।

(2) **पशुपालन एवं कृषि अवस्था** — समाज की प्रकृति गतिशील है। इस गतिशीलता के कारण मनुष्य समाज और आर्थिक संस्थाएँ निरन्तर परिवर्तित होती गईं। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य ने आखेट अवस्था से कृषि और पशुपालन अवस्था में प्रवेश किया। कृषि और पशुपालन उत्पादन की दो ऐसी क्रियाएँ हैं जिन्होंने मनुष्य और समाज के जीवन को ही परिवर्तित कर दिया। इस अवस्था में मनुष्य ने कृषि करना सीख लिया तथा जिन पशुओं का वह शिकार करता था उनका पालन करने लगा। आज भी ऐसे अनेक समाज हैं जो प्रारम्भिक अवस्था में ही कृषि करते हैं, इस कृषि को 'कुदाली खेती' के नाम से जाना जाता है। मध्यप्रदेश की अनेक वन्यजातियाँ 'स्थानांतरित कृषि' करती हैं। इस अवस्था की प्रमुख आर्थिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(a) भूमि को सम्पत्ति के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।

(b) इस प्रकार सामूहिक सम्पत्ति के स्थान पर व्यक्तिगत सम्पत्ति का जन्म हुआ।

(c) इस युग में वस्तु विनिमय की प्रथा का भी प्रचलन हुआ।

(d) कृषि उत्पादन तथा कृषि से सम्बन्धित औजारों के विनिमय के लिये छोटी-छोटी मंडियों का विकास हुआ।

(e) इस युग में श्रम विभाजन का स्वरूप भी अधिक स्पष्ट हो गया।

(3) **हस्तकला की अवस्था** — आर्थिक समस्याओं के विकास की तीसरी अवस्था का प्रारम्भ तब होता है जब मनुष्य हाथ से औजार बनाना सीख लेता है। कृषि कार्य को सम्पादित करने के लिये मनुष्य ने अनेक प्रकार के औजारों की आवश्यकता का अनुभव किया, हस्तकला के कारण सम्पत्ति का विकास तो हुआ ही इसके साथ ही मनुष्य के लिये अनेक क्षेत्र भी खुल गये। उसे अनेक धातुओं का ज्ञान हो गया। इस युग की प्रमुख आर्थिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है —

(1) कृषि के लिये छोटे-छोटे औजारों का हाथ से निर्माण किया जाने लगा।

(2) औजारों के आविष्कार के परिणामस्वरूप गृह उद्योगों का जन्म हुआ।

(3) कृषि युग में वस्तु विनिमय का स्वरूप स्पष्ट तथा व्यवस्थित हो गया।

(4) व्यापारियों और कारीगरों के संघों का निर्माण हुआ।

(5) चुंगी के महत्व की वृद्धि हुई।

(6) साझेदारी तथा पूँजीवादी व्यवस्था का जन्म हुआ।

आधुनिक आर्थिक व्यवस्थाएँ
(Modern Economic Systems)

औद्योगिक क्रान्ति आधुनिक आर्थिक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप नये आविष्कार हुए और इन आविष्कारों ने समाज की अर्थव्यवस्था को ही परिवर्तित कर दिया। आधुनिक अर्थ-व्यवस्था को मिश्रित या जटिल अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था विश्व के प्रत्येक प्रगतिशील देश में पाई जाती है। प्राय: प्रत्येक देश में अर्थ-व्यवस्थाओं का एक मिश्रित स्वरूप

रहता है; जैसे— औद्योगिक अर्थव्यवस्था प्रायः कृषि-प्रधान है। अनेक देश ऐसे भी हैं जहाँ अनेक प्रकार की अर्थव्यवस्थाएँ मिश्रित रूप में रहती हैं।

इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि प्रगति के क्रम में एक प्रकार की आर्थिक व्यवस्था इसी प्रकार की आर्थिक व्यवस्था को जन्म देती है जिससे समाज विकास के पथ पर अग्रसर होता है। आधुनिक युग की जो प्रमुख आर्थिक व्यवस्थाएँ हैं उन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है —

(1) पूँजीवाद (Capitalism), (2) समाजवाद (Socialism), तथा (3) साम्यवाद (Communism)

जनजातीय जीवन-यापन के साधन
(Tribal Means of Livelihood)

प्रत्येक जीवधारी की यह इच्छा होती है कि वह जीवित रहे, किन्तु जीवित रहना उतना आसान नहीं है, जैसा कि समझा जाता है। जीवित रहने के लिए आवश्यक है- आवश्यकताओं की पूर्ति और आवश्यकताओं की पूर्ति अपने आप होती नहीं। इसके लिए कुछ प्रयास करना पड़ता है। अनेक अवसरों में लाखों प्रयासों के बावजूद भी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है। फिर भी मनुष्य निरन्तर प्रयास करता रहता है। वह हार नहीं मानता, क्योंकि हार मानने का अर्थ है— मृत्यु को आमंत्रण देना। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि जीने के लिए जिन आधारों की तलाश मानव जीवन द्वारा की जाती है, वही आधार संक्षेप में जीवन-यापन के साधन हैं।

मनुष्य की कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। अर्थशास्त्री इन मूलभूत आवश्यकताओं को निम्न तीन शीर्षकों में विभाजित करते हैं —

(a) भोजन, (b) वस्त्र, और(c) निवास

इन आवश्यकताओं का सम्बन्ध मनुष्य के अस्तित्व से है। यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति न की जाए तो जीवन ही खतरे में पड़ जाएगा। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार की जाए? इसके लिए मनुष्य तरीकों की तलाश करता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य जिन तरीकों की तलाश करता है, इन्हीं तरीकों को जीवन-यापन के साधन के रूप में जाना जाता है।

जीवन-यापन के इन साधनों का आर्थिक प्रणाली से घनिष्ठ सम्बन्ध है। आर्थिक प्रणाली ही वह आधार है, जो जीवन-यापन के साधनों को विकसित करती है तथा उन्हें एक व्यवस्था प्रदान करती है। जनजातियाँ आज के विज्ञान के युग में भी अधिकांशतः अपने जीवन-यापन के साधनों के लिए प्रकृति पर ही आश्रित हैं। हजारों वर्षों से जंगल, पहाड़, नदियाँ और घाटियां उनके जीवन-यापन के साधनों के रूप में प्रयुक्त होते आए हैं। जंगलों और पहाड़ों से खाद्य सामग्री का संग्रह करना, नदियों और तालाबों से मछली पकड़ना तथा जंगली जानवरों का शिकार करना और पहाड़ों तथा ढलान क्षेत्रों में खेती करना आदिवासियों की आजीविका के अंग रहे हैं। यही कारण है कि जनजातियों के जीवन-यापन के साधन भौगोलिक पर्यावरण पर आश्रित रहे हैं। उनके जीवन का अधिकांश भाग प्रकृति की गोद में व्यतीत होता है और यही प्रकृति उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम भी बनती है। यही कारण कि वे निरन्तर प्रकृति से संघर्ष करते हुए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं।

जीवन-यापन के साधनों की पूर्ति में वे अनेक प्रकार के औजारों, वस्तुओं और तकनीकी प्रयोग करते हैं। इनके सारे औजार, तकनीक और वस्तुएँ प्रकृति के द्वारा प्रदान की जाती हैं। आर्थिक जीवन के साथ ही साथ इनके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का भी प्रकृति से ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज इन समाजों में जो धर्म, त्यौहार, उत्सव तथा सामाजिक संस्थाएँ पाई जाती हैं, वे सभी प्रकृति पर आधारित तथा प्रकृति के द्वारा ही पल्लवित और पुष्पित हैं।

जीवन-यापन के साधनों की विशेषताएँ
(Characteristics of Means of Livelihood)

जीवन-यापन के साधनों की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं –

1. जीवन-यापन के सभी साधन जनजातियों के भौगोलिक पर्यावरण पर आश्रित होते हैं। अर्थात् जनजातियों का जैसा भौगोलिक पर्यावरण होगा, उनके जीवन-यापन के साधनों का विकास उसी के अनुरूप होगा।
2. जीवन- यापन के सारे साधन प्राकृतिक शक्ति से पूरी तरह संचालित होते हैं। जनजातियाँ प्राकृतिक शक्ति की पूजा करती हैं। अत: सभी साधन पूजनीय होते हैं तथा समाज में उनका महत्वपूर्ण स्थान होता है।
3. जीवन-यापन के सभी साधन देवी-देवताओं की पूजा और उपासना पर आधारित होते हैं। उनका विश्वास है कि पूजा और उपासना के माध्यम से जो भी आर्थिक क्रियाएँ की जाएँगी, उनमें सफलता प्राप्त होगी।
4. जनजातियों के जीवन-यापन के साधनों में आधुनिक प्रौद्योगिकी (Modern Technology) का अभाव पाया जाता है। वे अपने सरलतम् तथा परम्परागत जीवन-यापन के साधनों का इस्तेमाल करते हैं।
5. उनके जीवन-यापन के साधनों के माध्यम से अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता है। वे जो भी उत्पादन करते हैं वह मात्र उपभोग के लिए होता है। यही कारण है कि अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता है।
6. अतिरिक्त उत्पादन न होने से संचय का अभाव पाया जाता है।
7. जीवन-यापन के साधन विनिमय (Exchange) पर आधारित होते हैं। यही कारण है कि मुद्रा (Money) का अभाव पाया जाता है। आवश्यकतानुसार वस्तुओं का आदान-प्रदान कर लिया जाता है। इस आदान-प्रदान को अदला बदली की प्रथा (Barter system) के नाम से जाना जाता है।
8. जीवन-यापन के साधनों का लाभ कमाने से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। ये केवल जीविका निर्वाह के लिये होते हैं।
9. जनजातियों के जीवन-यापन के साधनों में निम्न तत्वों का अभाव पाया जाता है –
   - (a) नियमित बाजार,
   - (b) प्रतियोगिता,
   - (c) एकाधिकार, और
   - (d) विशेषीकरण का अभाव।
10. जनजातियों के जीवन-यापन के जितने साधन होते हैं, सभी में सामूहिकता (Collectiveness) और सहकारिता (Co-operation) की भावना पाई जाती है। इसका कारण यह है कि जनजातियाँ सामुदायिकता (Communityness) को सर्वोच्च प्राथमिकता देती हैं। व्यक्तिगत स्वामित्व कम और सामूहिक स्वामित्व का अधिक महत्व होता है।
11. जनजातीय अर्थव्यवस्था को जीवन निर्वाह की अर्थव्यवस्था कहा जाता है। अर्थात् प्रतिदिन की आर्थिक जरूरतें पूरी हो जाएँ, बस।
12. जनजातियों की जीवन निर्वाह क्रियाएँ एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित रहती हैं। इसका कारण यह है कि आवागमन और संचार साधनों का अभाव पाया जाता है।
13. जीवन निर्वाह के सभी साधन स्थायी प्रकृति के होते हैं। वहाँ कोई नवाचार, परिवर्तन आदि का महत्व नहीं होता है।

14. जनजातियों के जीवन निर्वाह के साधनों पर किसी प्रकार का राजनैतिक दबाव अथवा राजनैतिक सत्ता का प्रभाव नहीं होता है।

15. जीवन निर्वाह के समस्त साधन श्रम की महत्ता पर आधारित होते हैं।

जनजातीय व्यवसाय
(Tribal Occupations)

व्यवसाय जनजातियों की अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड है। जिस प्रकार का महत्व शरीर में मेरुदण्ड का है, अर्थव्यवस्था में व्यवसाय का है। व्यवसाय वह आधार है, जो आजीविका का साधन है। साथ ही रहन-सहन के स्तर का आधार भी है। जनजातियाँ आदिकाल से किसी न किसी व्यवसाय को सम्पादित करती रही हैं। आदिवासियों का व्यवसाय से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इसकी विवेचना आदिग्रन्थ वेदों में भी की गई है। शंकरानन्द मुखोपाध्याय ने आस्ट्रिक (कोल) जनजातियों को निषाद बतलाते हुए इस तथ्य की ओर इशारा किया है कि ये लोग कृषि न करने वाली जनजातियाँ थीं तथा अनेक प्रकार के गैर कृषि व्यवसायों में पारंगत थीं। इनका विवरण इस प्रकार है

कृषि से इतर व्यवसाय करने वाली जनजातियाँ

	नाम जनजाति		व्यवसाय
1.	वृत्य	....	घुमन्तू जनजाति
2.	तक्षण	....	बढ़ईगिरी करने वाली जनजाति
3.	रथकार	....	रथ बनाने वाली जनजाति
4.	कुलाल	....	बर्तन ढालने वाली जनजाति
5.	कर्मर	....	लोहार जनजाति
6.	पुजिष्ठ	....	मुर्गे पालने वाली जनजाति
7.	श्वानिन	....	कुत्ता पालने वाली जनजाति
8.	मृगायु	....	शिकारी जनजाति

मानव समाज का उद्‌विकास हुआ है और जनजातीय समाज भी उद्‌विकास की इन्हीं अवस्थाओं से गुजरा है। आदि से लेकर अन्त तक वह किसी न किसी प्रकार के व्यवसायों से संलग्न रहा है। आखेट अवस्था (Hunting Stage) में आखेट करना ही उसका मुख्य व्यवसाय था और यही आर्थिक जीवन का आधारस्तंभ भी। लाखों और करोड़ों वर्ष आखेट की अवस्था में व्यतीत करने के बाद व्यक्ति पशुपालन की अवस्था (Pastoral stage) में आया। आखेट अवस्था में कभी-कभी उसे शिकार प्राप्त नहीं होता था। अनेक अवसर ऐसे भी आते थे, जब व्यक्ति जरूरत से ज्यादा जानवरों को मार डालता था। ऐसी स्थिति में उसे जब यह समझ में आया होगा कि क्यों न जानवरों को मारने के स्थान पर पाल लिया जाए तथा आवश्यकतानुसार उसका वध किया जाए, तो समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आया और समाज पशुपालन की अवस्था में प्रवेश कर गया।

आज भी अनेक जनजातियाँ आखेट और पशुपालन की अवस्था से गुजर रही हैं और उनका मुख्य व्यवसाय शिकार करना और पशुपालन है। पशुपालन आज भी एक प्रमुख व्यवसाय है। ये पशुपालन जनजातियाँ पानी और चारे की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान को भटकती रहती हैं तथा पशुपालन उनकी अर्थव्यवस्था का आधार है तथा पशुपालन ही उनका प्रमुख व्यवसाय भी है। आखेट और पशुपालन की अवस्था से आगे बढ़कर मानव कृषि की अवस्था से होते हुए औद्योगिक अवस्था में पहुँच गया है। आज अनेक जनजातियाँ कृषि कार्यों में लगी है तथा कृषि उनके व्यवसाय का प्रमुख आधार है। कृषि के साथ उद्योगों और नौकरी आदि को भी जनजातियाँ व्यवसाय के रूप में ग्रहण कर रही हैं।

जनजातियों के व्यवसाय की विशेषताएँ
(Characteristics of Occupation of Tribes)

आज भी जनजातियों के विकास के अनेक स्तर हैं। जहाँ एक ओर कुछ जनजातियाँ आज भी आदिम अवस्था में निवास कर रही हैं, वहीं कुछ जनजातियाँ विकास की मंजिल में किसी से पीछे नहीं हैं। हाँ इतना अवश्य है कि इनकी संख्या अभी कम है तथा विकास की गति भी काफी धीमी है। जनजाति चाहे वे किसी भी प्रकार का व्यवसाय क्यों न करते हों, उनकी एक अलग विशेषता है। इन विशेषताओं के आधार पर जनजातियों को पहचाना जाता है। जनजातियों के व्यवसाय की जो प्रमुख विशेषताएँ हैं, उनका विवरण इस प्रकार है –

1. जनजातीय व्यवसाय आसपास के वातावरण के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर आधारित होता है।
2. जनजातीय व्यवसाय अकुशल होते हैं। यही कारण है कि इनके माध्यम से आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं है।
3. जनजातीय व्यवसाय की विशेषता वस्तु विनिमय (Exchange) की होती है, मुद्रा का उतने व्यापक रूप में प्रयोग नहीं किया जाता है, जितना कि अन्य व्यवसायों में किया जाता है।
4. बैंक, सहकारी संस्थाएँ तथा साख समितियों की जनजातीय व्यवसायों में नगण्य भूमिका होती है।
5. जनजातियों में जो व्यवसाय किए जाते हैं उनका मूल उद्देश्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। यही कारण है कि जनजातीय व्यवसायों में मुनाफा (Profit) की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है। जो व्यवसाय किए जाते हैं, वे पारस्परिक दायित्व, सहभागिता तथा सुदृढ़ता के आधार पर किए जाते हैं।
6. जनजातियों के व्यवसाय स्थायी प्रकृति के होते हैं। अत: उनमें गतिशीलता का अभाव पाया जाता है।
7. जनजातियों के व्यवसाय की अगली विशेषता है कि इनमें बाजार (Market) का संस्थागत स्वरूप नहीं पाया जाता है। साप्ताहिक हाट-बाजारों का ज्यादा महत्व होता है तथा त्योहार या अन्य अवसरों पर भी व्यवसाय को सम्पादित किया जाता है।
8. व्यवसाय का अधिकांश भाग उपभोक्ता वस्तुओं पर केन्द्रित होता है। चूँकि ये वस्तुएँ उपभोग की होती हैं। अत: इन्हें न तो बचाकर रखा जाता, न तो संग्रह किया जाता है और न ही विनिमय ही किया जाता है।
9. जनजातीय व्यवसायों में विशेषीकरण का अभाव पाया जाता है। इसका कारण यह है कि जनजातीय व्यवसाय में किसी विशिष्ट तकनीक का प्रयोग नहीं किया जाता है।
10. जनजातीय व्यवसाय में सम्पत्ति की अवधारणा भी भिन्न होती है, जो सम्पत्ति कमाई जाती है, उसमें संग्रहण की प्रवृत्ति का अभाव पाया जाता है। उसका उपयोग केवल प्रदर्शन और खर्च के लिए होता है।
11. सम्पत्ति का स्वामित्व संयुक्त अथवा दोनों प्रकार का होता है तथा उत्तराधिकार के नियमों का भी प्रचलन है।

जनजातियों के प्रमुख व्यवसाय
(Main Occupations of Tribes)

कुछ जनजातियाँ आज भी आदिम अवस्था में हैं तथा कुछ आधुनिक अवस्था में। ऐसी स्थिति में कुछ जनजातियाँ आज भी आदिम व्यवसायों में संलग्न हैं, जबकि कुछ आधुनिक प्रकार के व्यवसायों का सम्पादन कर रही हैं। समग्र रूप से जनजातियों में व्यवसाय के जो प्रकार प्रचलित हैं, उनका विवरण इस प्रकार है –

1. शिकार करना। शिकार का निजी भोजन के रूप में प्रयोग करना तथा उनको बेचना।

2. पशुओं का पालन करना। पशुओं को बेचना। पशुओं का दूध तथा खाद आदि को बेचना।

3. वनोत्पादन - अचार-चिरौंजी, कन्द-मूल, फल आदि को एकत्रित करना। उनका उपयोग करना तथा उसे बेचना

4. वनों से लाख इकट्ठा करना इस प्रदेश की जनजातियों का एक प्रमुख व्यवसाय रहा है। लाख एक विशिष्ट प्रकार के कीड़ों के शरीर से निकाला हुआ चिपचिपा पदार्थ है। यह अधिकांशतः मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग के जिले के पलाश के पेड़ पर पाया जाता है। ये कीड़े पलाश की टहनियों पर तरल पदार्थ का उत्सर्ग करते हैं, जो लाख के नाम से जाना जाता है। इस लाख से चमड़ा, वार्निश और प्लास्टिक आदि को बनाने का कार्य किया जाता है। पुराने विंध्य प्रदेश में यह काम बड़े पैमाने पर किया जाता था।

5. जनजातियों का अन्य परम्परागत उद्योग कत्था बनाना है। कत्था बनाना खैरवार जनजाति का परम्परागत व्यवसाय है। जंगलों में एक लकड़ी होती है, जिसे खैर कहा जाता है। इस खैर की लकड़ी को टुकड़ों में काटकर तथा उबालकर कत्था बनाया जाता है। यह उद्योग भी मध्यप्रदेश के पूर्वी जिलों में होता था।

6. जनजातियों द्वारा बाँस से अनेक प्रकार के बर्तन बनाए जाते थे। बर्तन बनाना एक प्रकार का व्यवसाय था और अनेक जनजातियों के जीवन- यापन का साधन भी। चटाई, टोकनी, सूपा, अनाज रखने और ढोने के बर्तन बाँसों द्वारा बनाए जाते हैं। बाँस के बर्तनों का कृषि कार्यों तथा गृहस्थी के कार्यों में सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। इसलिए बाँस-उद्योग का सबसे अधिक महत्व है। जनजातियाँ स्वयं बाँस से अपने तीर-धनुषों का निर्माण करते हैं। बाँस से हैट भी बनाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि बाँसों का जनजातीय समाज में व्यवसाय के लिए अत्यधिक महत्व है।

7. जनजातियों द्वारा मधुमक्खियों का पालन करना एक प्रमुख व्यवसाय है। मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के पूर्वी तथा दक्षिणी भाग में शहद की मक्खियाँ पाई जाती हैं। जनजाति के व्यक्ति इन मधुमक्खियों से शहद निकालने की कला को जानते हैं। यद्यपि यह एक प्रमुख धंधा नहीं है, किन्तु इसका आज भी किसी न किसी रूप में अस्तित्व है।

8. रेशम उद्योग भी मध्यप्रदेश की जनजातियों का प्रमुख व्यवसाय है। मध्यप्रदेश के बालाघाट, मण्डला, शहडोल, बस्तर, बिलासपुर, सरगुजा, रायगढ़, रायपुर, बैतूल आदि जिलों में साल, सागौन तथा मिश्रित वन पाए जाते हैं जहाँ रेशम के कीड़े पालने की प्राकृतिक सुविधाएँ हैं। यहाँ की जलवायु, धरातल और मिट्टी भी इसके अनुकूल है। जिससे रेशम उद्योग को बढ़ावा मिलता है।

9. कोसा व्यवसाय भी छत्तीसगढ़ की जनजातियों में काफी लोकप्रिय है, जो चाम्पा, रायगढ़, अम्बिकापुर, बिलासपुर, सारंगगढ़, धर्मजयगढ़ तथा कटघोरा आदि स्थानों पर व्यवसाय के रूप में होता है।

10. **अन्य व्यवसाय** – ऊपर जिन व्यवसायों का विवरण दिया गया है, उनके अतिरिक्त जनजातियों में कुछ अन्य छोटे व्यवसाय भी प्रचलित हैं, यद्यपि ये छोटे स्तर पर हैं। इन व्यवसायों में से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं–

(i) कांसे की घन्टिया बनाना,
(ii) मुलायम पत्थरों से मूर्तियाँ बनाना,
(iii) माला बनाना,
(iv) लोहा-धातु उद्योग,
(v) कपड़ा बनाना,
(vi) चटाई तथा बाँस के बर्तन बनाना,
(vii) झाड़ बनाना,
(vii) मालों की गुरिया बनाना,
(ix) रस्सी बनाना,
(x) कंघा-कंघी बनाना
(xi) बाँस तथा लकड़ी की घरेलू उपयोग की वस्तुएँ बनाना,
(xii) ईट और खपरैल बनाना।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. वन्य जातीय अर्थव्यवस्था के अंतर्गत जनजातीय जीवन यापन के साधनों का वर्णन कीजिए।
2. जनजातीय व्यवसाय की विशेषताएँ लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. वन्य जातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
2. जीवन यापन के साधनों की विशेषताएँ लिखिए।
3. जनजातीय व्यवसाय पर टिप्पणी लिखिए।
4. जनजातीय का आर्थिक वितरण स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. वन्य जातियों की अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ -
   (अ) कृषि की प्रधानता (ब) प्रकृति पर आधारित
   (स) सामूहिकता (द) उपरोक्त सभी
2. आधुनिक आर्थिक व्यवस्थाएँ -------- हैं-
   (अ) पूँजीवाद (ब) समाजवाद (स) साम्यवाद **(द) अ + ब + स**
3. जीवन यापन के सभी साधनों के लिए जनजातीय जनजातियाँ -------- पर आश्रित होती है-
   (अ) भौगोलिक पर्यावरण (ब) सरकार
   (स) वनों पर (द) इनमें से कोई नहीं
4. जनजातियों के प्रमुख व्यवसाय ------- हैं-
   (अ) शिकार करना (ब) पशुपालन (स) वनोत्पादन (द) उपरोक्त सभी

उत्तर - 1. (द), 2. (द), 3. (अ), 4. (द)।



10

जनजातीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप

(NATURE OF TRIBAL ECONOMY)

मानव को अपना विकास करने के लिए आर्थिक गतिविधियों का ध्यान रखना जरूरी है, बिना वित्त के कोई भी संस्कृति जीवित नहीं रह सकती। विभिन्न विद्वानों ने जनजातीय अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण किया है जिसका अध्ययन हम कर चुके हैं।

जनजातीय वर्गीकरण और अर्थव्यवस्था को विस्तृत रूप से समझने के लिए निम्न बिन्दु पर ध्यान देना जरूरी है।

शिकार एवं खाद्य संग्रहण

भारतीय जनजातियों की आजीविका का प्रमुख साधन वन्य पशुओं का शिकार, वनों से जड़ी-बूटी, कंद-मूल, फल, फूल इत्यादि खाद्य-सामग्रियों का संग्रहण एवं मछली पकड़ना है। पशु-पक्षियों के शिकार में इन जनजातियों के सदस्य निपुण होते हैं। अपने सरल और अपरिष्कृत उपकरणों यथा- जाल, छुरी, भाला, तीर, परशु, बाँस की टोकनी की सहायता से शिकार पकड़ते है। मणिपुर के हमार ज़नजाति के सदस्य गड्ढे द्वारा शिकार विशेषतः हाथी को गिराने की विधि काम में लाते हैं। इसके अतिरिक्त जनजातीय लोग अनेक प्रकार के फंदों को लगाने में कुशल होते हैं। इनके फंदों से किसी प्रकार के जानवर का बचकर निकल जाना असंभव है।

जनजातियों के लोग छोटे पशुओं का आखेट करते हैं। पश्चिम बंगाल की कुछ जनजातियाँ साँप पकड़ती हैं तो बिहार के बिरहोर पशुओं का आखेट करते हैं तथा कृषि के साथ-साथ रस्सी से टोकरी भी बनाते हैं। आखेट सामूहिक एवं व्यक्तिगत दोनों प्रकार से किया जाता है। सामूहिक आखेट में विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों एवं प्रथाओं का पालन किया जाता है। इसमें आखेट की पूर्व रात्रि में समुदाय के लोग उपकरणों को एकत्र करते हैं तथा औजारों एवं फंदों का पूजन करते हैं।

मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ की एक विशिष्ट जनजाति तो सिर्फ आखेट का ही कार्य करती है। इस जनजाति को "आखेटक पारधी" कहते हैं। पारधी बन्दूकों द्वारा आखेट को गलत कार्य मानते हैं और इसके बदले जाल का उपयोग कर अपना शिकार पकड़ते हैं।

(1) **पालतू चीते द्वारा आखेट**- कुछ समय पहले तक ये पारधी चीता पकड़ कर उसे पालतू बनाकर प्रशिक्षित करते थे तथा वही चीता उनके लिए शिकार पकड़ कर लाता था। किन्तु अब चीतों की कमी के कारण यह कार्य समाप्त हो गया है।

(2) **मगर का आखेट**- मगर का आखेट करने वाला यह वर्ग पौष, माघ एवं चैत्र माह में जब मगर काफी चर्बीयुक्त हो जाता है, उसका आखेट करता था। मगर पकड़ने के लिए एक बड़े फाँस में माँस बाँधकर 70-80 फिट लम्बी रस्सी के सहारे चारे के रूप में नदी में छोड़ा जाता है। जैसे ही मगर चारे को निगलता है वैसे ही फंस जाता है। फिर बीस-तीस आदमी मिलकर रस्सी के सहारे उसे किनारे खींच लेते हैं।

(3) **बाज द्वारा चिड़ियों का आखेट**- बाज द्वारा चिड़ियों का आखेट पारधियों की अपनी विशिष्टता थी। बाज जल मुगार्बियों को डराकर ऊपर नहीं उड़ने देता और नीचे से शोर मचाकर मुर्गाबियों को उड़ा दिया जाता है। जब वे उड़कर भागने का प्रयास करती हैं तो वे पकड़ लिये जाते हैं।

(4) फाँस पारधियों ने विभिन्न प्रकार के फंदों का विकास किया था और उसकी मदद से इनके द्वारा जंगली मुर्गी, छोटे जानवरों का शिकार किया जाता था।

(5) **पालतू सांभरों का प्रयोग-** जंगली सांभरों को पकड़ने के लिए पालतू सांभरों का प्रयोग किया जाता था। दर्जन भर पालतू सांभर जंगलों में छोड़ दिये जाते हैं और पारधी छुपकर इनका पीछा करते हैं। जंगली सांभर के झुण्ड के नर पशु इन सांभरों को देखते ही धीरे-धीरे आगे बढ़कर इनसे भिड़ जाते थे। इसी समय छिपे पारधी जंगली सांभरों को पकड़ लेते थे।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत की विभिन्न जनजातियाँ आखेटन द्वारा जीविकोपार्जन करते थे। शिकार पर प्रतिबंध लगने से आखेटन पर निर्भर इन जनजातियों के समक्ष समस्या उत्पन्न हो गयी है। वर्तमान में ये लोग वनोपज संग्रह कर अपना जीविकोपार्जन करते हैं। वनोपज संग्रहण में तेंदू, लाख, शहर, हर्रा, आँवला, महुआ, सालबीज आदि प्रमुख हैं।

पशुपालन

जनजातियों के लोग अभी भी पशुपालन को ही आजीविका का मुख्य साधन मानते हैं। इसमें सर्वप्रमुख तमिलनाडू के टोडा हैं, जो दुग्ध उत्पादन पर आश्रित हैं। मध्य भारत के किसान एवं नगेशिया भी पशुपालकों में ही आते हैं। भरवार्द, मालाधारी, रबारी आदि गुजरात में जानवरों को पालकर अपनी आजीविका चलाते हैं। दक्षिण भारत के गोला परंपरागत रूप से भेड़पालक हैं। मध्यप्रदेश के बंजारा भी मवेशीपालक हैं। चौपान नामक जनजाति लद्दाख, लेह तथा काश्मीर की घाटियों में निवास करती हैं। इन्हें चरवाहों को एक वर्ग के रूप में जाता है। इनके निजी मवेशी नहीं होते हैं। ये दूसरों के मवेशियों की देखभाल करते हैं। इस तरह विभिन्न पशुपालक जनजातियाँ अपना जीविकोपार्जन करती हैं।

कृषि

जनजातियों में जीवन-यापन के साधनों में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका कारण यह है कि आज अधिकांश जनजातियाँ कृषि या कृषि से सम्बन्धित कार्यों का सम्पादन करती हैं। उपर्युक्त दो साधन संकलन और आखेट-विलुप्त होने की अवस्था में हैं। इसका कारण यह है कि आखेट पर प्रतिबन्ध लग गया है और ऐसा करना दण्डनीय अपराधों की श्रेणी में आ गया है। साथ ही अनेक कानूनों के कारण जंगलों के दोहन पर भी प्रतिबन्ध है। साथ ही जंगलों की मात्रा धीरे-धीरे कम होती जा रही है। इस दृष्टिकोण से जनजातियों में कृषि जीवन- यापन का महत्वपूर्ण साधन है। कृषि को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(a) स्थानान्तरित कृषि, और (b) व्यवस्थित कृषि।

इन दोनों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है —

(A) **स्थानान्तरित कृषि** (Shifting Cultivation) — भारत की जनजातियों में एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर कृषि कार्य करने की पद्धति अत्यन्त ही प्राचीन है। यह पद्धति प्राय: पहाड़ों और घने जंगलों में निवास करने वाली जनजातियों में प्रचलन में है। भारत सरकार के कृषि मंत्रालय द्वारा निगरानी समिति ने अनुमान लगाया है कि 9.95 लाख हैक्टेयर भूमि पर आदिवासी अदल- बदल कर कृषि कार्य करते थे। देश के 16 राज्यों के 62 जिलों के 223 विकासखण्डों में इस पद्धति को कृषि कार्य के लिए जनजातियों द्वारा अपनायी जाती थी। एक अनुमान के अनुसार 12 प्रतिशत आदिवासी आबादी इस पद्धति से कृषि कार्य का सम्पादन करती थी। 1955 में प्रकाशित अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयुक्त भारत सरकार के प्रतिवेदन के अनुसार स्थानान्तरित कृषि जिन राज्यों में की जाती है, उनके नाम इस प्रकार हैं —

(a) असम, (b) आन्ध्रप्रदेश, (c) बिहार,
(d) मध्यप्रदेश, (e) उड़ीसा, (f) मणिपुर,
(g) त्रिपुरा, तथा (h) मध्यप्रदेश

स्थानांतरित कृषि, खेती का प्राचीन तरीका है जिसे 'झूम' के नाम से भी जाना जाता है। उदाहरण के लिए मणिपुर की जनजातियों द्वारा अपनाये गये ढंग का वर्णन कर देने से इसके विभिन्न चरणों को समझने में मदद मिलेगी।

1. वन के किसी हिस्से का कृषि हेतु चयन
2. वृक्षों एवं पौधों को काटना तथा सुखाना
3. लकड़ियों एवं झाड़ियों में आग लगाना
4. राख को फैलाना, जमीन तैयार करना
5. पौधे की देखभाल
6. फसल काटना तथा इकट्ठा करना
7. आनन्दोत्सव
8. भूखंड को परती छोड़ आगे बढ़ जाना।

स्थानान्तरित कृषि की विशेषताएँ

(1) सामान्यतः जनजातियाँ दुर्गम क्षेत्रों में निवास करती हैं, जहाँ संचार एवं यातायात की कमी से कृषि संबंध उन्नति नहीं हो पायी। परिणामस्वरूप अधिकांश जनजातियाँ इसी परम्परागत कृषि व्यवस्था को अपनाये रहीं।

(2) स्थानान्तरित कृषि में किसान के पास बहुत थोड़ी भूमि रहती है। इतनी सीमित भूमि में सिर्फ जीवन यापन ही हो पाता है। विशेषज्ञों के अनुसार स्थानान्तरित कृषि की उपज इतनी कम है कि अत्यन्त दयनीय स्थायी कृषि की तुलना में भी यह उसके आठवें भाग के बराबर लोगों को ही भोजन दे सकती है।

(3) स्थानान्तरित कृषि की तुलना में पशुपालन उतने ही क्षेत्र में दुगुनी संख्या में आदमियों को भोजन दे सकता है। इस कृषि में अत्यल्प उत्पादन के लिए के लिए भी अत्यधिक मानव शक्ति की आवश्यकता होती है।

(4) उचित भूमि का चयन इस कृषि में सबसे महत्वपूर्ण है। पठारी भागों में साधारणतः 10° से 15° तक का ढाल अपेक्षित माना जाता है। इससे अधिक ढाल में पानी बह जाने की संभावना बढ़ जाती है। मानव शक्ति की बड़ी संख्या इसी कृषि को समर्पित हो जाती है। यहां कारण है कि जनजातीय परिवारों के सभी लोग इसमें संलग्न पाये जाते हैं।

(5) स्थानान्तरित कृषि को विशेषज्ञों ने अक्षम, अलाभकर और अपव्ययी बताया है। इससे वनों के नष्ट होने की आशंका एवं वातावरण में प्रदूषण की आशंका भी रहती है।

(6) स्थानान्तरित कृषि में सरल उपकरणों जैसे- खनती, हो, हँसिया, दांव, कुल्हाड़ा, खुरपी इत्यादि का प्रयोग होता है।

मध्यप्रदेश में 1967 तक स्थानान्तरित कृषि का प्रचलन था और इस पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था। 1967 में सरकार ने इस प्रकार की कृषि पर प्रतिबन्ध लगाया तथा आदेश जारी किया कि राज्य

सरकार की अनुमति से ही इस प्रकार की खेती की जा सकती है, इस प्रकार की कृषि को समाप्त करने के लिए सरकार ने अनेक योजनाओं को हाथ में लिया है। संक्षेप में स्थानान्तरित कृषि भी जीवन-यापन का एक साधन था।

(B) **व्यवस्थित कृषि** (Systematic Cultivation) — जनजातियों के जीवन- यापन के साधनों में व्यवस्थित कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। यह कृषि उसी प्रकार की है, जिस प्रकार अन्य सभ्य समाजों में प्रचलित है यह कृषि हल-बैलों की सहायता से की जाती है। 1991 की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार 68 प्रतिशत जनजातियाँ व्यवस्थित कृषि के माध्यम से अपना जीवन- यापन करती थी। साथ ही 20 प्रतिशत भूमिहीन कृषि श्रमिक थे। जनजातियों द्वारा आज भी कृषि पुराने तरीके से ही की जाती है और इसी कारण जनजातियों के जीवन-यापन के लिए पर्याप्त उपज नहीं होती है। यद्यपि उन्नत कृषि प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए अनेक प्रकार की सहायता और अनुदान की व्यवस्था शासन की ओर से की गई है, किन्तु जनजातियों को इन योजनाओं का पूरा लाभ प्राप्त नहीं हो पा रहा है। सरकार मिट्टी परीक्षण में भी किसानों को मदद कर रही है, उन्नत किस्म के बीज और रासायनिक खाद उपलब्ध करा रही है, सिंचाई के लिए पम्प आदि खरीदने पर अनुदान और सब्सिडी प्रदान कर रही है, बागवानी को प्रोत्साहित करने के लिए अनुदान दे रही है। इन सभी सरकारी प्रयासों के कारण अब स्थिति बदल रही है।

स्थायी कृषि- सर्वाधिक प्रचलित इस कृषि प्रणाली को मैदानी कृषि भी कहते है। भारत में मैदानी क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों में इस प्रकार की कृषि का प्रचलन है। कृषि के सभी कार्य एक ही खेत में किये जाते हैं। इस प्रकार की खेती प्रकृति एवं अस्तित्व के सामान्य नियमों पर आधारित है। यह एक प्रकार से जनजातीय जीवन को स्थायित्व प्रदान करती है। ज्यादातर जनजातीय समाजों ने इसे अपनाया है। स्थायी कृषि स्थानान्तरित कृषि एवं आखेटन से ज्यादा उचित समझी जाती है। इसमें विभिन्न प्रकार की फसलों जैसे-धान, दाल, इत्यादि की पूर्ति के साथ-साथ मिट्टी के स्वास्थ्य का भी संरक्षण होता है। निचली जमीनों में धान की फसल ली जाती है तथा थोड़ी ऊँची जमीन में दाल, मक्का, बाजरा इत्यादि बोया जाता है।

परंपरागत रूप से इस कृषि कार्य हेतु जनजातीय क्षेत्रों में एक फाल युक्त हल, हंसुआ, कुदाल, खुरपी, खुनती, सब्बल तथा अन्य का प्रयोग किया जाता है। गोबर से बने खाद का प्रयोग किया जाता है। अधिकतर जनजातीय आबादी कृषि कार्य के लिये अभी भी सिंचाई कार्य हेतु वर्षा पर ही निर्भर रहती हैं। कृषि संबंधी उपकरणों का निर्माण स्थानीय लौहार करते हैं।

वनोपज एवं हाट बाजार

जनजातीय लोग प्राचीन काल से जंगलों को अपनी सम्पत्ति का प्रमुख अंग मानते हैं। भीलों का जीवन वनों पर ही निर्भर था। अट्ठारहवी शताब्दी में दक्षिणी राजस्थान में क्रमशः मेवाड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा रियासतों में घने वन थे। इन क्षेत्रों में पाए जाने वाले प्रमुख पेड़ों में पीपल, सागवान, आम, मुमटा, सालर, वानोटीया, बबूल, बेर, चन्दन, धोक, धामन, धावड़ा, गुदी, जल्दू, इमली, जामुन, कजरी, खेजड़ी, खेड़ा, कुमटा, महुआ, नीम, गुलर, बाँस आदि वृक्षों के जंगल थे। जनजातीय लोग इन जंगलों से प्राप्त वनोपज का उपयोग करते हैं तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

जड़ी-बूटियाँ : जनजातीय लोग विभिन्न तरह के रोगों के निवारण के लिए जड़ी बूटियों का उपयोग करते हैं जिनमें प्रमुख- आँवला, नीम, हेतड़ी आमेदा, कनकी बीज, मेंण, अमरा, कोली, कादा, आक, अकौआ, करनीया, ब्राह्मी, बहेड़ा भोग पत्तियाँ, धतुरा, पड़ूला, गीगचा इत्यादि हैं। अरण्डी, अजवायन, ग्वार व सैंजने की फली, तुलसी, लौंग, सोठ, पीपल, काली मिर्च तथा अनेक जड़ी-बूटियाँ जंगलों से ही प्राप्त होती हैं।

व्यापार के रूप में उपयोग- जनजातीय लोग अपनी दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं को खरीदने के लिए तेंदु पत्ते का संग्रह करके बीड़ी बनाते हैं तथा गोंद रबड़ को अपने आस-पास के गाँवों कस्बों में बेचते हैं। रस्सी बनाने के लिए रेशे सियाली के पेड़ों की लता से प्राप्त होते हैं मुख्य रूप से खेर जैसने,

धावड़े उदलरे आदि का गोंद जंगलों में मिलता है। भील महिलायें घास एवं विभिन्न तरह की लघु वन सम्पत्ति को एकत्रित कर निकट कस्बों में बेचने जाती है। बाँस की लकड़ी छीलकर ये टोकरियाँ बनाने, सूप, झाड़ू, कोठियां, पंखे सीढ़ियाँ बनाकर बेचते थे। भील इन सभी वस्तुओं की बिक्री स्थानीय हाटों एवं मेलों के माध्यम से भी करते हैं।

वनों की लकड़ी का उपयोग- सांटेडा, काकुन, बबुल, बाबरिया, गुजर, बैर, धोंक की लकड़ी का उपयोग मुख्य रूप से ईंधन के लिए किया जाता है। अपने हथियार तीर-कमान बनाने के लिए सादेड़ा तथा बाँस लकड़ी का उपयोग किया जाता है। कृषि कार्य में धामन, वावरिया, धावड़ा, नीम सागवान बैर, बबूल, रेतुआ का उपयोग हल हमाड़ी, जोहरा बनाने के लिए किया जाता है। पशुओं का चारा कलम, जंगम, सालर वोपारिया, गुलर मौखा, नरम दाल, मीठी छाल, दूब, वनफल आदि वनों से प्राप्त होता है। घर बनाने के लिए जनजातियाँ शीशम आदि की लकड़ी का उपयोग करते हैं। वनों में जनजातियों को नदियों एवं झरनों का स्वच्छ जल, पशु-पक्षियों का कोलाहल, हरियाली, आर्द्रता, समय पर वर्षा, मिट्टी कटाव से रोक, आंधी एवं तूफानों से रक्षा, प्राकृतिक खाद, वन्य प्राणियों का शिकार व मनोरंजन इत्यादि उपलब्ध होते थे। इसलिए जनजाति की संस्कृति में प्रकृति का हमेशा घनिष्ठ सामंजस्य रहा है।

मेले एवं हाट बाजार- भारत के गाँवों में लगने वाले स्थानीय बाजार को हाट बाजार कहा जाता है। भारत में हाट बाजार की बहुत पुरानी व्यवस्था है जो वर्तमान में भी उसके मूल स्वरूप में दिखाई देती है। लगभग सभी कस्बों/शहरों में हाट-बाजार सप्ताह के दिनों के अनुसार अलग-अलग स्थानों पर लगते हैं। हाट-बाजार स्थानीय व्यवसाय और व्यापार को बढ़ाने का सर्वोत्तम उपाय है। इससे उस क्षेत्रों के लोगों का आर्थिक विकास भी होता है तथा स्थानीय अर्थतंत्र को मजबूती मिलती है। मध्यप्रदेश समेत सम्पूर्ण भारत के विभिन्न जनजातीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भी हाट-बाजार की परम्परा रही है। हाट-बाजार में दैनिक उपयोग से लेकर खाने पीने की वस्तुओं तक सभी वस्तुयें उपलब्ध रहती है। मध्यप्रदेश में लगभग 1400 स्थानों पर मेले लगते हैं। सर्वाधिक 227 मेले उज्जैन जिले में लगते हैं। उज्जैन के पास घोंसला में प्रति रविवार पशु मेला और हाट लगता है। जिसमें उज्जैन संभाग के अनेक क्षेत्रों से लोग आते हैं और अपनी आवश्यकता के अनुसार पशुओं की खरीदी-बिक्री करते हैं। उज्जैन में लगने वाला कार्तिक का मेला भी एक अनुपम उदाहरण है। मध्यप्रदेश के झाबुआ क्षेत्र में भी जनजातीय हाट-बाजार और मेले की परम्परा है। झाबुआ का भगोरिया मेला विश्व विख्यात है। कुछ अन्य प्रसिद्ध मेले हैं - ग्वालियर मेला, शिवपुरी का पीर बुधन मेला, मुरैना में नागाजी का मेला, चंदेरी में जागेश्वरी मेला, अमरकंटक और पंचमढी में शिवरात्रि मेला इत्यादि।

इसी प्रकार महाराष्ट्र के गोंदिया जिले में लगने वाला कछारगढ़ का तीन दिवसीय मेला भी प्रख्यात है। विभिन्न समय पर लगने वाले हस्तशिल्प मेले भी जनजातीय समाज से संबंधित रहते हैं। उज्जैन में कालिदास अकादमी में लगने वाला हस्तशिल्प मेला भी प्रसिद्ध है। जनजातीय एवं ग्रामीण वर्गों द्वारा बनाई गयी वस्तुओं की खरीदी के लिए शहरों से लोग उन मेलों में जाते हैं। समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर लगने वाले हाट बाजार और मेलों के द्वारा क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को बल मिलता है। भारत को आत्मनिर्भर बनाने और स्थानीय वस्तुओं के प्रयोग को बढ़ावा देने में मेले और हाट-बाजार महत्वपूर्ण योगदान देते हैं जिससे भारत के जनजातीय और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की आर्थिक उन्नति होती है।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जनजातीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. कृषि एवं हाट-बाजार का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. शिकार एवं खाद्य संग्रहण पर टिप्पणी लिखिए।
2. पशुपालन पर विचार व्यक्त कीजिए।
3. वनोपज का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. भारत की जनजातियों में अर्थव्यवस्था डी.एन. मजूमदार ने ------ भागों में विभाजित किया है-
   (अ) तीन (ब) पाँच (स) दस (द) एक
2. आदिवासियों में ------- वस्तुओं का उपयोग वनोपज के रूप में होता है-
   (अ) जड़ी-बूटियों (ब) ईंधन (स) व्यापार (द) पैसा
3. मध्यप्रदेश के -------- क्षेत्र में जनजातीय हाट-बाजार और मेले की परंपरा है-
   (अ) भोपाल (ब) झाबुआ (स) देवास (द) इंदौर

उत्तर - 1. (अ), 2. (अ), 3. (ब)।



11

जनजातीय अर्थव्यवस्था में परिवर्तन एवं उत्तरदायी कारक

(CHANGES IN TRIBAL ECONOMY & RESPONSIBLE FACTOR)

प्राचीनकाल में जनजातियाँ वनोत्पाद एवं शिकार पर ही जीवन-यापन करते थे, किन्तु कालान्तर में इनके जीवन-यापन के साधन, आर्थिक स्त्रोत एवं तरीके में परिवर्तन आये, पिछले वर्षों में ये परिवर्तन ज्यादा हुए हैं। नेतरहाट पठार के लोग अपने लौह संबंधी मूल काम को छोड़कर स्थानान्तरित कृषि करने लगे हैं। इसी प्रकार वीरलिया वनोत्पादन एवं शिकार पर आश्रित था अब कृषि कार्य करता है। कोरबा जो पहले वनोत्पाद संग्रह करता, अब कृषि श्रमिक बन गया है। खानाबदोश बिरहोर स्थायी निवास करने लगा है। इसी प्रकार राजमहल पहाड़ी के माले एवं माल पहाड़ियाँ झूम कृषि छोड़ स्थायी कृषि करने लगे हैं। जनजातियों की अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तन का एल.पी. विद्यार्थी (1969) ने निम्नलिखित कारण बताया है। 1. शिक्षा, 2. जनजातीय एवं शहरी बाजार से सम्पर्क 3. सहकारिता आंदोलन, 4. व्यावसायिक बैंक, 5. श्रमिक संघ, 6. लैंड मोर्टगेज एक्ट के संबंध में जानकारी, 7. बचत की अवधारणा, 8. जनजातियों में व्यावसायिक मानसिकता में वृद्धि, 9. कृषि में, खाद्यान्न से नक्द फसल की खेती की ओर परिवर्तन, 10. लघु वनोत्पाद की खुली बिक्री एवं नक्द मुद्रा की प्राप्ति आदि।

जनजातीय अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी महत्वपूर्ण कारक

1. औद्योगीकरण : औद्योगीकरण ने गाँवों और नगरों के जनजीवन की अत्यधिक प्रभावित किया है। नौकरियों और अन्य अवसरों के लिए औद्योगिक क्षेत्रों की ओर प्रवास का आदिवासी अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जनजातीय क्षेत्रों से औद्योगिक क्षेत्रों की ओर लोगों का बड़े पैमाने पर पलायन हो रहा है।

2. शहरीकरण और आधुनिकीकरण : बेहतर जीवन शैली के लिए जनजातीय लोगो का शहरी क्षेत्रों की ओर जाना आदिवासी अर्थव्यवस्था में बदलाव का एक और महत्वपूर्ण कारण है। वे शहरी केन्द्रों में रहने के आधुनिक तरीकों से आकर्षित होते हैं। परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक संरचना तीव्र गति से विघटित हो रही है।

3. शिक्षा की आवश्यकता : शिक्षा ने आबादी के लगभग हर वर्ग के लिए संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं। शिक्षा का स्तर जितना ऊँचा होगा लोगों की गतिशीलता भी उतनी ही अधिक होगी। कई शिक्षित आदिवासी उद्योगों और संगठनों में पेशेवर कार्यकारी अधिकारी और अन्य कुशल मजदूरों के रूप में काम कर रहे हैं। उन्होंने अपना पारंपरिक व्यवसाय छोड़ दिया है।

4. विस्थापन : सड़कों, बांधों के निर्माण तथा नगरीकरण और उद्योगों की स्थापना जैसे विकास कार्यों के लिए आदिवासियों के विस्थापन ने जीवन और अर्थव्यवस्था को बहुत प्रभावित किया है।

5. सरकारी प्रतिबंध- जनजातीय अर्थव्यवस्था काफी हद तक स्थानांतरित खेती और वन संसाधनों के उपयोग पर निर्भर रही है। पर्यावरण असंतुलन के कारण सरकार की ओर से लगाए गए प्रतिबंध ने उनकी पारंपरिक अर्थव्यवस्था पर रोक लगा दी है। नतीजतन कई आदिवासी अपने मूल निवास से दूर जाने और औद्योगिक श्रम को अपने व्यवसाय के रूप में अपनाने के लिए मजबूर हो गए हैं।

6. भूमि संक्रमण : जनजातियों का निवास स्थल वन रहा है। अपनी आजीविका के लिये वे वनोपज संग्रहण तथा शिकार करते रहे हैं। आस-पास की खाली भूमि पर खेती भी की जाती रही है। लेकिन समय-

समय पर सरकार तथा बाहरी लोगों द्वारा जनजातियों की भूमि को अधिग्रहण का प्रयास किया गया है। ब्रिटिश शासकों द्वारा रेलवे तथा सड़क के नाम पर आदिवासियों की जमीन ली गई। स्टेशन, पुलिस, बाजार, कचहरी, स्कूल, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय के निर्माण आदि के लिए उनकी जमीन का अधिग्रहण हुआ। खनिज संपदा से संपन्न जनजातीय क्षेत्रों में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कल कारखाने तथा उद्योगों की स्थापना की गई। उद्योगों के प्रबंधन तथा उत्पादन में लगे श्रमिकों को आवासीय सुविधा प्रदान करने, विद्युत आपूर्ति करने, जल आपूर्ति करने आदि हेतु जनजातियों की जमीन का वृहत पैमाने पर अधिग्रहण किया गया। इससे उनकी अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई।

7. स्थानान्तरित कृषि : इस प्रकार की कृषि भारत के विभिन्न भागों में अभी भी प्रचलित है। इसे झूम कृषि भी कहा जाता है। यह प्रथा अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, असम, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड तथा त्रिपुरा में प्रचलित है तथा बिहार, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, केरल तथा सिक्किम में भी आंशिक रूप से प्रचलित है। झूम-कृषि एक पुरातन प्रथा एवं गैर-लाभकारी प्रक्रिया है। यह यथोचित जीवन स्तर को बनाए रखने में भी अक्षम है। इस प्रथा के कारण जंगल के क्षेत्रफल में कमी हो रही, जैव विविधता को नुकसान पहुँचता है, भू-क्षरण की समस्या उत्पन्न होती है।

8. ऋण ग्रस्तता : भूमिहीनता एवं बेरोजगारी के कारण जनजातीय समुदाय के अधिकांश लोग ऋणग्रस्त हो जाते हैं तथा नियमित रूप से कार्य तथा मजदूरी उन्हें नहीं मिल पाती है। ये लोग सामान्यतः गैर उत्पादक उद्देश्यों जैसे- पर्व, त्यौहार, संस्कार, विवाह, भोज, मृत्युभोज आदि के लिए ऋण लेते हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सरकार द्वारा संस्थागत ऋण एवं साख-सुविधा उपलब्ध नहीं कराई जाती है अतः जनजातियों को ऋण के लिए गैर सरकारी स्त्रोतों पर निर्भर होना पड़ता है, जैसे मित्र, संबंधी, पड़ोसी, महाजन, साहूकार आदि।

9. बेरोजगारी : जनजातियों में बेरोजगारी की समस्या विकराल है। जंगलों की कटाई के कारण वनोपज संग्रहण,खाद्य संकलन नहीं हो पाता है। वर्तमान में जंगली जानवरों के शिकार पर भी प्रतिबंध लगा हुआ है। सरकारी मनरेगा योजना तथा कृषि कार्य में कुछ ही दिनों के लिए रोजगार उपलब्ध होता है। इस प्रकार साल में अधिकांश समय उन्हें बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। ये लोग कृषि कार्य के बाद विभिन्न स्थानों पर मजदूरी की खोज में भटकते हैं। सड़क, बाँध अथवा पुल निर्माण में कुली/मजदूर के रूप में काम करने के लिए अपना गाँव-घर छोड़कर बाहर जाते है।

10. वन नीति : सर्वप्रथम 1894 में नई वन नीति बनाई गई थी। वनों को राज्य के अधीन लाया गया। इसके माध्यम से वन संपदाओं पर जनजातियों के अधिकारों और उनकी सुविधाओं में कटौती की गई। 1952 में एक नई वन नीति बनाई गई जिसमें वन भूमि की स्थापना, कृषि औजार, संतुलित भू-प्रयोग प्रणाली का विकास, मृदाहरण की रोक तथा ईंधन के लिए लकड़ी संग्रह, चारागाह के लिए छोटे वन स्थलों का निर्माण इमारती लकड़ी की आपूर्ति तथा अधिकतम राजस्व की प्रप्ति पर विशेष ध्यान दिया गया। इस वन नीति में जनजातियों के अधिकारों को समाप्त कर दिया गया जैसे- निजी वनों को सरकार के अधीन लाना, खेती के लिए वन भूमि नहीं दिया जाना, वन ग्रामों की स्थापना, निःशुल्क बटाई की सुविधा वापस लेना, शिकार तथा स्थानान्तरित कृषि प्रथा को समाप्त करना। जनजातियों द्वारा 'वन बचाओ' आंदोलन भी चलाए गए हैं। 1966 की नई वननीति में वनों को बचाने के लिए स्थानीय लोगों तथा महिलाओं को शामिल किया गया है। गाँव के स्त्री-पुरुष तथा वन अधिकारी आपस में बैठकर वन विकास के संबंध में फैसला लेते हैं तथा उसे लागू करते हैं।

11. सिंचाई परियोजनाएँ : साधारणतया जनजातीय लोगों की जमीन की बनावट एक जैसी नहीं होती है। कहीं जमीन ऊँची होती है तो कहीं नीची होती है। इसी कारण जनजातियों को स्थायी कृषि कार्य में सिंचाई की समस्या का सामना करना पड़ता है। ऊँची जमीन पर पानी नहीं ठहरता है, जबकि नीची जमीन

पर पानी कुछ दिन तक ठहरता है। खेती और उपज वर्षा पर निर्भर होती है। अगर वर्षा कम होती है तब फसल तथा उपज भी अच्छी नहीं होती है। सिंचाई के साधन के रूप में जनजातियों के क्षेत्रों में कुछ परंपरागत तालाब हैं जिनका पानी सिंचाई के लिए प्रयोग में लाया जाता है। जनजातीय क्षेत्रों से होकर कई नदियां निकलती हैं जिन पर बाँध बनाकर बिजली का उत्पादन होता है। इस प्रकार की सिंचाई परियोजनाओं के कारण जनजातीय क्षेत्रों को डूब जाने तथा लाखों परिवारों को विस्थापित होने का भय रहता है। जनजातीय समुदायों को उनकी भूमि, मूल निवास से बेदखल हो जाना पड़ता है और वे विकास के लाभों से वंचित रह जाते हैं।

12. कम मजदूरी : कई बार जनजातीय लोगों को साहूकार, महाजन, मालिक, किसान आदि से कर्ज लेने के कारण उसके यहाँ अनुबंधित होना पड़ता है। उसे तय की गई न्यूनतम मजदूरी पर काम करना पड़ता है। सामाजिक और आर्थिक मजबूरी के कारण उसका शोषण तो होता ही है साथ ही वह कहीं और मजदूरी करने नहीं जा पाता है।

जनजातियों में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

स्वतंत्रता के पश्चात् संचार, आवागमन, औद्योगीकरण, शहरीकरण, शिक्षा और योजनाबद्ध कार्यक्रमों ने जनजातियों के जीवन में आमूल परिवर्तन किये हैं। जंगलों और पहाड़ों में रहने वाले ये समूह जो पहले सभ्यता के संपर्क से कटे हुये थे, अब संचार श्रृंखला में बँध जाने से आधुनिक समाज के निकट आ गये हैं।

भारतीय संविधान ने जनजातीय लोगों को विशेष दर्जा देने के लिए विभिन्न रक्षात्मक कानून बनाकर उनके हितों को सुरक्षित रखते हेतु प्रयास किये। राष्ट्रीय योजना आयोग ने विकास हेतु जनजातीय उप योजना पद्धति को अपनाया तथा पंचायती राज संस्था के अन्तर्गत अनेक अधिनियम, 1966 (पेसा) (पी.ई.एस.ए.) कानून बनाये। जनजातियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए किये गए इन सभी प्रयासों से अनुसूचित जनजातियों का जीवन-स्तरों में अब सुधार आया है। परन्तु अभी भी अनुसूचित जनजाति का मानव विकास सूचकांक (एच.डी.आई.) बाकी जनसंख्या की तुलना में बहुत कम है। साक्षरता दर में अंतर अधिक है। गरीबी रेखा के नीचे अन्य समुदायों की अपेक्षा अनुसूचित जनजातीय परिवार अधिक हैं। आरक्षण के प्रावधान के बावजूद सरकारी नौकरियों में उनका प्रतिशत उनकी जनसंख्या के अनुपात में नहीं है। इस प्रकार वे विकास के परिकल्पित स्तर तक नहीं पहुँच पाते हैं। सरकारी योजना के फलस्वरूप अब परिवर्तन आ रहा है और वे जागरुक हो रहे हें। आशा है निकट भविष्य में वे तेजी से बढ़ती अर्थ व्यवस्था द्वारा उपलब्ध कराये जा रहे अवसरों का लाभ उठा सकेंगे।

आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं का जनजातियों पर पड़ने वाला प्रभाव अन्य समूहों से भिन्न है। जनजातियों की सामाजिक संरचना गोत्र और बन्धुत्व पर आधारित है। उनकी परम्परायें, साहित्य, इतिहास और ऐतिहासिक शक्तियाँ अन्य समूहों से भिन्न हैं। वे एक पूर्ण समाज हैं। इस तथ्य में कोई सन्देह व्यक्त नहीं किया जा सकता कि परिवर्तन की इन शक्तियों ने जनजातियों की सामाजिक संरचना को एक नवीन स्वरूप दिया है, जो जनजातियों के लिये अपरम्परागत हैं।

अनुसूचित जनजातियों की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन

- औद्योगीकरण और शहरीकरण ने जनजातियों को उनके पारम्परिक प्राकृतिक संसाधन क्षेत्र से अलग कर उन्हें आजीविका के नए अवसरों की तलाश करने के लिए मजबूर किया है।
- जनजातियों की जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, निर्धनता और विस्थापन ने इन जनजातियों को शहरी बाजारों पर निर्भर बना दिया।
- आजीविका और नौकरियों की तलाश में कई जनजातियाँ शहरी क्षेत्रों में चली गईं। जहाँ, इन कमजोर जनजातियों को अनेक प्रकार के शोषण का सामना भी करना पड़ा।
- जो जनजातियाँ अपने मूल स्थानों पर रहना चाहती थीं, आजीविका के लिए अपने व्यवसायों में विविधता ला रही हैं।

- भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण की एक रिपोर्ट के अनुसार, आदिवासी क्षेत्रों में व्यापार और कृषि में आशातीत सफलता मिल रही है और अब उनका जीवन स्तर बढ़ रहा है।
- सरकारी और निजी सेवाओं में नियोजित अनुसूचित जनजातियों की संख्या में हाल ही में तेजी से वृद्धि हुई है।
- सरकारी प्रतिबंधों, पर्यावरण नियमों ने पारम्परिक जनजातीय व्यवसायों को कम कर दिया है। पशुपालन गतिविधियों, कृषि कार्यों में कमी आई है।

आर्थिक सशक्तिकरण हेतु सुझाव

1. अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए जनजातीय क्षेत्रों में कृषि आधारित प्रशिक्षण संस्थानों और सम्बंधित श्रम प्रधान प्रसंस्करण उद्योगों को स्थापित करना है।
2. आदिवासी किसानों को उपलब्ध भूमि का उपयोग करने हेतु उन्हें जैविक खेती और पर्यावरण-वानिकी करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए जो उत्पादकता को अनुकूलित करेगा। साथ ही कृषि एवं वन विभाग द्वारा सूक्ष्म जलसंभरों को यहाँ सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा सकती है ताकि उत्पादन का अनुकूलन किया जा सके।
3. विभिन्न छोटे-बड़े जल स्रोतों पर छोटे-छोटे बाँधों के निर्माण की आवश्यकता है क्योंकि बड़े बाँधों के माध्यम से जल संरक्षण जनजातियों का विस्थापन होता है।
4. जनजातीय लोगों के लिये बनाये गये कानूनों का सख्ती से लागू करना चाहिये।
5. अनुसूचित जनजातियों को पर्याप्त और त्वरित ऋण और विपणन सुविधाएँ प्रदान करने की आवश्यकता है।
6. केन्द्र एवं राज्य सरकार की सेवाओं में अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व कम है और कई विभागों में पद रिक्त हैं। इस प्रकार सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों के लिए नौकरियों के सम्बंध में एक पारदर्शी नीति का पालन करना चाहिए।
7. जनजातीय युवाओं के कौशल विकास में वृद्धि के लिए सरकार द्वारा उन्हें प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जनजातियों की आर्थिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के उत्तरदायी कारकों का वर्णन कीजिए।
2. जनजातियों में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. आदिवासियों की ऋणग्रस्तता की समस्या पर टिप्पणी लिखिए।
2. आदिवासियों में बेरोजगारी की समस्या पर टिप्पणी लिखिए।



12

73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम एवं वर्तमान जनजातीय राजनीतिक संगठन

(73rd CONSTITUTIONAL AMENDMENT ACT AND PRESENT TRIBAL POLITICAL ORGANIZATION)

73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम
(73rd Constitutional Amendment Act.)

आज हम 21वीं शताब्दी में पदार्पण कर चुके हैं। इसके बाद भी आज भारत को गांवों का देश कहा जाता है और निकट भविष्य में भी यही कहा जाएगा। 1947 में स्वातन्त्रयोत्तर भारत ने पंचायतों तथा जिला बोर्डों को ग्रामीण स्थानीय इकाइयों के उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किया। तीसरी ग्रामीण संस्था, स्थानीय बोर्ड थी जो कि मध्य स्तर पर थी, की स्थापना कई स्थानों पर की गयी, जिसे बाद में वर्तमान शताब्दी की द्वितीय तिमाही में विघटित कर दिया गया। परन्तु सबसे आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि यद्यपि स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता ग्रामीण स्वशासन अर्थात् 'ग्राम स्वराज्य' के प्रति अपना समर्थन व्यक्त करते रहे, जब इस समर्पण को कार्यरूप देने की बात आयी तो प्रारूप संविधान में पंचायतीराज संस्थाओं के बारे में कहीं भी कुछ उल्लेख नहीं किया गया। जब यह मामला संविधान सभा के सम्मुख विचारार्थ आया, तो प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने ऐसे विचारों की भर्त्सना की, जो पंचायतीराज को प्रस्तावित भारतीय संविधान का अंग बनाना चाहते थे। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, ऐसे विचार का समर्थन करने वाले सदस्य न तो संघ के और न ही राज्य सरकारों के पक्षधर हैं। उनके अनुसार, ऐसे सदस्य भारत में बड़ी संख्या में ग्रामीण सरकारों की स्थापना का सपना देख रहे हैं। ऐसी ग्रामीण सरकारें अथवा 'गणराज्य' पूर्व में भारत की सबसे बड़ी कमी रहे हैं। अतः उन्होंने इस बात पर संतोष व्यक्त किया कि प्रारूप संविधान में इन्हें सम्मिलित नहीं किया गया।

डॉ. अम्बेडकर के ऐसे विचार होते हुए भी संविधान सभा के अनेक सदस्य पंचायतीराज के सम्बन्ध में संविधान में किसी न किसी प्रावधान का उल्लेख करने के लिए दबाव डालते रहे, ताकि संविधान एवं बड़ी संख्या में गाँवों के मध्य खाई को पाटा जा सके तथा साथ ही ग्रामीण शासन पर महात्मा गाँधी के विचारों को आत्मसात किया जा सके। अन्त में, अत्यधिक दबाव के कारण, अम्बेडकर को संविधान में एक नये अनुच्छेद को सम्मिलित करने का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। यह प्रस्ताव, **जिसे 22 नवम्बर 1949 को के.संथानम द्वारा प्रस्तावित किया गया तथा जो प्रारूप संविधान का अनुच्छेद 31 ए बना, को संविधान सभा की निर्विरोध स्वीकृति प्राप्त हुई तथा अन्ततः इस प्रकार की स्वीकृति प्राप्त कर, भारत के संविधान का अनुच्छेद 40 बन गया।**

अनुच्छेद 40 (Article 40)

अनुच्छेद 40 राज्य (जिसके अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्य सरकारें, दोनों ही आती है) को आह्वान करता है कि वह **"ग्राम पंचायतों का गठन करे तथा उन्हें ऐसे अधिकार और सत्ता प्रदान करे, जोकि उनके द्वारा स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हों"** यद्यपि यह अनुच्छेद सुस्पष्ट है, तथापि इसका कोई महत्व नहीं है, क्योंकि यह राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्तों वाले अध्याय का अंग है, जोकि संविधान की योजना के अनुसार वादयोग्य नहीं है। परिणामस्वरूप, संघ सरकार द्वारा अनुच्छेद

40 में वर्णित संविधान की व्यवस्था को वास्तविक रूप देने के लिये कोई प्रयास नहीं किया गया। यह इसलिए भी हुआ क्योंकि संविधान की सातवीं अनुसूची ने, जिसे यदि अनुच्छेद 246 के साथ पढ़ा जाये, स्थानीय शासन को राज्य सूची में रख दिया था। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन को राज्य सूची में रखने के कारण संघ सरकार ने इस ओर महत्वपूर्ण कदम उठाने का कोई प्रयास नहीं किया। यही नहीं, राज्यों द्वारा भी इस संविधान को केवल नाममात्र का सम्मान दिया गया, और अपने इस संवैधानिक दायित्व के प्रति लापरवाही अधिक दिखायी गयी।

बलवन्तराय मेहता प्रतिवेदन (Note of Balwant Rai Mehta)

73वें संविधान संशोधन के पूर्व पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना और उसका विकास प्लान प्रोजेक्टों की समिति के प्रतिवेदनोपरान्त हुआ। इस समिति की नियुक्ति राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा की गयी। **इस समिति ने 1956 में वरिष्ठ सांसद बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल का गठन किया।** 1957 में इस दल के प्रतिवेदन ने, जिसे सामान्य रूप से बलवन्तराय मेहता समिति प्रतिवेदन कहा गया, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्राप्ति के लिए ग्राम से जनपद स्तर तथा इन दोनों के बीच मध्य स्तर पर त्रि-स्तरीय व्यवस्था की संस्तुति की। इसने इन संस्थाओं को अधिकार तथा उत्तरदायित्व वास्तविक रूप से स्थानान्तरित करने की तथा इन्हें समुचित स्रोत प्रदान करने की भी संस्तुति की। जनवरी 1958 में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने इस प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया, परन्तु यह राज्य सरकारों पर छोड़ दिया कि वे किस प्रकार और कहाँ तक इस को लागू कर सकेंगे।

मेहता समिति के प्रतिवेदन का अनुपालन करते हुए राजस्थान पहला राज्य था, जिसने **2 अक्टूबर, 1959 को पंचायती राज व्यवस्था अपनायी। स्वयं जवाहरलाल नेहरू ने राजस्थान जाकर इसका उद्घाटन किया।** इसके पश्चात् उसी वर्ष आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु ने इसे अपनाया। असम, मैसूर (अब कर्नाटक), उड़ीसा, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश ने 1960-61 में पंचायतीराज की स्थापना की। इसके पश्चात् महाराष्ट्र तथा गुजरात का क्रम आया और उसके बाद बिहार, मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल का। 1963 तक अधिकांश राज्यों में पंचायतीराज व्यवस्था अपनायी जा चुकी थी, परन्तु उनमें इस व्यवस्था को अपनाने की सीमा के बारे में अन्तर थे। इस प्रकार जहाँ अधिकांश राज्यों ने ग्राम, खण्ड तथा जनपद स्तर पर त्रि-स्तरीय व्यवस्था अपनायी, यद्यपि विभिन्न राज्यों में इनके नामों में भिन्नता थी, असम, जम्मू तथा कश्मीर, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा ने द्वि-स्तरीय व्यवस्था अपनायी तथा केरल ने मात्र एक-स्तरीय, अर्थात् ग्राम स्तर पर पंचायतीराज व्यवस्था। असम में मध्य स्तर को समाप्त कर दिया गया तथा उच्चतम स्तर, जिसे मोहकुमा परिषद कहा गया, जनपद स्तर पर नहीं, वरन् उस-खण्ड स्तर पर स्थापित किया गया। जम्मू तथा कश्मीर, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा ने केवल ग्राम तथा खण्ड स्तर की इकाइयों को अपनाया। इनमें जनपद स्तर की व्यवस्था नहीं की गयी। गुजरात, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र में मध्य स्तर ताल्लुक स्तर पर था। हरियाणा ने त्रि-स्तरीय प्रतिमान से आरम्भ किया, परन्तु बाद में जिला परिषदों को भंग कर दिया। पश्चिमी बंगाल में चार स्तर बनाये गये– जिला परिषद्, आंचलिक परिषद्, अंचल पंचायत तथा ग्राम पंचायत।

पंचायतीराज व्यवस्था की असफलता के कारण (Reasons for failure of Panchayati Raj)

पंचायतीराज व्यवस्था, जो कि पूरे उत्साह के साथ 60वें दशक के आरम्भ में शुरू की गयी, उसी दशक के अन्त तक, उसमें तेजी से गिरावट आने लगी, जिसके कुछ कारण निम्नवत् थे :

(1) राज्य सरकारें पंचायतीराज संस्थाओं की निर्धारित अवधि पर निर्वाचन नहीं कर रही थीं। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश में ग्राम पंचायतों के निर्वाचन 1955, 1961-62, 1972-73, 1982-83 तथा 1986-87 में हुए। उत्तर प्रदेश में स्थानीय संस्थाओं का कार्यकाल पाँच वर्ष था, अतः, इस अवधि की समाप्ति पर निर्वाचन हो जाने चाहिये थे, परन्तु अक्सर यह अवधि कहीं अधिक थी। इससे यह सिद्ध होता है कि पंचायतीराज निर्वाचनों को सम्पन्न कराने के बारे में राज्य सरकारें बहुत उत्साहित नहीं रहीं।

(2) पंचायतीराज संस्थाओं के पास सदैव धन की कमी रही। ऐसा इसलिए क्योंकि स्थानीय शासन की इन संस्थाओं के पास अपनी आय के स्रोत बहुत कम थे और इसलिए उनको अधिकतर अपनी राज्य सरकारों पर निर्भर रहना पड़ता था।

(3) अक्सर स्थानीय स्तर पर जाति अथवा आर्थिक प्रास्थिति आधारित शक्तिशाली गुटों ने इन संस्थाओं पर अपना कब्जा जमाकर इनका अपने स्वार्थ के लिए शोषण करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार, ग्राम प्रधान का पद, जो कि लम्बे समय से गाँव के किसी बुजुर्ग व्यक्ति को दिया जाता रहा था, जाति समीकरण बदलने के साथ उन लोगों के लिए प्रास्थिति का प्रतीक बन गया, जोकि गाँवों में सामाजिक सम्मान अथवा प्रास्थिति से वंचित थे। जवाहर रोजगार जैसी योजनाओं को ग्रामीण स्तर पर ले जाने से, जिनका धन ग्राम प्रधान को भेजा जाने लगा, स्थिति और खराब हो गयी। धन आने से निहित स्वार्थों का बोलबाला हो गया तथा गाँवों में गुटबाजी में अभिवृद्धि होने लगी।

(4) जहाँ निर्वाचन हो भी गये, वहाँ पंचायतीराज संस्थाओं को अक्सर झूठे आधारों पर अपना कार्यकाल समाप्त करने के पूर्व ही अधिक्रमित अथवा विघटित कर दिया गया। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि राज्य सरकारों के पास इन संस्थाओं को अपने नियन्त्रण में लेने अथवा विघटित करने की असीमित सत्ता थी और राज्य सरकारों ने अक्सर इस सत्ता का प्रयोग पूर्ण स्वेच्छा से किया। इसका सीधा परिणाम यह हुआ कि अधिकांश पंचायतीराज संस्थायें निलम्बित अवस्था में रहती थीं। जहाँ एक बार वे निलम्बित अथवा विघटित हो गयीं, तो निलम्बन की समाप्ति अथवा विघटन के बाद पुनर्निर्वाचन लम्बे समय तक नहीं हुए। इस स्थिति ने धीरे-धीरे खतरनाक मोड़ ले लिया।

उपरोक्त कारणों से गरीब और दुर्बल इन संस्थाओं से बाहर हो गये और परिणामस्वरूप, विकास प्रक्रिया में ग्राम स्तर की पहल में कमी आ गयी। दुर्बल वर्गों के इन संस्थाओं से बाहर रहने का एक कारण यह भी था कि उन्हें पंचायतीराज संस्थाओं में बहुत कम प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया।

अशोक मेहता समिति की संस्तुतियाँ

1977 में केन्द्र में जनता की सरकार बनने के पश्चात् सुप्रसिद्ध नेता, अशोक मेहता के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया गया, जिसका कार्य पंचायतीराज संस्थाओं की कार्यविधि की जाँच करना तथा उसे सुदृढ़ बनाने के लिए सुझाव देना था "ताकि विकेन्द्रित नियोजन एवम् विकास की व्यवस्था को प्रभावी बनाया जा सके"। इस समिति ने एक वर्ष बाद अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर निम्नलिखित प्रमुख संस्तुतियाँ कीं :— पंचायतीराज संस्थाओं को और अधिक अधिकार का हस्तान्तरण; राज्य द्वि-स्तरीय व्यवस्था अपना सकते हैं— एक जनपद स्तरीय जिला परिषद तथा एक मण्डल पंचायत, जिसका क्षेत्र विकास खण्ड से छोटा, लेकिन ग्राम पंचायत से बड़ा होगा; इन संस्थाओं का 4 वर्ष का कार्यकाल होना चाहिए; राजनीतिक दलों को स्थानीय निर्वाचनों में भाग लेने का अवसर दिया जाय; तथा राज्य सरकार दलीय आधार पर किसी पंचायतीराज संस्था को अधिक्रमित न करे, परन्तु यदि ऐसा करना आवश्यक हो जाय, तो 6 माह के अन्तर नये निर्वाचन सम्पन्न हो जायें। अशोक मेहता समिति की संस्तुतियों को आवश्यकतानुसार, महत्व न दिया जा सका। क्योंकि अचानक केन्द्र में जनता दल का शासन समाप्त हो गया और कांग्रेस (इ) द्वारा शासित राज्यों ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। परन्तु कुछ वर्षों के बाद कर्नाटक तथा आन्ध्रप्रदेश ने अपनी पंचायतीराज व्यवस्थाओं को काफी सीमा तक अशोक समिति के प्रतिवेदन से प्रभावित होकर पुनर्गठित किया।

पंचायतीराज संस्थाओं को नया जीवन दान (New Life to Panchayait Raj Organisations)— 1977 में पश्चिमी बंगाल में वामपंथी सरकार ने स्थानीय निर्वाचन कराकर पंचायतीराज संस्थाओं को एक नया जीवन दिया। ये निर्वाचन दलीय आधार पर लड़े गये। राज्य सरकार इन संस्थाओं को सुदृढ़ करने लगी। इस संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण कदम जिलाधिकारी को, अपने अन्य दायित्वों के अतिरिक्त, जिला परिषद का मुख्य कार्यकारी अधिकारी बनाना था। इस कदम से स्थानीय नौकरशाही तथा स्थानीय रूप से निर्वाचित पंचायतीराज संस्थायें एक दूसरे के साथ जुड़ गयी। स्थानीय नौकरशाही की इन संस्थाओं के प्रति जो विरोध

की भावना थी, वह जा चुकी थी। इसके अतिरिक्त जिला परिषद के अध्यक्ष को जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (डी.आर.डी.ए.) का भी अध्यक्ष बना दिया गया। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के नियोजन और क्रियान्वयन में पंचायतों को सक्रिय रूप से जोड़ दिया गया। इन सब के परिणामस्वरूप, पश्चिमी बंगाल में पंचायतीराज व्यवस्था बहुत प्रभावशाली हो गयी और लगभग एक दशक में अन्य राज्यों के अनुसरण करने के लिए उदाहरण बन गयी।

73वें संविधान संशोधन के अनुसार पंचायतीराज
(Panchayati Raj according to 73rd Constitutional amendment)—

(1) **संरचना–** संशोधन सभी राज्यों को यह बाध्य करता है कि वे अपने यहाँ पंचायतीराज की त्रि-स्तरीय व्यवस्था की स्थापना करें। ऐसा राज्य ग्राम, मध्य तथा जनपद स्तरों पर पंचायतों की व्यवस्था करके कर सकते हैं (अनु. 243ए)। जहाँ जनपद और ग्राम स्तर सुस्पष्ट हैं, मध्य स्तर की परिभाषा इस प्रकार की गयी है: "ग्राम और जनपद के मध्य स्तर, जो कि राज्य के राज्यपाल द्वारा जन सूचना के मध्य स्तर इंगित किया गया हो" (अनु. 243)। इस प्रकार, मध्य स्तर खण्ड हो सकता है, अथवा जनपद तथा ग्राम के बीच कोई भी अन्य स्तर।

संविधान संशोधन उन राज्यों के लिए अपवाद करता है, जिनकी जनसंख्या 20 लाख के ऊपर नहीं है। ऐसे राज्य, यदि वे उचित समझें, तो द्वि-स्तरीय व्यवस्था को अपना सकते हैं, परन्तु यदि वे ऐसा करते हैं, तो उन्हें केवल मध्य स्तर ही छोड़ना होगा। दूसरे शब्दों में, ग्राम तथा जनपद स्तर की इकाई को बनाये रखना आवश्यक है।

(2) **नामकरण** (Nomenclature)— जहाँ संशोधन अधिनियम पंचायत शब्द का प्रयोग करता है, वह विभिन्न स्तरों की पंचायत के नामों के बारे में बहुत कठोर नहीं है। केवल अनु. 243 में ग्राम सभा नाम का प्रयोग हुआ है, यह परिभाषित करने के लिए कि **''यह ऐसे व्यक्तियों की संख्या है, जो उस पंचायत क्षेत्र के अन्दर आने वाले गाँव की मतदाता सूची में पंजीकृत हों''**। तथापि इसकी कार्यकारिणी को कोई भी नाम दिया जा सकता है। वास्तव में कुछ राज्यों ने इसे ग्राम पंचायत कहा है और कुछ ने इसके अंग्रेजी नाम 'विलेज पंचायत' को अपनाया है। इसी प्रकार मध्य स्तरीय पंचायत को भी अलग-अलग नाम दिये गये हैं, जैसे मण्डल परिषद (आन्ध्र प्रदेश), आंचलिक पंचायत (असम), पंचायत समिति (बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान तथा पश्चिमी बंगाल), ताल्लुक पंचायत (गुजरात तथा कर्नाटक), ब्लाक पंचायत (केरल), **जनपद पंचायत (मध्यप्रदेश)**, पंचायत यूनियन काउंसिल (तमिलनाडु) तथा क्षेत्र पंचायत (उत्तर प्रदेश)। अन्त में, जनपद स्तर की पंचायतों को आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा, पंजाब, राज्य तथा पश्चिमी बंगाल में जिला परिषद, गुजरात, केरल तथा तमिलनाडु में डिस्ट्रिक्ट पंचायत तथा मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में जिला पंचायत कहा गया है।

(3) **गठन** (Constitution)— 73 वें संशोधन के अनुसार, पंचायतों में दो प्रकार के सदस्य होंगे: निर्वाचित तथा पदेन। पदेन सदस्यों को छोड़कर सभी अन्य सदस्य "पंचायत क्षेत्र क चुनाव क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन के द्वारा चुने जायेंगे और इसके लिए प्रत्येक पंचायत क्षेत्र को निर्वाचन-क्षेत्रों में इस प्रकार बाँट दिया जायेगा ताकि प्रत्येक चुनाव-क्षेत्र में जनसंख्या तथा स्थानों की संख्या के मध्य अनुपात, जहाँ तक सम्भव हो, पूरे पंचायत क्षेत्र में एक समान हो" [अनु. 243 सी की धारा (2)]।

पदेन सदस्यों के बारे में 73 वे संशोधन में यह व्यवस्था है कि राज्य विधान-मण्डल, विधि के द्वारा, निम्न के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था कर सकता है:

1. ग्राम स्तर पर पंचायतों के अध्यक्षों का मध्य स्तरीय पंचायतों में [अनु. 243 की धारा (2) (ए)]।
2. मध्य स्तर पर पंचायतों के अध्यक्षों का जनपद स्तरीय पंचायतों में [अनु. 243 की धारा (3) (बी)]।

3. लोक सभा एवं विधान सभा के सदस्य केवल ग्राम पंचायतों को छोड़कर उन पंचायतों में, जो कि पूर्ण अथवा आंशिक रूप से उनके चुनाव-क्षेत्र में आती हों [अनु. 243 सी की धारा (3) (सी)]।
4. राज्य सभा एवं विधान परिषद् के सदस्य मध्य तथा जनपद स्तर की उन पंचायतों में, जिनके क्षेत्रों में वे मतदाता के रूप में पंजीकृत हों। **[अनु. 243 सी की धारा (3) (डी)]।**

उपरोक्त से स्पष्ट है कि ग्राम स्तरीय पंचायतों में पदेन सदस्य नहीं होंगे। मध्य स्तरीय पंचायतों में उनके क्षेत्र में अवस्थित ग्राम पंचायत के अध्यक्ष होंगे तथा संसद तथा राज्य विधान-मण्डल के निम्न सदनों के वे सदस्य, जिनके चुनाव-क्षेत्रों में उस पंचायत क्षेत्र का पूर्ण अथवा आंशिक भाग आता हो तथा संसद तथा राज्य विधान-मण्डल के उच्च सदनों के ऐसे सदस्य, जो उस पंचायत क्षेत्र में मतदाता के रूप में पंजीकृत हों। इसी प्रकार, जनपद स्तर पंचायतों में मध्य स्तरीय पंचायतों के अध्यक्ष (अथवा द्विस्तरीय व्यवस्था में ग्राम स्तरीय पंचायतों के अध्यक्ष) तथा संसद तथा राज्य विधान-मण्डल के निम्न सदनों के ऐसे सदस्य, जिनके चुनाव-क्षेत्र पूर्ण अथवा आंशिक रूप से उस जनपद पंचायत क्षेत्र में आते हों तथा साथ ही संसद तथा राज्य विधान-मण्डल के उच्च सदनों के ऐसे सदस्य, जो कि उस जनपद पंचायत क्षेत्र में मतदाता के रूप में पंजीकृत हों।

स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष निर्वाचन की व्यवस्था (Arrangement of independent & impartial election)— 73वाँ संशोधन स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष मतदान के लिए राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना की व्यवस्था करता है (अनु. 243 के)। इस प्रकार के आयोग की स्थापना राज्य के राज्यपाल द्वारा की जायेगी। राज्य निर्वाचन आयोग के अधीक्षण, निर्देशन तथा नियन्त्रण में पंचायतों के चुनाव से सम्बंधित सभी मामले सम्बंधित राज्य के विधान-मण्डल द्वारा विधि पारित करके निर्धारित किये जाने की व्यवस्था है।

अधिकार (Right)— अब तक पंचायतीराज संस्थायें अपने अधिकारों के लिए, पूर्णतया सम्बंधित राज्यों पर निर्भर थीं। 73वाँ संशोधन पहली बार ग्रामीण स्थानीय शासन के लिए विषयों की एक पृथक् सूची प्रस्तुत करता है जिसको संविधान में 11वीं अनुसूची के रूप में रखा गया है तथा इस संदर्भ में यह कहा गया है कि "राज्य विधान मण्डल, विधि द्वारा पंचायतों को ऐसे अधिकार और सत्ता प्रदान कर सकता है, जो कि उनके लिए स्वशासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हो"। यह सत्ता निम्न के लिए दी जा सकती है,

1. आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय की योजनायें तैयार करना; तथा
2. आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय की योजनाओं को कार्यान्वित करना (अनु.243 जी)।

वे विषय, जिन पर पंचायतों को उपरोक्त अधिकार प्राप्त होंगे, संख्या में 29 हैं तथा उनका विवरण निम्न है—

1. कृषि, जिसके अन्तर्गत कृषि प्रसार सम्मिलित है।
2. भूमि सुधार तथा भूसंरक्षण।
3. लघु सिंचाई, जल व्यवस्थापन तथा जलसंभरण (watershed) विकास।
4. पशु पालन, डेरी-उद्योग तथा कुक्कुट पालन।
5. मत्स्य।
6. सामाजिक वानिकी तथा फार्म वानिकी।
7. लघु वन उत्पाद।
8. लघु उद्योग, जिसके अन्तर्गत खाद्य संसाधन उद्योग सम्मिलित हैं।
9. खादी, ग्रामीण तथा कुटीर उद्योग।

10. ग्रामीण आवास।
11. पेय जल।
12. ईंधन तथा चारा।
13. मार्ग, पुलिया, पुल, नौकाघाट, जलमार्ग तथा संचार के अन्य साधन।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण, जिसके अन्तर्गत विद्युत वितरण सम्मिलित है।
15. गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोत।
16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
17. शिक्षा, जिसमें प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा सम्मिलित है।
18. तकनीकी प्रशिक्षण तथा व्यवसायिक शिक्षा।
19. प्रौढ़ तथा अनौपचारिक शिक्षा।
20. पुस्तकालय।
21. सांस्कृतिक कार्यकलाप।
22. बाजार एवं मेले।
23. स्वास्थ्य तथा सफाई, जिसके अन्तर्गत अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा दवाखाने सम्मिलित हैं।
24. परिवार कल्याण।
25. महिला एवं शिशु विकास।
26. सामाजिक कल्याण, जिसके अन्तर्गत अपंग एवं मानसिक रूप से अविकसित का कल्याण सम्मिलित है।
27. दुर्बल वर्गों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों का कल्याण।
28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली।
29. सामुदायिक आस्तियों (assets) का अनुरक्षण।

विभिन्न स्तरों की पंचायतों, अर्थात्, ग्राम, मध्य तथा जनपद स्तर, में उपरोक्त अधिकारों का वितरण, राज्य विधान-मण्डल पर छोड़ दिया गया है, जो कि अपनी इच्छानुसार, किसी विषय अथवा उसके भाग को उचित स्तर की पंचायत को सौंप सकता है।

73वें संशोधन का मूल्यांकन (Evaluation of 73rd Amendment)— 73वाँ संशोधन हमारे देश में पंचायती राज व्यवस्था के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। प्रथम यह पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान करता है। अब तक भारतीय संविधान में, केवल ग्राम पंचायतों का उल्लेख था और वह भी राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्तों वाले अध्याय में, जों कि संविधान की व्यवस्था के अनुसार, बाध्यकारी नहीं हैं। इसके विपरीत, 73वें संशोधन के प्रावधानों की प्रकृति बाध्यकारी है। द्वितीय, यह पूरे देश में त्रि-स्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था का आदेश देकर समरूपता लाने का प्रयास करता है। इसका अपवाद केवल वे राज्य हैं, जिनकी जनसंख्या 20 लाख से अधिक नहीं है। ऐसे राज्य द्वि-स्तरीय व्यवस्था को अपना सकते हैं। तृतीय, 73वाँ संशोधन पंचायतीराज व्यवस्था में लोकतन्त्र की सीमा में वृद्धि करता है, यह व्यवस्था करके कि सभी स्तरों पर प्रतिनिधि वयस्क मताधिकार के आधार पर सीधे जनता द्वारा निर्वाचित होंगे। चतुर्थ, यह संशोधन राज्य स्तर पर निर्वाचन आयोग के गठन की व्यवस्था करके स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन का आश्वासन देता है। पंचम, यह पंचायतीराज संस्थाओं को कार्यकाल की सुरक्षा एवं निरन्तरता प्रदान करता है, यह व्यवस्था करके कि समस्त पंचायतीराज संस्थाओं का कार्यकाल पाँच वर्ष होगा तथा इस कार्यकाल

के पूर्ण होने के पूर्व ही इन संस्थाओं का नया निर्वाचन सम्पन्न हो जायेगा। निरन्तरता की रक्षा करने के लिए यह भी व्यवस्था की गयी है कि यदि कोई भी पंचायतीराज संस्था निर्धारित पाँच वर्ष पूर्ण होने के पूर्व ही विघटित हो जाती है, तो विघटित होने की तिथि से 6 माह के भीतर नये निर्वाचन सम्पन्न होने आवश्यक है। साथ ही, कार्यकाल की सुरक्षा और इन संस्थाओं को राज्य सरकार द्वारा बार-बार विघटन से रोकने के लिए यह भी व्यवस्था की गयी है कि यदि भंग करते समय पंचायत का कार्यकाल 6 माह अथवा उससे अधिक का बचा हुआ है, तो नव-निर्वाचित पंचायत पूर्व पंचायत के मात्र अवशिष्ट कार्यकाल का उपभोग करेगी। षष्ठ, नयी पंचायतीराज व्यवस्था समाज के दुर्बल वर्गों के पक्ष में आरक्षण प्रदान कर उन्हें पंचायतीराज संस्थाओं के संचालन में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। इस संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण आरक्षण महिलाओं के पक्ष में किया गया है, जिनके लिए प्रत्येक पंचायत में एक-तिहाई स्थान आरक्षित कर दिये गये हैं। सप्तम, नवीन संशोधन 29 विषयों की एक सूची निर्मित करता है, जिस पर पंचायतीराज संस्थाओं को अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा। अन्त में, यह पंचायतीराज संस्थाओं को आय के विभिन्न स्रोत प्रदान कर उनकी वित्तीय व्यवस्था को सुदृढ़ करने का प्रयास करता है।

जनजातियों का राजनैतिक संगठन

जनजातियों के सामाजिक संगठन और समाज की सुरक्षा के लिए यह जरूरी है कि प्रत्येक समाज के अपने नियम बनें और समाज के सदस्यों द्वारा उनका पालन किया जाए। नियम का उल्लंघन करने वाले को दण्ड देना और सामाजिक परम्परा की रक्षा करना जैसे कार्य राजनीतिक संगठन के अन्तर्गत आते हैं। प्रत्येक समाज में चाहे वह समाज आदिम हो या आधुनिक, व्यक्तियों और समूहों के पारस्परिक संबंध निर्धारित करने और सामाजिक नियमों का पालन करवाने के लिए कोई केन्द्रीय संस्था अवश्य होती है। यही संस्था व्यक्ति को बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिए उत्तरदायी होती है। संकट के समय व्यक्ति उस केन्द्रीय संस्था से सहायता और अनुशासन की आशा करते हैं। आधुनिक समाज के उस अंग को राजनैतिक संगठन कहा जाता है। जनजातीय समुदायों में विभिन्न संस्तरों यथा गोत्र, गाँव का एक सर्वोपरी नेता होता है। जो सर्वस्वीकार होता है। उत्तर-पूर्वी भारत के नागा जनजातियों में यह परम्परा है। इसकी सम्पूर्ण जनसंख्या एक विशिष्ट क्षेत्र, गाँव या छोटा भूखण्ड में स्थित होती है। जिसमें नातेदारी, धर्म आर्थिक और सामाजिक क्रियाकलाप होते हैं। हर जनजाति सदस्य का राजनीतिक संबंधों में बराबर का हिस्सा होता है लेकिन इनका नेता सर्वोपरि होता है।

जनजातियों में दो तरह के राजनैतिक संगठन कार्यरत हैं-

(1) पारम्परिक (2) सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त।

पारम्परिक राजनीतिक व्यवस्था में, ग्राम पंचायत, ग्राम का मुखिया और गाँव का बुजुर्ग सम्मिलित है। इन सभी संस्थाओं में व्यक्ति समूह जो परस्पर संबंधित है, जिम्मेदारी निभाते हैं। ये मुख्यतः पाँच तरह की हैं-

1. **ग्राम प्रधान-** सामान्यतः वंशानुक्रम से मान्यता प्राप्त पद होता है।

2. **ग्राम समूह-** ग्राम समूह एक पंचायत व्यवस्था है जो क्षेत्र के प्रधान द्वारा संचालित होती है।

3. **बुजुर्ग परिषद-** बुजुर्ग परिषद एक अस्थायी संस्था होती है, जिसमें गाँव के बुजुर्ग जो अलग-अलग गोत्रों के भी बुजुर्ग होते हैं, मिलकर मामले की सुनवाई करते हैं।

4. **ग्राम पंचायत-** ग्राम पंचायत में ग्राम-प्रधान चुने गये पंच होते हैं। इन पंचों का निर्वाचन गाँव वाले करते हैं।

5. **जनजाति प्रमुख** - यह वंशानुक्रम से प्राप्त पद है जो जनजाति समुदाय विशेष स्तर पर सर्वोच्च न्यायिक अधिकारी माना जाता है।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. 73वें संविधान संशोधन की जानकारी लिखिए।
2. जनजातियों के राजनैतिक संगठन की विस्तृत में जानकारी लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. "बलबंतराय मेहता प्रतिवेदन" पर टिप्पणी लिखिए।
2. ग्राम पंचायत पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. बुजुर्ग परिषद पर संक्षिप्व टिप्पणी लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. भारत आज भी ....
   (अ) गाँवों का देश है (ब) विकसित देश है
   (स) अविकसित देश है (द) शहरों का देश है
2. ग्राम पंचायतों का गठन हो, यह संविधान के किस अनुच्छेद में कहा गया-
   (अ) 15वें (ब) 28वें (स) 19वें (द) 40वें
3. बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में समिति का गठन कब किया गया-
   (अ) 2010 (ब) 1956 (स) 1970 (द) 1947
4. जनता दल की सरकार ने 1977 में किसके नेतृत्व में पंचायती राज हेतु समिति गठित की गयी-
   (अ) अटलबिहारी वाजपेयी (ब) राहुल गाँधी
   (स) अशोक मेहता (द) बलवंतराय मेहता
5. संविधान में किस संशोधन में पंचायतीराज व्यवस्था की स्थापना और उसका विकास प्लान बनाया गया-
   (अ) 73वें (ब) 63वें (स) 74वें (द) 64वें

उत्तर - 1. (अ), 2. (द), 3. (ब), 4. (स), 5. (अ)।



13

जनजातीय समस्याएँ : कारण एवं समाधान
(TRIBAL PROBLEMS : CAUSES AND SOLUTION)

भारतवर्ष में 8.6 प्रतिशत (2023 के अनुसार) से भी अधिक जनसंख्या वन्यजातियों की है। ये वन्यजातियाँ सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैली हुई हैं। भारतवर्ष के अनेक प्रदेश तो ऐसे हैं, जिनमें 20 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या वन्यजातियों की है। भारतवर्ष सदियों की गुलामी के बाद 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्र हुआ। इससे पहले की जो शासन पद्धति थी, उसमें इन वन्यजातियों की समस्याओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। स्वतन्त्रता के बाद भारतवर्ष के सामने अनेक समस्याएँ अपने विकट रूप में उपस्थित हुईं। आज देश को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। अनेक गम्भीर समस्याओं में वन्यजातियों की समस्या मौलिक है तथा अत्यन्त ही भीषण है। भारत में इन वन्यजातियों की संख्या 2 करोड़ 25 लाख से भी अधिक है। स्वतन्त्रता के बाद सरकार ने इन समस्याओं की ओर गम्भीरता से विचार करना प्रारम्भ किया है।

जनजातीय समस्याओं के कारण
(Causes of Tribal Problems)

प्रत्येक समस्या के पीछे एक निश्चित पृष्ठभूमि होती है। यही पृष्ठभूमि कारणों को पैदा करती है और समस्या का विकास होता है। भारतवर्ष में वन्यजातीय समस्याओं के पीछे जो कारण हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(1) **दुर्गम निवास-स्थान** (Unapproachable Habitation) – भारतवर्ष की वन्यजातियों की मौलिक विशेषता यह है कि ये ऐसे स्थानों में निवास करती हैं, जो भीषण जंगलों और पहाड़ों से घिरे हुये होते हैं। इनका परिणाम यह होता है कि संचार के साधनों का वहाँ पर अभाव पाया जाता है। संचार साधनों के अभाव के कारण वे परिस्थितियों के दास हो जाते हैं और अन्य संसार से उनका सम्पर्क टूट जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अनेक समस्याओं का जन्म अपने आप ही हो जाता है। सम्पर्क साधनों के अभाव के कारण ये समस्याएँ और भी अनेक समस्याओं को जन्म देती हैं।

(2) **सभ्य समाज से सम्पर्क** (Contact with Civilized Society) – वन्यजातियों की समस्याओं का कारण सभ्य समाज से सम्पर्क में आना है। वन्यजातियों के सम्पर्क में जो सभ्यताएँ आईं, उन्हें निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(a) हिन्दू सभ्यता, और

(b) पाश्चात्य सभ्यता।

ये दोनों सभ्यताएँ वन्यजातियों के लिए नई प्रतीत हुईं। वन्यजाति इन सभ्यताओं के साथ अपना अनुकूलन करने में असमर्थ रहे, इसके परिणामस्वरूप भी अनेक समस्याओं का जन्म हुआ।

(3) **शोषण** (Exploitation)– वन्यजातियों का बाहरी समाजों द्वारा शोषण के कुचक्र के कारण भी अनेक प्रकार की समस्याओं का विकास हुआ। जिन समूहों द्वारा वन्यजातियों का शोषण किया जाता है, उनमें व्यापारी महाजन, ठेकेदार आदि प्रमुख हैं। इन व्यक्तियों ने वन्यजातियों की अर्थव्यवस्था को अत्यन्त ही जर्जर कर दिया है।

(4) **शासन व्यवस्था** (Admintstrative Set up)— अंग्रेजों के द्वारा शासन व्यवस्था की स्थापना भारतवर्ष में की गई थी। इससे भी उनके जीवन में अनेक समस्याओं का जन्म हुआ। अंग्रेजों के शासनकाल में अनेक अधिकारी वन्यजातियों की समस्याओं का समाधान करने के उद्देश्य से वन्यजातीय क्षेत्रों में भेजे गए। इन अधिकारियों ने वन्यजातियों की समस्याओं का समाधान करना तो दूर रहा, इन्हीं का शोषण करना प्रारम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म हुआ।

जनजातीय समस्याएँ
(Tribal Problems)

भारतवर्ष में जितनी भी वन्यजातियाँ हैं, उनमें समस्याओं की दृष्टि से समानता है। समस्याओं में क्षेत्रीय तथा अन्य मामलों में भिन्नता के बावजूद भी सभी वन्यजातियों की समस्याएँ समान हैं। इस दृष्टि को सामने रखकर भारतीय वन्यजातियों की जो प्रमुख समस्याएँ हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है —

(1) **अशिक्षा** — अशिक्षा वन्यजातियों के जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। यह अशिक्षा अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देती है। अशिक्षा ही एक ऐसा कारण है जिससे उनके जीवन में अनेक प्रकार के अंधविश्वासों और कुप्रथाओं का जन्म होता है। वैसे तो प्रत्येक वन्यजातीय समूह अपने सदस्यों को अनौपचारिक अथवा व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करता है। इस शिक्षा का उद्देश्य होता है समुदाय की सामाजिक और सांस्कृतिक एकता को बनाए रखना। परन्तु आधुनिक शिक्षा के अभाव में उन्हें सरकारी योजनाओं की पूरी जानकारी नहीं मिल पाती है और वे उसके लाभ से वंचित रह जाते हैं। अशिक्षा गरीब के लिये अभिशाप है। शिक्षा के अभाव में जनजातीय लोगों की आर्थिक उन्नति नहीं हो पाती है। जागरुकता में कमी के कारण उन्हें अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान नहीं होता है।

(2) **स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ** – आधुनिक युग में वन्यजातियों के जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म और विकास हुआ है। इनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या प्रमुख है। भारतीय वन्यजातियों की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है —

(a) **अत्यधिक बीमारियाँ** – वन्यजातियों को भर पेट भोजन नहीं मिल पाता है। इसके साथ ही वे ऐसे वातावरण में रहते हैं जिसमें अनेक प्रकार की बीमारियों का जन्म होता है।

(b) **चिकित्सा का अभाव** – वन्यजातियाँ अनेक प्रकार की क्षेत्रीय एवं मौसमी बीमारियों से भी पीड़ित रहती हैं। साथ ही, उन्हें चिकित्सा सुविधाओं का भी अभाव रहता है। वन्यजातियों में चिकित्सा सुविधा की कमी के दो कारण हैं।

(i) वन्यजातियाँ परम्परात्मक चिकित्सा पद्धति में विश्वास करते हैं।

(ii) वन्यजातियाँ ऐसे बीहड़ और दुर्गम स्थानों में निवास करती हैं कि वहाँ तक चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराना अत्यन्त ही कठिन होता है।

(3) **आवास एवं विस्थापन** — वन्यजातियों की समस्या आवास एवं विस्थापन भी है इनके मकान घास-फूस, लकड़ी और मिट्टी के बने होते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से ये मकान अत्यन्त ही हानिकारक होते हैं। मकान अत्यन्त ही छोटा होता है। इसमें प्राय: एक ही कमरा होता है। वह भी अत्यन्त ही सँकरा और छोटा होता है। खिड़कियों का पूरी तरह अभाव पाया जाता है। मकानों में समुचित रूप से हवा और रोशनी का अभाव होता है, एक ही कमरे के घर में खाना, सोना, जीना, मरना, रहना सब कुछ होता है। घरों में गन्दगी भी पर्याप्त मात्रा में रहती है। इस सबका परिणाम यह होता है कि अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म होता है।

(4) **परिस्थिति शास्त्रीय समस्याएँ** – वन्यजातियों की जितनी भी समस्याएँ हैं, इन समस्याओं में मौलिक समस्या परिस्थितियों से सम्बन्धित हैं। वे घने जंगलों और पहाड़ों में निवास करते हैं। यहाँ सम्पर्क तथा आवागमन के साधनों की कमी के कारण अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म होता है। भयावह प्रकृति ही उनके जीवन का एक सहारा होती है। वे इसी प्रकृति की गोद में जन्म लेते हैं, पलते हैं, बड़े होते हैं, क्रियाओं का सम्पादन करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि भोजन, वस्त्र, आवास, दवाई तथा इसी प्रकार की अन्य समस्याओं का जन्म होता है।

(5) **खाद्य सामग्री की समस्या** – खाद्य सामग्री भी वन्यजातियों की एक प्रमुख समस्या थी। इस दृष्टि से ये आज भी आखेट और पशुपालन अवस्था में रह रहे हैं। जंगली फलों, फूलों, जड़ों, छालों और पत्तियों का प्रयोग खाद्य सामग्री के रूप में करते हैं। जंगली जानवरों का शिकार करके भी अपने जीवन का निर्वाह करते थे। अनेक परिवार ऐसे होते हैं, जिन्हें गरीबी के कारण भोजन मिलना भी एक समस्या है। वे मोटा अनाज खाते हैं। खाद पदार्थों में पौष्टिक तत्वों का पूर्ण अभाव पाया जाता है।

(6) **स्त्रियों की स्थिति** – वन्यजातियों की स्त्रियों की समाज में अच्छी स्थिति नहीं होती है। उन वन्यजातियों में जो मातृसत्तात्मक हैं, पुरुषों की सामाजिक स्थिति अच्छी है, किन्तु मातृसंत्तात्मक परिवार अत्यन्त ही सीमित हैं। अधिकांश वन्यजातियों में पिता को परिवार में सत्ता होने के कारण स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त ही दयनीय होती है। वे शिक्षा से दूर रहती हैं, अनेक प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त रहती हैं, नवीन विचारों से दूर रहती हैं।

(7) **युवागृहों का पतन** – वन्यजातियों के जीवन में युवागृहों की स्थापना सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन को शिक्षा के उद्देश्य से की गई थी। आधुनिक सभ्यता के कारण ये युवागृह समाप्त होते जा रहे हैं। इस संस्था के विघटन के साथ ही समाज पर अनेक बुरे परिणाम स्पष्ट होते जा रहे हैं।

निर्धनता, ऋणग्रस्तता एवं भूमि-पृथक्करण
(Poverty, Indebtedness and Land - Alienation)

जनजातियों का सम्पूर्ण जीवन समस्याओं से ग्रस्त है। अत: समस्याएँ कितनी हैं, यह कहना अत्यन्त ही कठिन है। इन समस्याओं को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(a) मौलिक समस्याएँ, तथा

(b) सहायक समस्याएँ

मौलिक समस्याएँ वे हैं, जो समस्याओं की जड़ में हैं। इन समस्याओं के कारण अन्य समस्याओं का जन्म और विकास होता है। सहायक समस्याएँ वे हैं जो मूल समस्याओं के कारण जन्म लेती हैं। जनजातियों की तीन मौलिक समस्याएँ हैं –

(i) निर्धनता,

(ii) ऋणग्रस्तता, और

(iii) भूमि पृथक्करण।

यदि इन तीन मौलिक समस्याओं की विवेचना की जाए तो इनमें भी निर्धनता की समस्या सबसे बड़ी है। निर्धनता के कारण ही ऋणग्रस्तता और भूमि पृथक्करण की समस्याओं का जन्म और विकास होता है। निर्धनता न केवल भारत के लिए अपितु विश्व की विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए एक चुनौती है। आर्थिक असमानता और विकास का न होना आधुनिक समय में निर्धनता के दो प्रमुख कारण हैं।

निर्धनता का तात्पर्य है "मनुष्य को आधारभूत आवश्यकताओं जैसे रोटी, कपड़ा और मकान के साथ-साथ स्वास्थ्य और शिक्षा को पाने के लिए पर्याप्त आय का न होना।" योजना आयोग के अनुसार 2140 कैलोरीज प्राप्ति में असफल सभी व्यक्ति निर्धन हैं। इस परिप्रेक्ष्य में यह समझा गया कि ग्रामीण आबादी

के कमजोर वर्गों जिनकी आय बहुत कम है, उन्हें निर्धनता से मुक्ति दिलाने के लिए 1 जुलाई, 1975 को स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम शुरू किया था, जिसके अन्तर्गत 20 सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की गई थी। इस कार्यक्रम में 1980, 1982 और 1984 में तीन बार संशोधन किया।

एक अनुमान के अनुसार अनुसूचित जनजाति के 52.6 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे का जीवन-यापन जी रहे हैं। अखिल भारतीय गरीबी रेखा के नीचे का प्रतिशत 33.4 है। आठवीं योजना में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि आज भी हमारे देश की अधिकांश अनुसूचित जनजातियाँ गरीबी रेखा के नीचे जी रही हैं। पहले भारत सरकार द्वारा 6400 रुपए वार्षिक से कम आमदनी वाले परिवारों को गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों में सम्मिलित किया था। भारत सरकार ने इसे पुन: परिभाषित किया है और गरीब उन्हें माना है, जिनकी वार्षिक आमदनी 11000 रुपए से कम है। साथ ही गरीबों को निम्न चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है —

(a) वार्षिक आमदनी रु. 4000 से कम
(b) " " रु. 4000 से 6000 तक
(c) " " रु. 6000 से 8500 तक
(d) " " रु. 8500 से 11000 तक

1986 में इस अधिनियम को पुन: संशोधित किया गया तथा निर्धनता के उन्मूलन के लिए भारत सरकार ने निम्न वचनबद्धता घोषित की —

(i) यह सुनिश्चित करना कि गरीबी उन्मूलन का कार्यक्रम प्रत्येक गाँव के निर्धन तक पहुँचे,
(ii) ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों तथा क्षेत्र विकास और मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों के बीच सामन्जस्य,
(iii) विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाने तथा ग्रामीण रोजगार बढ़ाने से जोड़ना, और
(iv) हाथकरघा, वस्तुशिल्प, लघु और ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देना तथा स्वरोजगार के लिए दक्षता में सुधार करना।

निर्धनता के अतिरिक्त जनजातियों की दूसरी बड़ी समस्या ऋणग्रस्तता की है। भारत में यह कहावत प्रचलित है कि "भारतीय किसान ऋण में ही पैदा होता है, ऋण में ही जीता है और ऋण में ही मर जाता है।" कई जनजातीय परिवार है, जो ऋण के बोझ से दबे हैं। इस ऋणग्रस्तता का मूल कारण भी निर्धनता ही है। जो आदिवासी एक बार किसी साहूकार से ऋण ले लेता है, फिर वह दुबारा अपने जीवन भर इस ऋण से उऋण नहीं हो पाता है। केवल इतना ही नहीं यह ऋणग्रस्तता उत्तराधिकार की भाँति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। भारत में साख समितियों की कमी तथा जनजातियों में जागरूकता के अभाव के कारण जनजातियों को साहूकारों से ही ऋण लेना पड़ता है। इनके ब्याज की दरें काफी ऊँची होती हैं, जिन्हें जनजातियों के लिए अदा करना कठिन होता है। फिर ये आदिवासी अपढ़ होते हैं। ऋण देने वाला अपने खाते में जो चाहे लिखकर उनके दस्तखत करा लेते हैं।

जनजातियों के पास आय के साधन भी नहीं हैं। खेती ही आय के साधन का प्रमुख स्रोत है। फिर इन आदिवासियों के पास खेती के लिए जमीन नहीं होती है। जो थोड़ी बहुत जमीन होती है, उसमें इतनी कम पैदावार होती है कि ये अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। ऋण अदा करना अत्यन्त ही कठिन होता है।

निर्धनता ऋणग्रस्तता का कारण है। ऋणग्रस्तता से जिस अलग समस्या का जन्म होता है वह है— भूमि का पृथक्करण। जब ऋण की मात्रा अधिक हो जाती है, तो इनकी जमीन पर ऋण देने वाले की नजर

रहती है और अन्त में उसे भूमि से भी अलग होना पड़ता है। यद्यपि सरकार द्वारा ऐसे नियम बनाए गए हैं कि आदिवासियों की जमीनों का हस्तान्तरण बिना कलेक्टर की अनुमति के नहीं होगा, किन्तु इस नियम के तोड़ के लिए भी रास्ते बना लिए गए हैं और यही कारण है कि आदिवासियों में भूमि पृथक्करण की प्रक्रिया चल रही है।

कारण (Causes)– जनजातियों में निर्धनता, ऋणग्रस्तता तथा भूमि पृथक्करण के लिए कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं है। अनेक कारण इन समस्याओं को जन्म देते हैं। इन समस्याओं के लिए जो प्रमुख कारण हैं, उनका विवरण इस प्रकार है–

(i) जागरूकता का अभाव,

(ii) अशिक्षा,

(iii) परम्परागत विचार और विश्वास,

(iv) साख सुविधाओं का अभाव,

(v) गलत नेतृत्व तथा नौकरशाही की उदासीनता,

(vi) आर्थिक पिछड़ापन,

(vii) सामाजिक तथा धार्मिक परम्पराएँ।

सुझाव (Suggestion) – समाज में जो भी समस्याएँ होती हैं, उनके समाधान के उपाय उस समस्या के मूल में ही विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार यदि जनजातियों की उपर्युक्त समस्या का समाधान खोजना है तो इन्हीं समस्याओं की तह में जाना होगा। जनजातियों में जो समस्याएँ हैं, उनमें निर्धनता, ऋणग्रस्तता तथा भूमि पृथक्करण मुख्य हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं–

1. जनजातियों में जागरूकता का विकास करना,
2. जनजातियों में शिक्षा का प्रसार करना,
3. समाज में साख सुविधाओं का विस्तार करना,
4. रोजगार के अवसर उपलब्ध करना,
5. कृषि की उन्नति की ओर ध्यान देना,
6. नौकरशाही के दोषों को दूर करना,
7. सही नेतृत्व का चुनाव करना,
8. समाज के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करना,
9. सामाजिक तथा धार्मिक और रुढ़िवादी मान्यताओं में परिवर्तन करना।

वन्यजातीय समस्याओं का निराकरण
(Remedies of Tribal Problems)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि वन्यजातियों का जीवन अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरा हुआ है। इन गम्भीर समस्याओं के समाधान या निराकरण के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं –

(1) **शिक्षा सम्बन्धी सुझाव** – वन्यजातियों की समस्याओं का मूल कारण अशिक्षा है। इसलिए वन्यजातियों में शिक्षा से सम्बन्धित अग्रांकित सुझाव दिए जा सकते हैं –

(a) वन्यजातियों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी जानी चाहिए।

(b) ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे वन्यजाति के व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने को आकर्षित हों।

(c) प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(d) वन्यजातियों में शिक्षा के प्रसार के लिए शिक्षा का माध्यम वन्यजातियों की भाषा को बनाया जाना चाहिए।

(e) वन्यजातियों को जो शिक्षा प्रदान की जाय, उसका आधार व्यावसायिक हो। दस्तकारी तथा अन्य व्यवसाय सम्बन्धी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से वन्यजातियों को बेरोजगारी की समस्या से बचाया जा सकता है।

(f) शिक्षा के साथ ही वन्यजातियों के मनोरंजन की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। मनोरंजन का आधार वन्यजातीय लोक नृत्य, संगीत आदि होना चाहिए।

(g) वन्यजातियों की शिक्षा के लिये विद्यालय हों, उनमें व्यवसाय से सम्बन्धित व्यावहारिक प्रशिक्षण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(h) ऐसे अध्यापकों को राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कार देने की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिन्होंने वन्यजातीय क्षेत्रों में शिक्षा के प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य किया हो।

(2) **आर्थिक सुझाव** – वन्यजातियों की दूसरी समस्या आर्थिक जीवन से सम्बन्धित है। इस सम्बन्ध में वन्यजातियों के आर्थिक जीवन से सम्बन्धित निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं –

(a) वन्यजातियों को पर्याप्त जमीन दी जानी चाहिए, जिस पर वे अच्छी तरह से कृषि कर सकें।

(b) ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए जिससे झूम खेती की प्रथा समाप्त हो जाए। इसका कारण यह है कि झूम खेती से जंगलों को काटना पड़ता है, जिससे राष्ट्रीय हानि होती है।

(c) वन्यजातियों को भूमि देना ही पर्याप्त नहीं होगा, अपितु उन्हें खेती के लिए औजार, उत्तम बीज, खाद और अच्छी नस्ल के पशु देने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

(d) वन्यजातियों को कृषि से सम्बन्धित आधुनिक प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए, ताकि वे कृषि से अच्छी पैदावार प्राप्त कर सकें।

(e) ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए जिससे वन्यजातियों में घरेलू उद्योग-धन्धों का विकास किया जा सके।

(f) वन्यजातियों को गृह उद्योगों से सम्बन्धित आधुनिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(g) जो श्रमिक औद्योगिक क्षेत्रों में काम कर रहे हैं, उनके लिये आवास, कार्य दशाएँ, कार्य के घन्टे आदि के प्रति उचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

(h) वन्यजातीय क्षेत्रों में सहकारी समितियों का विकास किया जाना चाहिए।

(i) वन्यजातीय पुरुषों और महिलाओं को शासकीय नौकरी दिलाने के प्रयास किये जाने चाहिए।

(j) साहूकारों और महाजनों पर इस प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जाने चाहिए जिससे वे वन्यजातियों का आर्थिक शोषण न कर सकें।

(3) **सामाजिक सुझाव** – वन्यजातियों की समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित तीसरा सुझाव उनके सामाजिक जीवन से है। इस सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं :–

(a) कानून का निर्माण करके बाल-विवाह और कन्या मूल्य पर रोक लगा दी जानी चाहिए। साथ ही जो व्यक्ति ऐसा करें, उनके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(b) युवागृह वन्यजातीय युवकों और युवतियों के लिए शिक्षा के साधन होते हैं। अतः युवागृहों को नष्ट होने से बचाया जाए और उनका पुनरुत्थान किया जाए।

(c) वन्यजातियों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए निम्न उपाय किये जाने चाहिये :—

(i) वन्यजातीय युवकों और युवतियों को कम्पाउंडर और दाई का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए,

(ii) वन्यजातियों में ऐसी जागरुकता का विकास करना चाहिए, जिससे वे भोजन में पौष्टिक तत्वों के प्रयोग के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें,

(iii) वन्यजातियों के लिए चलते-फिरते औषधालयों की व्यवस्था करनी चाहिए,

(iv) ग्राम पंचायतों, स्कूलों, युवागृहों आदि में प्राथमिक चिकित्सा बाक्स (First Aid Box) के रखे जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए,

(v) ऐसे प्रयास करने चाहिये जिससे वन्यजातियों में अंग्रेजी दवाइयों पर आस्था पैदा हो सके,

(e) वन्यजातीय समस्याओं के समाधान के लिए जो भी कार्यक्रम अपनाएँ जायें वे वन्यजातीय भाषा में हों साथ ही उसका आधार वन्यजातीय संस्कृति हो।

(4) **स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के निराकरण के लिये सुझाव** (Suggestions for the Solution of Health Problems)- स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान के अभाव तथा पौष्टिक भोजन की कमी से जनजातियाँ आज अनेक रोगों से ग्रस्त है। बहुत से आदिम समाजों में चेचक, मलेरिया, इन्फ्लुएंजा, तपेदिक, आदि बीमारियां फैली हुई हैं। चाय बागानों, कल-कारखानों तथा औद्योगिक संस्थानों में असुरक्षित कार्य वातावरण और परिस्थितियों में जनजातीय लोगों में शारीरिक और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। इनकी स्वास्थ्य की रक्षा के लिये निम्न उपाय किये जाने चाहिये।

(i) आदिवासियों के क्षेत्रों में चलते-फिरते अस्पतालों की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ii) आदिवासियों के क्षेत्रों के सरकारी औषधालयों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिये।

(iii) आदिवासी क्षेत्रों में बहुत से ऐसे खाद्य पदार्थ होते हैं जो स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं किन्तु इनकी उपयोगिता की इन्हें जानकारी दी जानी चाहिये।

(iv) युवागृहों, पाठशालाओं, पंचायत घरों तथा अन्य सार्वजनिक भवनों में प्राथमिक चिकित्सा सहायता पेटिका (First Aid Kits) तथा अन्य आवश्यक दवाओं का रखना आवश्यक है।

(v) आदिवासी क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली जड़ी-बूटियों पर शोध होना चाहिये ताकि वे ऐसे क्षेत्रों में उपयोगी औषधियों के रूप में प्रयुक्त की जा सकें।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. निर्धनता की समस्या पर टिप्पणी लिखिए।
2. वन्यजातीय समस्याओं का निराकरण किस प्रकार किया जाता है।
3. स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के निराकरण के लिए सुझाव लिखिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जनजातीय समस्याओं के कारण स्पष्ट कीजिए।
2. जनजातीय समस्याओं का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. भारत में .... प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या वन्यजातियों की है-

   (अ) 8.6 प्रतिशत (ब) 12 प्रतिशत (स) 17 प्रतिशत (द) 22 प्रतिशत

2. वन्यजातियों की समस्याओं का निराकरण .... से हो सकता है-

   (अ) शिक्षा संबंधी सुधार (ब) आर्थिक सुधार

   (स) सामाजिक सुधार (द) उपरोक्त सभी

उत्तर - 1. (अ), 2. (द)।



14

प्रमुख जनजातीय आंदोलन
(MAIN TRIBLE MOVEMENTS)

भारत में जनजातीय आंदोलनों का इतिहास काफी पुराना है प्रत्येक जनजातीय आन्दोलन मूलत: सामाजिक आंदोलन ही होता है। **हैबरले** के अनुसार, 'एक विशेष प्रकार का संगठित क्रियात्मक समूह जो दीर्घकालीन होता है तथा जो जनता, अथवा भीड़ या उत्तेजित भीड़ से अधिक संगठित होता है। यथापि राजनैतिक समाजों के समान आयोजित नहीं होता, वन्यजातीय आंदोलन कहलाता है।' इस प्रकार ऐसा कहा जा सकता है कि 'अपने पर्यावरण, संस्कृति एवं धार्मिक व्यवस्था से उपजी समस्यात्मक स्थितियों से उबरने के लिए वन्यजातीय समाजों द्वारा जो आन्दोलन किये जाते हैं उन्हें जनजातीय आंदोलन कहते हैं।'

जनजातीय आंदोलन के कारण

जनजातीय आंदोलन के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं -

(1) सामाजिक समस्याएँ- जनजातीय समाज की सामाजिक संरचना अपने आप में एक अनोखी धारणा है। सांस्कृतिक, प्रजातीय एवं राजनैतिक प्रभावों ने वन्यजातीय समाज के आधारभूत स्तम्भों को इतना कमजोर कर दिया है कि अनेक सामाजिक संस्थाएँ लगभग समाप्त प्राय: हैं। कई वन्यजातीय समाजों में बाल विवाह की समस्या, कन्या मूल्य की समस्या, नगरीकरण के प्रभावों के कारण युवागृहों के पतन की समस्याएँ प्रमुख हैं। साक्षरता के प्रसार ने जहाँ एक ओर उन्हें आधुनिक बनाया है वहीं दूसरी ओर उनकी पारस्परिक अस्मिता को समाप्त करके पुरानी तथा नयी पीढ़ी के संघर्ष को जन्म दिया है।

(2) **सांस्कृतिक समस्याएँ-** आधुनिकीकरण एवं औद्योगीकरण ने आवागमन के साधनों में वृद्धि करके जहाँ सभ्य समाजों के विकास का द्वार खोला वहीं वन्यजातीय समाज इन्हीं सुविधाओं के कारण संस्कृतिकरण जैसी समस्याओं को झेल रहा है। वन्यजातीय ललित कलाएँ, संगीत, नृत्य तथा अन्य शिल्प कलाएँ पश्चिमीकरण के प्रभाव में समाप्त होती जा रही हैं। बाहरी संस्कृति के प्रभावों ने भाषा-समस्या को भी जन्म दिया।

(3) **आर्थिक समस्याएँ-** भारत का वन्यजातीय समाज अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मूलत: कृषि तथा वनों से प्राप्त भोजन सामग्री पर निर्भर करता है। जीवन-यापन के ये दोनों आधार समय-समय पर अनेक कारणों से समस्यामूलक सिद्ध होते रहे हैं। इनकी 'झूम खेती' की परम्परा ने जहाँ एक ओर इनके खेतों को बरबाद किया है वहीं दूसरी ओर कम उपज के कारण खाद्य समस्या भी आंदोलन का कारण बनता है। शासकीय स्तर पर वन्यजातीय श्रमिकों का शोषण एक सामान्य घटना है। श्रम नियोजन की सोचनीय स्थिति, मकानों की अव्यवस्था, ठेकेदारों द्वारा प्रत्यक्ष भर्ती, बेगार एवं गुलामी आदि अनेक माध्यम हैं, जो जनजातीय समाज़ का शोषण करते हैं और असंतोष के जन्म का कारण बनते हैं।

(4) **राजनैतिक समस्याएँ-** शासकीय स्तर पर अपनी जनजाति को अपेक्षित अधिकार दिलाने के लिए भौगोलिक क्षेत्रों की सीमा निर्धारित करने के लिए तथा अपने क्षेत्र को प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य बनाने के लिए किये जाने वाले आंदोलन इस बात के साक्षी हैं कि स्वतंत्रता, स्वायत्तता तथा विशेषाधिकारों की समस्या से वन्यजातीय समाज प्राय: जूझता रहा है। भारतीय राजनीति के नित नये आयामों से वन्यजातीय समाज समस्याग्रस्त रहा है। विभिन्न राजनीतिक दल अपने-अपने स्वार्थों की लड़ाई में इन्हीं आदिवासी समाजों को अपना मोहरा बनाते हैं। इनकी निर्धनता का लाभ उठाकर प्राय: धन के लोभ में इनका मनमाना शोषण

किया जाता है, अनेक सर्वेक्षणों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि अधिकांश वन्यजातियों को यह भी ज्ञात नहीं है कि वे 'भारत नाम के किसी देश का हिस्सा हैं। उनके क्षेत्र में कौन-सी राज्य सरकार है? क्या सरकार उनकी समस्याओं को सुलझा रही है? चुनाव के बाद उनके क्षेत्र में नेता की क्या भूमिका है? उनके वोट का क्या महत्व है? इत्यादि प्रश्नों की झड़ी अधिकांश वनवासियों के लिए पूर्णत: असंगत होती है। निर्धनता, शिक्षा का अभाव, कुटीर उद्योगों का विनाश, प्राकृतिक प्रकोप एवं राजनीतिक अवसरवादिता की समस्याओं से जूझते आदिवासियों का आक्रोश कब और कैस फूट पड़ेगा, इसका उत्तर दे सकना आसान नहीं है।'

जनजातीय आन्दोलन

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से वन्यजातीय आंदोलन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व वन्यजातीय आंदोलन।

(2) स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के वन्यजातीय आंदोलन।

(1) स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व वन्यजातीय आंदोलन

वन्यजातियों ने अपने विशिष्ट संस्कृति, सांस्कृतिक सम्पदा, नैतिक प्रतिमान, धार्मिक मान्यताएँ, सम्पदा तथा निर्धारित भौगोलिक क्षेत्रों के अतिक्रमण के विरुद्ध समय-समय पर आवाज उठाई। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व वन्यजातियों द्वारा जो विभिन्न आंदोलन चलाये गये उनकी विवेचना संक्षेप में इस प्रकार है-

(i) **खानदेश आंदोलन (1817-1846)-** भारतीय वन्यजातीय आंदोलन की पहली कड़ी में 1817 में हुआ खानदेश आंदोलन प्रमुख है। यह आंदोलन भीलों द्वारा चलाया गया था। यह आंदोलन राजपूतों की साम्राज्यवादी नीतियों के खिलाफ भीलों द्वारा उस समय प्रारंभ किया गया था जब राजपूतों ने भीलों की सांस्कृतिक विरासत पर भी प्रहार करने का प्रयास किया था। आंदोलन के प्रारंभिक चरण में तो भील पहाड़ी तथा जंगली प्रदेशों की तरफ बढ़ गये किन्तु शीघ्र ही उन्हें यह अहसास हुआ कि इस प्रकार का पलायन उनके अस्तित्व को समाप्त कर देगा। अत: वे आक्रमण पर उतर आये। अरावली पर्वत पर दोनों के बीच संघर्ष हुआ। जब भील राजपूतों पर हावी होने लगे तो अंग्रेजों ने राजपूतों का साथ दिया, जिसके कारण कालांतर में यह संघर्ष अंग्रेज बनाम भील बन गया। परिणामस्वरूप इस संघर्ष को लोगों ने भीलों तथा राजपूतों का संघर्ष न कहकर भीलों तथा अंग्रेजों का संघर्ष कहा और स्थानीय लोगों ने इसे खानदेश आंदोलन का नाम दिया। यह आंदोलन लगभग 30 वर्षों तक चला और इसकी सीमाएँ धीरे-धीरे अरावली पर्वत की श्रेणियों को पार करती हुई सतारा तथा मालवा तक पहुँच गयीं। सन् 1846 में अंग्रेजों ने इस आंदोलन का बुरी तरह से दमन कर दिया।

(ii) **बिरसा मुण्डा आंदोलन (1890-1907)-** 1890 ई. में भारत राजनीतिक स्तर पर अंग्रेजों से, आर्थिक स्तर पर पूँजीपतियों तथा महाजनों से एवं सामाजिक स्तर पर रुढ़िवादियों एवं पुरातन-पंथियों से घिरा हुआ था, वहाँ वन्यजातीय जीवन प्रत्येक स्तर पर जीविकोपार्जन एवं अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा था। ऐसी विषम परिस्थितियों में बिरसा मुण्डा आंदोलन का सूत्रपात एक आदिवासी क्रांतिकारी बिरसा के 'अबुआ राज एते जना, महारानी टुंडूजना' के उद्घोष से प्रारंभ हुआ। 23 अगस्त, सन् 1895 की एक असाधारण घटना ने इस आंदोलन में आग में घी का कार्य किया। मालगुजारी वसूल करने आये सिपाहियों ने जब मुण्डाओं के घर में प्रवेश करके गहने-बर्तन छीने तो महिलाओं ने विरोध किया। पुलिस के एक हेडकांस्टेबल ने जब एक महिला के साथ जबरदस्ती करने की कोशिश की तो बिरसा ने कुल्हाड़ी से उसकी हत्या कर दी। 6 अगस्त को उसकी गिरफ्तारी के बाद मुण्डाओं में बिरसा के प्रति श्रृद्धा और अंग्रेजों के प्रति घृणा बढ़ती चली गयी। राँची में 2 वर्ष की सजा काटने के पश्चात् उन्होंने बिरसा सेवा दल का गठन किया और 8 अगस्त, 1893 को चार-पाँच हजार आदिवासियों ने छोटा नागपुर में अंग्रेज सरकार के खिलाफ सामूहिक बगावत का नारा बुलंद किया।

अगस्त 1897 को खूँटी क्षेत्र में दोनों के बीच संघर्ष हुआ जिसमें एक थाने के लगभग दो सौ सिपाही मारे गये। आदिवासियों ने जंगलों में शरण ली और 'जंगलराज' की उद्घोषणा की। धीरे-धीरे यह आन्दोलन नन्दगाँव, तोरपा और मुरटू से बढ़ता हुआ जशपुर तथा रामपुर तक भी पहुँच गया। 24 दिसंबर, 1899 को बिरसा के नेतृत्व में राँची पर धावा बोला गया। अनेक थाने नष्ट कर दिये गये। 12 कांस्टेबिल तथा एक अंग्रेज अफसर मारा गया। अंग्रेज सरकार ने मुण्डाओं को सबक सिखाने के लिए डोमबरी में सामूहिक हत्याओं तथा बलात्कारों का सिलसिला शुरू किया। अनेक औरतें, बूढ़े एवं बच्चे मारे गए। फरवरी 1900 को बिरसा की गिरफ्तारी के साथ यह आंदोलन समाप्त हो गया। 9 जून, 1900 को हजारीबाग की जेल में बिरसा की मृत्यु हो गई। इस प्रकार एक चमत्कारिक व्यक्ति ने अपने दम पर एक सशक्त आंदोलन खड़ा किया। बिरसा सेवा दल के नरसिंह मुण्डा ने बिरसा के नाम पर इस आंदोलन को आगे बढ़ाना चाहा किन्तु 1907 में वह भी मारा गया।

(iii) **ताना भगत आंदोलन (1913-1925)**- धार्मिक आंदोलन की कड़ी में सामाजिक जीवन के सुधारों को अपना मूल लक्ष्य मानने वाले आंदोलन में ताना भगत आंदोलन सबसे पहला आंदोलन था। इस आंदोलन का प्रवर्तक ओरांँव जनजाति की जात्रा नामक एक वनवासी था। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत शोषण का साम्राज्य था अत: वनवासी समाज जहाँ एक ओर गोरी सरकार के अत्याचारों से आक्रांत था वहीं दूसरी ओर महाजनों तथा देनदारों की लूट-खसोट नीति तथा अपने ही समाज में व्याप्त माँस-मदिरा के सेवन एवं जादू-टोने-टोटके के अंधविश्वासों में उनका सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। इस स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से अनेक प्रयास किये, किंतु कोई सकारात्मक परिणाम प्राप्त नहीं हो सका। सन् 1913 में जात्रा ने अपने समाज को सुधारने का बीड़ा उठाया। उसने सर्वप्रथम अपने जनजातीय बंधुओं को यह समझाने का प्रयास किया कि विरोधी शक्तियों का सामना करने के लिए आत्मशक्ति पैदा करनी पड़ती है। उसने अपने साथियों को चार प्रमुख उपदेश दिये -

(1) जादू-टोने पर विश्वास न करना,

(2) शरीर तथा मन को स्वच्छ रखना,

(3) माँस-मदिरा का सेवन नहीं करना, और

(4) एक ईश्वर पर विश्वास रखना।

उपर्युक्त उपदेशों की राह पर चलकर ताना भगत के आंदोलन में हजारों ओराँवों ने भाग लिया। आगे चलकर महात्मा गाँधी के प्रभाव में आकर इस आंदोलन ने स्वतंत्रता संग्राम में भी अपना सहयोग देने के लिए खादी वस्त्रों को अपनाया तथा स्थानीय भूपतियों से अपनी माँगों की लड़ाई से 'असहयोग' की नीति अपनाई।

(iv) **भील भगत आंदोलन (1903-1920)**- ओराँव का भगत आंदोलन जहाँ सांस्कृतिक सुधारों से प्रेरित था वहीं भीलों का भगत आंदोलन हिन्दू धर्म के प्रभावों से प्रेरित हुआ था। इस आंदोलन को राजस्थान के भीलों ने चलाया था। इस आंदोलन के अंतर्गत यह मान्यता प्रस्तुत की गयी थी कि सामाजिक-आर्थिक जीवन की समस्याओं का प्रमुख कारण मौजूदा जीवन-पद्धति थी। अत: हिन्दुओं की धार्मिक संरचना को अधिक सुखी मानते हुए यह मान लिया गया कि बेहतर जीवन की प्राप्ति के लिए हिन्दुओं की भाँति जीवन यापन करना होगा। इस क्रम में आंदोलन के दो पहलू हो गये। एक पक्ष ने पुरातन मान्यताओं के साथ-साथ नवीन हिन्दू मान्यताओं को भी स्वीकार करने पर बल दिया। दूसरे पक्ष ने इस बात पर बल दिया कि पुरानी मान्यताओं में जो कुछ भी हानिकारक है उसे पूर्ण रूप से त्यागकर नवीन जीवन पद्धतियों को अपनाना चाहिये। द्वितीय पक्ष के लोगों का यह धार्मिक आंदोलन अधिक मुखर हुआ, क्योंकि उन्होंने अधिक प्रखर रूप से रुढ़िवादी मान्यताओं पर चोट पहुँचाई। धीरे-धीरे राजस्थान के भीलों का पारस्परिक आदिवासी जीवन लगभग हिन्दू जीवन का पर्याय बन गया और एक समय ऐसा भी आया कि भीलों ने कर्म, पुनर्जन्म, ईश्वर की

धारणा, शाकाहारी भोजन, राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, इत्यादि पर विश्वास करना प्रारंभ कर दिया। 1910 में यह आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था।

(v) **संथाल आंदोलन (1855-1858)**- संथाल भारत की एक ऐसी वन्य जाति है जिसका प्रसार अत्यंत विस्तृत क्षेत्र में है। असम, मेघालय, उड़ीसा, नेपाल तथा बांग्लादेश के अतिरिक्त इनका बहुल समाज बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में पाया जाता है। संथाल आंदोलन के प्रमुख कारण निम्न थे -

(1) महाजनों द्वारा संथाल को छल-कपट द्वारा चंगुल में फंसाने की नीति,

(2) कर्जे के लगातार बढ़ने के कारण बंधुआ मजदूरी में वृद्धि,

(3) गोरी सरकार की पुलिस द्वारा महाजनी अत्याचारों में सहयोग प्रदान करना,

(4) कोर्ट-कचहरी के माध्यम से समस्याओं के समाधान में संथालों की निरीह असमर्थता।

जोसेफ मोइसी ने अपने लेख **'सोशल मूवमेंट्स अमंग दि संथाल्स'** में लिखा है कि "संथालों को जब दामिन इ-कोह में बसने का लालच दिया गया, तो वे इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि जब तक वे इस पहाड़ी पर कब्जा कर पाएँगे तब तक सवर्ण समाज के जमींदारों तथा भूपतियों की घुसपैठ उस क्षेत्र में हो जायेगी। संथाल के सीधे तथा सरल व्यवहार का लाभ उठाकर जमींदारों एवं महाजनों ने उन्हें पूरी तरह से अपनी जमीन से बेदखल कर दिया।" जब संथालों को न्याय मिलना संभव नहीं हुआ तो मोरगो-राजाह नामक संथालों के सरदार ने पृथक् संथाल राज्य कायम करने की योजना बनाई। सिद्धू तथा कान्हू नामक दो नवयुवकों ने घोषणा की कि संथालों के कुल देवता 'सूबा ठाकुर' ने उन्हें अलौकिक आदेश दिया है कि वे क्षेत्रीय राज्य अवस्था को हटाकर संथालों का राज्य कायम करें। इस घोषणा के पश्चात् आदिवासियों के आक्रोश को एक धार्मिक आयाम मिल गया। अत: आंदोलन ने गति पकड़ ली।

30 मार्च, 1855 को अपनी माँगों के समर्थन में लगभग 35 हजार संथालों ने धनुष-बाण लेकर कलकत्ता की ओर कूच कर दिया। इस विशाल समूह को रोकने के लिए पुलिस आगे आई तो आंदोलनकारी भड़क उठे और उन्होंने एक पुलिस प्लाटून के 9 जवान तथा एक अधिकारी की हत्या कर दी। आंदोलन को कुचलने के लिए गोरी सरकार ने दमनचक्र चलाया। अनेक आंदोलनकारियों को पुलिस ने मौत के घाट उतार दिया। बहुत से आंदोलनकारी गिरफ्तार कर लिए गए। आंदोलनकारियों ने गिरफ्तारी से बचने के लिए लुक-छिपकर वार करने आरंभ कर दिये। आदिवासियों का यह आंदोलन लगभग दो वर्षों तक चला। इस दौरान जान-माल की अनन्य हानि हुई। प्रमुख नेताओं को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया तथा कुछ को फाँसी दे दी गई। अंतत: गोरी सरकार ने इस आंदोलन को पूर्णत: दबा दिया।

(vi) **झारखंड आंदोलन** - इस आंदोलन का प्रारंभ लगभग सात दशक पूर्व संथाल परगना क्षेत्र के संथालियों ने किया था। उस समय यह आंदोलन अंग्रेजों तथा स्थानीय जमींदारों से मुक्ति पाने के लिए प्रारंभ किया गया था। इस आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि छोटा नागपुर से उभरती है। **मैक्फर्सन** के अनुसार "संथालों के आक्रोश का प्रमुख कारण उनमें उभर रही स्वतंत्रता की उमंग थी। वे उस संथाली राज्य की उम्मीद लगाये बैठे थे जो उनके पूर्वजों को प्राप्त था।"

शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने पर जब 1855-58 के विद्रोह को सरकार द्वारा कुचल दिया गया तो संथाल लम्बे समय तक बिखरे एवं नैतिक रूप से टूट गये लोगों को पुनर्संगठित किया। इसमें हिन्दू जातियों के अतिरिक्त मुसलमान जुलाहों की मोमिन जाति भी शामिल थी। ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से जब क्षेत्र में साक्षरता का प्रसार हुआ तो संथालियों में सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना अतिरिक्त रूप से जागृत हुई। अब वे यह महसूस करने लगे कि उनका कोई पृथक संगठन होना चाहिये जो उनकी लड़ाई लड़ सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सन् 1920 में उन्होंने छोटा नागपुर में 'उन्नत समाज' की स्थापना की।

सन् 1936 में उड़ीसा को जब बिहार से पृथक् कर अलग राज्य बना दिया गया तो इन संगठनों की कार्यक्षमता विभाजित हो गयी और इग्नैस बैंक नामक एक आदिवासी नवयुवक ने पुनर्जागरण तथा पुनर्मिलन की अलख जगाई। पूर्व संगठनों को समाप्त कर सम्मिलित रूप से आदिवासी महासभा की स्थापना की गयी। 1939 में इस संगठन का नेतृत्व जब जयपाल सिंह के हाथों में आया तो उन्होंने इस आंदोलन को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से आदिवासियों के अतिरिक्त उन समस्त गैर आदिवासियों का सहयोग लिया जो जमींदारों से पीड़ित थे। यहीं से झारखंड मुक्ति मोर्चा स्थापित हुआ जो 1951 तक एक पूर्ण राजनैतिक दल के रूप में झारखंड पार्टी बनकर उभरा तथा पहले आम चुनाव में बिहार की 32 विधान सभाई सीटों पर विजयी हुआ। उड़ीसा में भी इस पार्टी को काफी सीटें प्राप्त हुई। इससे झारखण्डियों का मनोबल बढ़ा और यहीं से इस आंदोलन में राजनैतिक मोड़ आ गया। 1955 में यह माँग उठने लगी कि जातीयता, भाषा तथा सांस्कृतिक आधार पर भिन्नता के कारण गैर आदिवासियों की बढ़ती हुई जनसंख्या का दुष्प्रभाव झारखंड क्षेत्र पर पड़ रहा है। अत: भारतीय गणराज्य के अधीन झारखंड को पृथक राज्य का दर्जा मिलना चाहिए तथा समस्त गैर-आदिवासियों को उस क्षेत्र से बेदखल किया जाना चाहिए। इस माँग के अंतर्गत झारखंड क्षेत्र की सीमाओं को बिहार के छह जिलों, बंगाल के नौ, उड़ीसा एवं मध्यप्रदेश के भी इतने ही जिलों को शामिल किया गया। सरकार द्वारा यह माँग अस्वीकार कर दी गई। सन् 1963 में झारखंड पार्टी ने कांग्रेस के साथ विलय किया। अनेक नेता इस विलय के खिलाफ थे, अत: इस आंदोलन के तीन संगठनों- (i) अखिल भारतीय झारखंड पार्टी, (ii) झारखंड पार्टी, (iii) हल झारखंड पार्टी का निर्माण किया गया। इन विभाजनों के कारण चौथे आम चुनाव में झारखण्ड पार्टी के सभी संगठनों को करारी हार का सामना करना पड़ा। राजनीतिक दबावों तथा असहमति के आक्रोश के कारण 1973 में झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के नाम पर पुन: एक संगठन का जन्म हुआ। 1974 में इस मोर्चे ने स्थानीय जमींदारों तथा शासकीय अधिकारों से अपने संघर्ष को सर्वाधिक हिंसक रूप प्रदान किया। हजारी बाग, गिरीडीह तथा धनबाद के संथालों ने भी इस मुक्ति मोर्चे का भरपूर समर्थन किया।

9 जून, 1978 को बिरसा दिवस के अवसर पर आंदोलनकारियों ने यह निश्चय किया कि यदि 15 अगस्त, 1978 तक पृथक् राज्य की माँग पूरी न हुई तो सत्याग्रह की नीति अपनाई जाएगी। शासन द्वारा माँग पूरी नहीं की गयी जिसके कारण 25 अगस्त से आंदोलन में धरना तथा प्रदर्शन की नीति प्रारम्भ हुई। हजारों की संख्या में केन्द्रीय शासन कार्यालयों, राज्य सरकार संस्थानों, थानों, रेलवे आदि के सामने धरने दिये गये। साल के पेड़ों को काटकर रास्ते जाम किये गये। सरकारी आँकड़ों के अनुसार वन प्रतिष्ठान को लगभग 6 लाख का नुकसान हुआ। नवम्बर में गोलीबारी की दो घटनाएँ हुई। 1979 में यह राजनैतिक आंदोलन धूमिल पड़ गया। 1980 के चुनाव में झारखण्ड मुक्ति मोर्चे को कांग्रेस के सहयोग से 13 सीटों पर विजय प्राप्त हुई, जिसके कारण इस आंदोलन में थोड़ा-सा जीवन का संचार हुआ, किंतु कोई विशेष आधार नहीं बन पाया।

(vii) **गोंडवाना आंदोलन (1940-1982)-** सतपुड़ा की पहाड़ियों तक फैला तथा गोदावरी के किनारे से लगा सम्पूर्ण क्षेत्र गोंडों की सम्पत्ति मानी जाती है। गोंड भारत की सर्वाधिक जनसंख्या वाली जाति है। बस्तर, चाँदा, अदीलाबाद से लेकर इनका विस्तार दुर्ग, राजनांदगाँव तक है। 1855-57 के आस-पास जब भारत का अधिकांश वन्यजातीय समाज अंग्रेजों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ था, किन्तु 1940 के बाद नगरीकरण के विस्तार के कारण अन्य कृषक जातियाँ गोंडों के वनों तथा भूमि क्षेत्रों पर बसने के लिए आई तो गोंडों का विरोधी स्वर गूँज उठा। **डॉ. के.एम. सिंह** के अनुसार, "दण्डकारण्य पर्यावरण की संरचना समझने पर यह स्वमेव स्पष्ट हो जाता है कि गोंडवाना आंदोलन भूमि के बजाय वनों पर केन्द्रित था।"

प्रारंभ में विद्रोह की मशाल अदीलाबाद में गोंडों ने जलायी। कुर्मी भीमू नामक युवक ने इस विद्रोह को 'वनों के संरक्षण' के नाम पर उठाया। उसने गोंडों के अधिकार की लड़ाई को प्राथमिक स्तर पर केवल शोषण-मुक्ति से सम्बन्धित किया। उसने तीन प्रमुख बातों पर बल दिया -

(1) जंगल अधिकारियों की घुसपैठ पर पाबंदी लगाई जाये।

(2) खेतों में हल चलाने एवं चारागाहों में पशुओं के चराने का नि:शुल्क अधिकार होना चाहिए।

(3) अपने जंगल में रहने की छूट होनी चाहिए।

सन् 1947 के विभाजन के पश्चात् पूर्वी पाकिस्तान से भागकर आये शरणार्थियों के लिए जब 1951-52 के दौरान इस क्षेत्र का चयन किया गया तो गोंडों में असुरक्षा की भावना घर कर गयी। 1963 में राजा नरेश सिंह, नारायण सिंह उइके तथा आदिवासी सेवा मंडलों ने इस समस्या के समाधान हेतु शासकीय हस्तक्षेप की माँग की, किन्तु समस्या का कोई समाधान नहीं निकाला जा सका। 1940 के कुर्मी आंदोलन के दमन के लगभग 30 वर्ष पश्चात् 1970-71 में गोंडों ने अपना आन्दोलन पुन: प्रारंभ किया। गोंडों को अपने वनों पर हक मिलना चाहिए, इसकी मान्यता के कारण इस आंदोलन को गोंडवाना नाम दिया गया।

बस्तर के गोंडों ने तो गोंडवाना के नाम पर एक बार तत्कालीन राजा प्रवीरचन्द्र भंजदेव के नेतृत्व में दस हजार की संख्या लेकर तीर-तलवारों सहित स्वतंत्र राज्य की घोषणा कर दी थी। सरकार ने गोंडों की इस माँग को सख्ती से दबा दिया। इस मुठभेड़ में प्रवीरचन्द्र भंजदेव सहित अनेक गोंड मारे गये जिनसे गोंडों का यह आन्दोलन क्षीण पड़ गया। गोंडवाना आंदोलन मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र तथा आन्ध्रप्रदेश की सीमाओं पर उभरा। अनेक हिंसक मुठभेड़ों के बाद भी गोंडवाना की समस्या आज तक ज्यों की त्यों बनी हुई है।

(2) स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के वन्यजातीय आंदोलन

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में जो वन्यजातीय आन्दोलन हुए उनकी विवेचना संक्षेप में इस प्रकार है -

(i) **उदयाचल (बोडो) आन्दोलन** - आसाम के गोलपाड़ा, कामरूप तथा दरँग जिलों में निवास करने वाली बोदो जनजाति द्वारा चलाया गया आन्दोलन उदयाचल आन्दोलन अथवा 'बोदो आन्दोलन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आसाम के अन्य निवासियों की तुलना में बोदी समाज सदा ही पिछड़ा हुआ, निरक्षर एवं शोषित रहा है।

शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का कोई अन्य सशक्त माध्यम न मिलने पर समस्त बोदो भाषी जनजातीय व्यक्तियों को भाषाई आधार पर संगठित किया गया और 1950 से यह आन्दोलन अस्तित्व में आया। यह आन्दोलन प्राथमिक स्तर पर बोदो साहित्य सभा के माध्यम से बोदो समाज को संगठित करता रहा और इस माँग पर बल देता रहा कि इस भाषा को विद्यालयीन स्तर पर शिक्षा का माध्यम बनाया जाए।

प्रदर्शन, घेराव एवं माँग पत्रों के माध्यम से आन्दोलन को गति प्रदान की गई। द्वितीयक स्तर पर राजनैतिक अधिकारों के अन्तर्गत पृथक राज्य की माँग ने जन्म लिया। ब्रह्मपुत्र नदी के सम्बन्धित क्षेत्रों से लेकर भूटान तथा अरुणाचल की घाटियों तक पृथक् राज्य की माँग के आन्दोलन होते रहे।

1972 तक आते-आते इस आंदोलन ने रोमन लिपि को लेकर एक नया मोड़ लिया। जब आसाम में असमिया भाषा को समस्त विश्वविद्यालयों में प्रमुख दर्जा मिला तो बोदो समाज ने भी अपनी भाषा तथा पृथक लिपि को लेकर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। 1963 में जहाँ राज्य सरकार ने सेकण्डरी कक्षाओं तक बोदो भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार कर लिया वहीं विश्वविद्यालयीन तौर पर इसे स्वीकार नहीं किया गया। जब असमिया भाषा को राज्य का दर्जा दिया तो बोदो समाज ने अपनी भाषा और पृथक लिपि को लेकर आन्दोलन किये।

1974 में रोमन लिपि की माँग के संदर्भ में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के हस्तक्षेप के बाद बोदो लोगों ने देवनागरी लिपि पर समझौता कर लिया किन्तु पृथक् उदयाचल राज्य की माँग बरकरार रखी। पी.टी.सी.ए. जैसे संगठनों तथा बोदो साहित्य सभी एवं बोदो छात्र सत्याग्रहों के माध्यम से होने वाले आन्दोलनों पर पुलिस के अत्याचारों का दबाव बढ़ गया। पृथक राज्य का आन्दोलन गुप्त रूप से अब भी चल रहा है।

(ii) **नागा विद्रोह (1948-1975)**- पृथकतावादी शक्तियों के बल पर भारत से अलग एक नागालैण्ड की माँग ही इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य रहा है। नागा विद्रोह का इतिहास कोहिमा में नागर-क्लब के नाम पर एक संगठन के सन् 1918 में स्थापित होने के साथ प्रारंभ होता है। नागा पहाड़ियों पर यह प्रथम महत्वपूर्ण संगठन था, जिसकी छात्रछाया में नागा जनजाति को एक सामान्य धरातल उपलब्ध हुआ था। नागा-विद्रोही अपने आप को भाषा, संस्कृति व धर्म के आधार पर हिन्दू तथा मुसलमानों से किसी प्रकार भी संबंधित नहीं मानते थे। इसलिए वे हिन्दू एवं मुसलमान-बहुल भारत के साथ अपना किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे। यही कारण है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नागा जनजाति एक संक्रमणकालीन स्थिति से गुजर रही थी, क्योंकि वह अंग्रेजों से प्राप्त संरक्षण एवं विशेषाधिकार की सुविधाओं की आदी बन चुकी थी।

1947 में स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् जब पाकिस्तान बना तो नागाओं में भी यह विश्वास पनपा कि वे भी नागालैण्ड के हकदार हैं। अत: प्राथमिक स्तर पर उनकी माँग यह रही कि भारत में शामिल होने पर उनकी स्वायत्तता बनी रहनी चाहिए। द्वितीयक उन्होंने अपनी इस माँग को नकारते हुए भारतीय गणराज्य में शामिल होने से असहमति इस आधार पर व्यक्त की कि 40 करोड़ भारतीयों के बीच 10 लाख नागाओं की अस्मिता ही समाप्त हो जायेगी। 14 अगस्त, 1946 को क्षेत्रीय स्तर पर नागाओं ने अपने आपको स्वतंत्र देश के रूप में घोषित कर दिया और यहीं से नागा-आंदोलन नागा विद्रोह के रूप में पनपा। 1951 में प्रथम आम चुनाव का नागाओं ने पूर्णत: बहिष्कार किया। 1954 में उन्होंने एक स्वायत्त सरकार 'हाँगकिंग' की घोषणा की। नागाओं का यह आंदोलन 1954 में भूमिगत आन्दोलन में परिवर्तित हो गया और इसमें हिंसक तत्वों का प्रवेश हुआ। 1957, 1958 एवं 1959 में लगातार तीन नागा सम्मेलन हुए और अन्तत: यह तय किया गया कि पृथक् राज्य न सही, भारतीय गणराज्य में ही पृथक् राज्य की स्थापना का ही अधिकार मिल जाए। 1960 में सरकार ने उनकी यह माँग स्वीकार कर ली और नागालैण्ड को भारत के सोलहवें राज्य के रूप में मान्यता प्रदान की गयी।

भूमिगत नागा नेताओं को यह समझौतावादी रुख पसंद नहीं आया और उन्होंने अपना आन्दोलन जारी रखा जिसके कारण स्थिति बिगड़ती चली गयी। धीरे-धीरे आंदोलन तीन भागों में विभक्त हो गया। 1969 में शासन तथा भूमिगत नेताओं के बीच समझौता हुआ और यह तय किया गया कि शान्तिमय तरीके से इस समस्या का समाधान निकाला जाए। 1975 में शिलांग समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत यह तय हुआ कि नागा विद्रोही भारतीय संविधान को स्वीकार करेंगे तथा भूमिगत नेताओं का आत्मसमर्पण होगा। नागा विद्रोहियों पर किसी प्रकार की वैधानिक कार्यवाही नहीं की जायेगी। इस समझौते को नागा नेताओं ने स्वीकार नहीं किया। वृहद स्तर पर चला नागा विद्रोह तो अब समाप्त हो चुका है, किन्तु नागा विद्रोहियों के अनेक साथी अब भी विद्रोह की आवाज को पुनर्जागृत करने का प्रयास करते हैं। इस आन्दोलन के अब तक के इतिहास ने अनेक नागा नेताओं को उभारा जिनमें फिजी, रिशांग-किशांग लोंगशिय शैजा के नाम प्रमुख हैं।

(iii) **राज मोहिनी देवी सुधार आन्दोलन (1951-1956)**- 1951 में सरगुजा तथा उससे लगे क्षेत्रों में लगभग अकाल की स्थिति पैदा हो गयी थी। ऐसी स्थिति में माँझी गोण्ड जाति की एक बूढ़ी महिला ने अपनी जनजाति को एक सुधारात्मक राह दिखाकर जो प्रेरणा दी, उससे उस क्षेत्र में एक सुधारात्मक आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ जिसे राज मोहिनी देवी सुधार आन्दोलन के नाम से पुकारा गया।

राज मोहिनी देवी के संदर्भ में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। विलियम एक्का ने अपने लेख 'रिफार्म मूवमेंट ऑफ राजमोहिनी देवी' में अनेक किंवदन्तियाँ का उल्लेख किया है। एक किंवदन्ती के अनुसार अकाल से पीड़ित राज मोहिनी देवी 10 जुलाई, 1951 को जब जंगल में खाने योग्य कुछ भी प्राप्त न कर सकी तो दु:खी होकर रोने लगी। उसे यकायक दिव्य दृष्टि मिली जिसमें महात्मा गाँधी ने उसे अपनी जीवन-शैली

तथा सत्य-अहिंसा की शिक्षा की ओर प्रेरित किया। वहाँ से लौटकर आने पर उसने 21 दिन का उपवास रखा। संयोगवश 22 दिन पूर्ण होने पर वर्षा की फुहारें पड़ीं और राजमोहिनी नामक उस महिला को लोगों ने राज मोहिनी देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। उस क्षेत्र के गोण्ड, नागसिया, पनिका व खेरवार लोगों ने इस आन्दोलन के सदस्यों को चार नियमों-शराब बन्दी, माँसाहारी का त्याग, नित्य स्नान तथा सत्यवादिता का पालन करने पर जोर दिया था। इस आंदोलन के प्रेरणास्रोत महात्मा गाँधी थे। अत: 1951 में उन्हीं के नाम पर बापू धर्म सभा आदिवासी सेवा मण्डल की स्थापना की गयी, इस मण्डल ने वनवासियों में नव चेतना जागृत की और लोगों को यह समझाया कि गरीबी का कारण शराब सेवन तथा उससे उत्पन्न समस्याएं ही हैं। राज मोहिनी देवी और उसके अनुयायियों के प्रयास से शराब के अनेक ठेके बन्द हो गये। धर्म पर सच्ची आस्था के कारण तांत्रिकों, ओझाओं के जाल से आदिवासियों को मुक्ति मिली। यह आन्दोलन इतना बढ़ गया कि सेवा मण्डल के 24 मण्डल स्थापित हो गये, किन्तु अनेक स्वार्थी तत्वों ने व्यक्तिगत लाभ के लिए राज मोहिनी देवी के आन्दोलन का दुरुपयोग करना प्रारंभ कर दिया। धीरे-धीरे कुछ अन्य लोगों का भी विश्वास राज मोहिनी देवी से इसलिए भी उठ गया कि वह उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने चमत्कारों से नहीं कर पाती थीं। इस प्रकार धीरे-धीरे यह आन्दोलन अपनी अस्मिता खोने लगा। इस आन्दोलन के समर्थक दो भागों-भगतों और संगतों में विभाजित हो गये। इस विभाजन के कारण आन्दोलन का आधार ही नष्ट हो गया।

(iv) **मिजो आन्दोलन** (1961-1986)- लुशाई पहाड़ी पर निवास करने वाले जनजातीय लोग अपने आपको मिजो कहते हैं। इनकी मूल जनजाति पहले कूकीविन के नाम से जानी जाती थी, किन्तु लुसाई पर्वत पर निवास करने के कारण मिजो घाटी से संबद्ध होकर ये अपने आपको मिजो कहने लगे। भारत की आजादी के पश्चात नागाओं की भाँति समाज ने भी समकालीन पृथकतावादी आन्दोलन चलाये, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। भारत सरकार ने जब नागा-बहुल क्षेत्रों में असमिया भाषा को लागू करने का विचार रखा तो समीपवर्ती क्षेत्रों के मिजो समाज भी सशक्ति हो उठे कि उनकी भी पारस्परिक भाषा समाप्त कर दी जायेगी। अत: भाषा को आधार बनाकर प्रथम बार एक आन्दोलन का जन्म हुआ जिसे मिजो आन्दोलन कहते हैं। इस आन्दोलन का प्रभाव खासी तथा गारी क्षेत्रों पर भी पड़ा। भाषा के आधार पर आन्दोलनकारियों ने पृथक् राज्य की माँग की। ईआईटीयू तथा एपीएचएलसी के संगठनों के माध्यम से यह आन्दोलन गति पकड़ने लगा। 22 नवम्बर, 1961 को लालडेंगा ने उत्साहित किया कि 1951 में हम लोगों ने सशर्त भारतीय गणराज्य में शामिल होने का फैसला किया था कि 10 वर्ष बाद हम अपना भविष्य स्वयं निर्धारित करेंगे। अत: अब (1961) वह समय आ चुका है जब हमें नियोजन मिलना चाहिए।

1965 तथा 1966 में आसाम से पृथक् होने की माँग लगातार बढ़ती रही। इस समस्या के समाधान हेतु पारस्कर आयोग बैठाया गया, किन्तु कोई हल नहीं निकला। इसी बीच लालडेंगा ने मिजो नेशनल आर्मी के नाम पर अनेक उग्रवादी लोगों की एक सेना खड़ी कर ली। इस सेना एवं केन्द्रीय सैनिक कर्मचारियों के बीच अनेक मुठभेड़ें हुईं, जिसमें कई लोग मारे गये। जब स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ तो उस क्षेत्र को सेना के हवाले कर दिया गया। 1968 तक गुरिल्ला गतिविधियाँ लगातार रहीं और सरकार ने आन्दोलनकारियों में फूट डालने की नीति अपनाई। सरकार की फूट डालने की नीति के परिणामस्वरूप यह आन्दोलन कमजोर पड़ने लगा और 1968 में लाल डेंगा तथा उनके साथियों ने सीमा पार करके पूर्वी पाकिस्तान में शरण ली और वहीं से भूमिगत गतिविधियों का संचालन करने लगे। 1970 में जब मेघालय, मणिपुर तथा त्रिपुरा को पृथक् राज्यों का दर्जा मिला तो मिजोरम की माँग पुन: उभरकर सामने आई। सरकार ने मिजो पहाड़ी क्षेत्रों को केन्द्र शासित क्षेत्र का दर्जा देना स्वीकार कर लिया, किन्तु लालडेंगा और उनके अन्य साथियों ने इसे मंजूर नहीं किया। 1972 में जब पूर्वी पाकिस्तान, बांग्लादेश भारत का समर्थक होने के कारण लालडेंगा के सारे मोर्चे जो बांग्लादेश में थे, समाप्त हो गये। लालडेंगा मजबूर होकर पश्चिमी पाकिस्तान चले गये और यहीं से अपनी हिंसक गतिविधियों का संचालन करने लगे।

1 जुलाई, 1976 को एक समझौता हुआ जिसके अनुसार एक माह के अन्दर भूमिगत नेताओं से समर्पण की आशा की गई। समझौते के अनुसार सभी प्रमुख नेताओं ने समर्पण कर दिया किन्तु लालडेंगा नहीं माने और वे भूमिगत होकर इंग्लैंड भाग गये तथा वहीं पर उन्हें राजनीतिक शरण प्रदान कर दी गयी। 1984 में जब राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने पंजाब, आसाम तथा मिजो समस्या पर नरम रुख अपनाते हुए अनेक समझौते किये। उन्होंने ब्रिटेन से लाल डेंगा को वार्ता के लिए आमंत्रित किया तथा भारतीय गणराज्य में ही मिजोरम को पृथक् राज्य बनाने की घोषणा कर दी। परिणामस्वरूप 1986 में मिजोरम पृथक् राज्य बन गया। नवम्बर, 1986 में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री ललथंगहौला को हटाकर लालडेंगा को मुख्यमंत्री बनाया गया। इस प्रकार मिजो आन्दोलन पूर्णत: समाप्त हो गया।

(v) **चिपको आन्दोलन (1973)**- उत्तराखण्ड से लगे इलाकों में अनेक आन्दोलन हुए जो गढ़वाल तथा कुमाऊँ क्षेत्रों के ग्रामवासियों ने किये, इसलिये ये आन्दोलन कृषक आन्दोलन की श्रेणी में आये, किन्तु पिछले कुछ वर्षों में एक नया आन्दोलन उभरकर आया है, जिसका मूल सम्बन्ध भोटिया जनजाति से है। इस आन्दोलन का जन्म-स्थल चमोली जंगलों से आच्छादित है। इस क्षेत्र के भोटिया जनजाति के लोग अपनी परम्परानुसार जब एक पेड़ काटते थे तो एक नया पौधा जंगल में कहीं न कहीं अवश्य लगाते थे। अत: जंगलों के काटे जाने के बावजूद जंगलों की कमी नहीं होने पाती थी। जड़ी-बूटियाँ, सूखे मेवे तथा शहद जैसी चीजें भोटिया समाज को जंगलों से प्राप्त होती थीं। इस क्षेत्र में जब लकड़ी के ठेकेदारों और जंगलों के अधिकारियों का आवागमन बढ़ा तो जंगल के अधिकार क्षेत्र को लेकर अनेक समस्याओं ने जन्म लिया।

1962 में चीनी आक्रमण के पश्चात् हिमालय के क्षेत्रों में जब सड़कों का निर्माण कार्य शुरू हुआ तो चमोली के लोगों के सामने वास्तविक समस्या उपजी। आवागमन की सुलभता के कारण व्यापारियों ने सरकार से पेड़ काटने के अधिकार लिए और इस प्रक्रिया में भोटिया लोगों की सरलता का लाभ उठाकर अनिर्धारित वृक्षों को भी काटना शुरू कर दिया, जिसके कारण अब तक शांत बैठे भोटिया समाज का आक्रोश भड़का और उन्होंने वनाधिकारियों एवं लकड़ी काटने वाले मजदूरों का विरोध करना प्रारंभ कर दिया, किन्तु कोई सुनवाई नहीं होने के कारण भोटिया समाज ने हथियार डाल दिये।

1970 के अलकनंदा बाढ़ में जब पूरा बेलाकूछी गाँव बह गया तो पर्यावरण के इस समस्याजनक पहलू पर पूरे क्षेत्र के लोगों का ध्यान गया। इसी बीच वन विभाग ने एक ओर भोटिया लोगों को बैलों का जुआ बनाने के लिये भी जंगल से लकड़ी काटने की अनुमति नहीं दी तथा दूसरी ओर इलाहाबाद की एक कम्पनी को खेलकूद की सामग्री बनाने हेतु लकड़ी काटने का अधिकार दे दिया। वन विभाग के अधिकारियों के इस कार्य ने आग में घी का काम किया। इस घटना के परिणामस्वरूप दसौली ग्राम स्वराज संघ की स्थापना की गयी और चंडी प्रसार भट्ट के नेतृत्व में जंगल बचाओ का नारा बुलंद किया गया। सर्वोदयी विचारधारा में पनपे इस आन्दोलन ने अंतत: यह फैसला सुनाया कि वे कोई हिंसक नीति न अपनाकर सत्याग्रह पर बल देंगे। अत: पेड़ काटने के लिए आये अधिकारियों व मजदूरों से लड़ाई-झगड़ा करने की अपेक्षा पेड़ से चिपक जाने की नीति अपनाई ताकि आरी या कुल्हाड़ी चलाने वाले व्यक्ति के हाथ रुक जाए। अप्रैल 1973 में त्रिजुगी नारायण तथा नम्बर 1973 में रैली के जंगलों की नीलामी सरकार ने की तो औरतों ने जंगलों को बचाने का बीड़ा अपने कंधों पर उठाया। वन विभाग ने जब पुन: रैली के जंगलों की नीलामी 1974 में की तो इस क्षेत्र का भोटिया समाज खुलकर सामने आ गया। रैली के विद्रोह का संचालन कर रही महिला मंडल दल की प्रमुख श्रीमती गौरा देवी ने यह आवाज उठायी कि जंगल हमारा मायका है, हम उसे अपनी जान की कीमत चुकाकर भी बचायेंगे। रैली की महिलाओं की साहस की गाथा धीरे-धीरे पूरे क्षेत्र में गढ़वाल तथा कुमाऊँनी इलाकों में फैल गयी और चिपको आन्दोलन हिमालय की चोटियों पर गूँज उठा। महिलाओं ने पेड़ों से राखी बाँधकर उनके प्रति अपनी संवेदना प्रकट की थी। श्री सुन्दरलाल बहुगुणा के आगमन से इस आन्दोलन को नयी दिशा प्राप्त हुई। अनशन एवं पद यात्राओं के माध्यम से भट्ट तथा बहुगुणा ने इस आन्दोलन को नया आयाम दिया।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. वन्यजातीय आंदोलन के कारण स्पष्ट कीजिए।
2. ताना भगत आंदोलन और नागा विद्रोह का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. खानदेश आंदोलन पर टिप्पणी लिखिए।
2. बिरसा मुण्डा आंदोलन की जानकारी लिखिए।
3. मिजो आंदोलन की जानकारी लिखिए।
4. 'चिपको आंदोलन' का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. वन्य जातीय आंदोलन के कारण .... हैं-

   (अ) सामाजिक समस्याएँ (ब) आर्थिक समस्याएँ

   (स) सांस्कृतिक समस्याएँ (द) उपरोक्त सभी

2. भारतीय वन्यजातीय आंदोलन में पहला आंदोलन खानदेश आंदोलन सन् .... में हुआ-

   (अ) 1817 (ब) 1840 (स) 1871 (द) 1872

3. बिरसा मुण्डा आंदोलन .... तक चला-

   (अ) 1801-1810 (ब) 1850-60 (स) 1890-1907 (द) 1901-1910

4. संथाल विद्रोह .... में हुआ।

   (अ) 1801 (ब) 1830 (स) 1855 (द) 1901

उत्तर - 1. (द), 2. (अ), 3. (स), 4. (स)।



15

जनजातीय विकास हेतु संवैधानिक प्रावधान एवं शासन द्वारा संचालित कल्याण कार्यक्रम

(CONSTITUTIONAL PROVISIONS FOR TRIBAL DEVELOPMENT AND WELFAFE PROGRAMS RUN BY GOVERNMENT)

समाज कल्याण के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भारतीय संविधान में किया गया है, स्वतंत्रता-पूर्व 'आदिम जनजाति', 'पिछड़ी जनजाति' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था। किन्तु इसकी कोई एक सार्वभौमिक परिभाषा नहीं है परन्तु स्वर्गीय डी.एन. मजूमदार की परिभाषा को अधिकतम स्वीकृति प्राप्त है। उनके अनुसार, जनजाति "प्रादेशित सम्बद्धता अन्तर्विवाही, कार्यविशिष्टीकरण का अभाव, जनजातीय अधिकारियों द्वारा प्रशासित, वंशानुगत अथवा अन्य, भाषा अथवा बोली में जुड़े हुये, दूसरी जनजातियों अथवा जातियों से सामाजिक दूरी लिये परन्तु जाति संरचना में व्याप्त किसी दाग के बिना, जनजातीय परम्पराओं, रीतियों एवं विश्वासों का अनुसरण करने वाला, विदेशी स्रोतों से विचार ग्रहण करने के बारे में अनुदार तथा इस सबसे ऊपर वंशीय समरूपता एवं प्रादेशिक एकीकरण के प्रति जागरूक सामाजिक समूह है। जनजातीय उद्‌भव, जीवन का आदिम ढंग, दूरस्थ एवं कठिनता से पहुँच योग्य क्षेत्रों में आवास तथा सभी रूपों में सामान्य पिछड़ापन विभिन्न राज्यों में जनजातियों की सीमान्य विशेषताएँ हैं।" संविधान की धारा 341 के अधीन कुछेक पिछड़े वर्गों/समुदायों जो अस्पृश्यता एवं सामाजिक अयोग्यताओं के शिकार थे, को अनुसूचित जाति घोषित किया गया। संविधान के लागू होने के पश्चात्, भारत के राष्ट्रपति द्वारा अनुसूचित जातियों की सूची संविधान आदेश, 1950 के अन्तर्गत विज्ञापित की गई है।

भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के अनुसार, मनु ने पुरोहित, शिक्षक, योद्धा, व्यापारी एवं श्रमिक के चतुर्वर्ण विचारणा को समाज के सभी वर्गों को समान पद, समान मान एवं समान मूल्य देने के विचार से प्रतिपादित किया था। परन्तु परिवर्तन की आँधी एवं इतिहास की लहरें ने कर्म पर आधारित चतुर्वर्ण की विचारणा को वंशानुगत आधारित जजमानी प्रणाली में परिवर्तित कर दिया जो अन्ततः देश के लिए घोर अभिशाप सिद्ध हुआ। इन अस्पृश्य एवं वंचित वर्गों को अनुसूचित जाति जिस शब्द का प्रयोग भारत सरकार कानून, 1935 में सर्वप्रथम हुआ, नामांकित किया गया। अप्रैल, 1936 में ब्रिटिश सरकार ने कुछेक जातियों, वंशों एवं कबीलों को तत्कालीन आसाम, बंगाल, बिहार, मुम्बई, चेन्नई, उड़ीसा, पंजाब एवं संयुक्त प्रदेश के प्रान्तों में अनुसूचित जातियों के रूप निर्दिष्ट करते हुए भारत सरकार (अनुसूचित जाति) ने आदेश 1936 जारी किया।

सेवाओं में आरक्षण (Reservation in Service)

संविधान की धारा 335 में व्यवस्था की गई है कि केन्द्रीय तथा राज्य विषयों से सम्बन्धित सेवाओं एवं पदों पर नियुक्ति करते समय, प्रशासन की दक्षता को ध्यान में रखते हुए, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के दावों को ध्यान में रखा जाएगा। धारा 16 (4) के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों जिनका सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व नहीं है, के लिए आरक्षण की अनुमति दी गई है। इन व्यवस्थाओं के अनुसरण में सरकार ने अपने अधीन सेवाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया है। सरकार निजी क्षेत्र की इकाइयों को अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिये स्थान आरक्षित

करने के बारे में निर्देश देने के औचित्य पर विचार कर रही है। भर्ती प्राधिकरणों द्वारा सरकार की समीक्षा हेतु वार्षिक विवरणिका प्रस्तुत की जाती है। विशेष प्रतिनिधित्व आदेशों की अनुपालना को सुनिश्चित करने के लिये सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में ताल-मेल अधिकारी नियुक्त किये गये हैं।

संविधान की सातवीं अनुसूची की राज्य सूची के मद 41 द्वारा प्रदत्त शक्ति के अंतर्गत राज्य सरकारों ने भी इन वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व देने के लिये पदों को आरक्षित करने के बारे में नियमों का निर्माण किया है। राज्य सेवाओं में आरक्षण राज्य सरकारों का अनन्य क्षेत्राधिकार है।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग (Commission for Scheduled Castes and Scheduled Tribes) — संविधान के अनुच्छेद 338 में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था दी गई है जो संविधान के अंतर्गत इन जातियों के प्रदत्त सुरक्षाओं के सम्बन्ध में भी सभी विषयों की जाँच करेगा एवं राष्ट्रपति को निर्धारित समयों पर इन सुरक्षाओं की अनुपालना करने की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। इस अनुच्छेद के अनुसरण में राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर एक विशेष अधिकारी जिसे सामान्यतः अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयुक्त कहा जाता है, नियुक्त किया जाता है। समस्या की विशालता को देखते हुये सरकार का विचार था कि आयुक्त के अतिरिक्त, इन विषयों को एक उच्च स्तरीय आयोग जिसमें लोक जीवन में ख्याति प्राप्त व्यक्तियों को सम्मिलित किया जायेगा को सुपुर्द किया जाये। परन्तु आयोग विशेष अधिकारी की सत्ता को कम नहीं करेगा।

तद्नुसार, सरकार ने इस कार्य हेतु एक आयोग की स्थापना करने का निर्णय लिया जिसमें एक चेयरमैन तथा संविधान की धारा 338 के अंतर्गत नियुक्त विशेष अधिकारी सहित चार सदस्य होंगे। आयोग के चेयरमैन तथा सदस्यों का कार्यकाल चार वर्ष होगा। इसका मुख्यालय दिल्ली में होगा।

प्रस्तावित आयोग के कार्य व्यापक रूप में विशेष अधिकारों को संविधान के अनुच्छेद 338 के अंतर्गत प्रदत्त कार्यों के समरूप होंगे। जो निम्न प्रकार हैं :

(i) संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को प्रदत्त सुरक्षाओं संबंधित सभी विषयों की जाँच करना। इसमें अन्य बातों सहित इन जातियों के लिये लोक सेवाओं में अनुबंधित आरक्षणों के अनुपालन की विधि की समीक्षा भी सम्मिलित होगी।

(ii) अस्पृश्यता एवं अन्य अनुसूचित भेदभाव के उन्मूलन के विशेष संदर्भ में नागरिक अधिकार कानून, 1955 की समीक्षा करना।

(iii) उन सामाजिक आर्थिक एवं अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों का पता लगाना जिनके कारण इन जातियों से संबंधित लोगों के विरुद्ध अपराध किये जाते हैं तथा कानूनी बाधाओं को दूर करके ऐसे अपराधों की तुरन्त जाँच पड़ताल सुनिश्चित करने हेतु उपर्युक्त उपचारात्मक उपायों की अनुशंसा करना।

(iv) अनुसूचित जाति अथवा जनजाति के किसी सदस्य को प्रदत्त किसी सुरक्षा से वंचित रखने के बारे में व्यक्तिगत शिकायत की पूछताछ करना।

आयोग अपने कार्यों को निष्पादित करने के लिये अपनी कार्य प्रक्रिया का स्वयं निर्धारण करेगा। सभी मंत्रालय एवं विभाग आयोग द्वारा वांछित सूचना एवं प्रलेख प्रस्तुत करेंगे। भारत सरकार राज्य सरकारें एवं संघ प्रदेशों के प्रशासनों से आयोग को पूर्ण सहयोग देने की अपेक्षा रखती है। आयोग राष्ट्रपति को अपने क्रियाकलापों एवं अनुशंसाओं सहित वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। परन्तु यदि आयोग चाहे तो किसी समय भी अपने कार्य-क्षेत्र से संबंधित किन्हीं मामलों पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकता है। सरकार इस वार्षिक रिपोर्ट तथा उसकी सिफारिशें पर की गई कार्यवाही अथवा सिफारिशों को स्वीकार न करने के कारणों की व्याख्या करते हुए एक ज्ञापन संसद के प्रत्येक सदन के पटल पर रखेगी। आयोग की 1978 में स्थापना

की गई। इसकी सहायता के लिये देहली में एक सचिवालय एवं राज्यों में समूह क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये गये है। बारह क्षेत्रीय कार्यालयों के अध्यक्ष निदेशक तथा पाँच के उप-निदेशक कहलाते हैं। सचिवालय का अध्यक्ष सरकार के सचिव पद का एक अधिकारी होता है।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग को पुनः नामांकित करके राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग कहा गया है। यह इन जातियों के विकास स्तरों एवं नीतियों के मोटे मामलों पर परामर्शीय निकाय के रूप में कार्य करेगा। इसमें एक चेयरमैन एवं ग्यारह अन्य सदस्य होंगे तथा जो समाज मानव शास्त्र, समाज कार्य एवं अन्य संबद्ध सामाजिक विज्ञानों में विशेषज्ञों को भी सम्मिलित किया जा सकता है। चेयरमैन एवं सदस्यों का कार्यकाल सरकार द्वारा निश्चित किया जायेगा, बशर्ते कि यह सामान्यतया तीन वर्ष से अधिक नहीं होगा। राष्ट्रीय आयोग के कार्य निम्नलिखित हैं :

(1) अस्पृश्यता की सीमा एवं इसके प्रभावों तथा इसके कारण उत्पन्न सामाजिक भेदभाव तथा वर्तमान उपायों की प्रभाविता का अध्ययन करना एवं अन्य उपाय अनुशंसित करना।

(2) इन समूहों का राष्ट्र की मुख्य धारा में एकीकरण सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के विकास के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करना। इनमें सामाजिक-आर्थिक विकास, शिक्षा, वाणिज्य, व्यापार, कला साहित्य, भाषा, आवास, संचार, कृषि, वानिकी, बागवानी, मत्स्य, पुनर्वास, प्रदूषण एवं पर्यावरण के क्षेत्रों में अध्ययन सम्मिलित होंगे।

(3) इन जातियों के विकास के किसी पहलू पर सामान्य नीतियों का विकास करने हेतु अन्य ऐसे कार्य भी आयोग को सुपुर्द किये जा सकते हैं जिन्हें केन्द्रीय सरकार उचित समझती है।

(4) अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों से संबंधित व्यक्तियों के प्रति किये गये अपराधों के सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों का अध्ययन करना तथा ऐसे अपराधों की तुरन्त जाँच सुनिश्चित करने हेतु उपयुक्त उपचारी उपायों को अनुशंसित करना।

जनजातीय विकास कार्यक्रम
(Tribal development Programmes)

संविधान निर्माताओं ने जनजातियों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए संविधान की पाँचवीं अनुसूची में कल्याण कार्य की दो वृहद भागों की चर्चा की है - (i) सुरक्षा और (ii) विकास। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि विकास कार्य के समय जनजातियों के हितों को नुकसान नहीं पहुँचना चाहिए। उदाहरणार्थ जनजातीय क्षेत्र में विकास कार्य के लिए सड़कों का निर्माण करना यदि आवश्यक हो तो उस रास्ते में रहने वाले आदिवासी ग्रामों को उजाड़ा नहीं जाये।

विकास कार्य के लिए जनजातीय क्षेत्रों में आदिवासी विकास प्रखण्ड (Tribal Development Block) का निर्माण 1952 में ही किया गया। इन विकास प्रखण्डों को सामान्य प्रखण्डों की तुलना में काफी धन दिया गया, जिससे आदिवासी क्षेत्र में विकास और कल्याण का कार्य समुचित ढंग से हो सके। आदिवासी क्षेत्रों में विकास कार्य को पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में खासकर ज्यादा प्रोत्साहन दिया गया। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में जनजातियों के कल्याण के लिए निम्नलिखित उद्देश्य घोषित किये गये -

(1) जनजातीय और अन्य क्षेत्रों के विकास स्तर को कम करना।

(2) जनजातीय समुदायों के जीवन स्तर को ऊपर उठाना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न उपायों से धन की व्यवस्था की गई। इन उपायों में प्रमुख हैं-

(i) राज्य स्तर की योजना,

(ii) केन्द्रीय मन्त्रालयों का योगदान,

(ii) गृह मन्त्रालय का विशेष आर्थिक अनुदान, और

(iv) अन्य सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं का अनुदान।

इन उपायों के द्वारा **पाँचवीं पंचवर्षीय** योजना में 562 करोड़ 69 लाख रुपये का प्रावधान किया गया था। इसमें से 29.60 प्रतिशत आदिवासी क्षेत्र में कृषि सम्बन्धी कार्यों पर खर्च किया गया। आदिवासी क्षेत्रों में सामूहिक और सामाजिक कार्यों पर 21.80 प्रतिशत खर्च किया गया तथा बाकी धन आदिवासी क्षेत्रों के आवागमन, उद्योग, सहयोग समितियों एवं खनिज विकास पर खर्च किया गया। इस प्रकार पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत आर्थिक उत्थान के लिए आदिवासियों पर कुल धन का 30 प्रतिशत से भी अधिक खर्च किया गया, किन्तु उचित अनुपात में अपेक्षित लाभ आदिवासियों को प्राप्त नहीं हो सका है। देश में अभी भी अनेक जनजातियाँ गरीबी रेखा से काफी नीचे हैं और उन्हें भारी-भरकम खर्चों का थोड़ा भी लाभ नहीं प्राप्त हुआ है।

छठीं पंचवर्षीय योजना में आदिवासियों के कल्याण के लिए निम्नलिखित उद्देश्य घोषित किये गये-

(1) कृषि, पशुपालन, वानिकी, हार्टिकल्चर आदि क्षेत्रों में उत्पादकता को बढ़ाना, जिससे जनजातीय उपयोजना क्षेत्रों के अंतर्गत आने वाले परिवारों में 50 प्रतिशत को गरीबी रेखा से ऊपर उठाया जा सके। गरीबी उन्मूलन योजना के अंतर्गत सर्वाधिक गरीब जनजातीय परिवारों की प्रगति के पथ पर अवसर प्रदान करना तत्पश्चात गरीब परिवारों को विशेष सहायता उपलब्ध कराना।

(2) उपर्युक्त आर्थिक प्रयासों के अतिरिक्त आदिवासियों की शिक्षा योजनाकाल का केन्द्र बिन्दु होना चाहिए।

(3) भूमि ऋण और ऋण बन्धक, व्यापार, आबकारी, वन आदि से सम्बन्धित जनजातीय क्षेत्रों में शोषण को दूर करना।

इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सिर्फ धन की ही आवश्यकता नहीं होती, बल्कि ऐसे समर्पित कार्यकर्ताओं एवं पदाधिकारियों की भी आवश्यकता होती है जो आदिवासी क्षेत्रों में निष्ठा और ईमानदारी से कार्य करें। इसके लिए एक विशेष प्रकार के प्रशिक्षण के बारे में 1979 में महेश्वर प्रसाद समिति ने भी अनुमोदन किया है। गृह मंत्रालय ने इसको ध्यान में रखते हुए राँची विश्वविद्यालय के मानव विज्ञान विभाग के अन्तर्गत जनजातीय क्षेत्र में कार्य करने वाले पदाधिकारियों के लिए तीन सप्ताह का एक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ किया है। अभी तक ऐसे बैचों में एक सौ से ज्यादा पदाधिकारियों को प्रशिक्षण दिया गया है।

केन्द्रीय प्रायोजित परियोजनाएँ (Centrally Sponsored Schemes) —

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के कल्याण के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा विविध योजनाएँ चलायी जाती हैं जिनमें से कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं–

(1) **अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए मैट्रिक उपरांत छात्रवृत्तियाँ** (Post Matric Scholarship for Scheduled Castes and Scheduled Tribe Students)— मैट्रिक उपरांत छात्रवृत्ति परियोजना सबसे महत्वपूर्ण केन्द्रीय प्रायोजित परियोजना है जिसके अंतर्गत अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों को मैट्रिक उपरांत शिक्षा प्राप्त करने हेतु वित्तीय सहायता दी जाती है। सभी पात्र अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति विद्यार्थियों को जिनके माता-पिता / संरक्षक की आय नियमों द्वारा निर्धारित सीमा के अंतर्गत है किसी मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश पाने पर छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। यह परियोजना राज्य सरकारों/संघ प्रदेशों प्रशासनों द्वारा भारत सरकार द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार क्रियान्वित की जाती है एवं विद्यार्थियों को अपनी सम्बद्ध राज्य सरकार के माध्यम

से छात्रवृत्ति प्राप्त होती है, चाहे वे किसी भी स्थान पर अध्ययन करते हों। छात्रवृत्तियाँ वर्ष-दर आधार पर स्वीकृत की जाती हैं।

इस परियोजना के अंतर्गत, प्रत्येक योजना के गत वर्ष में किया गया व्यय राज्यों/संघ प्रदेशों की प्रतिबद्ध व्यय हो जाता है जिसे वे अपनी निधियों से वहन करते हैं। केन्द्रीय सरकार राज्यों/संघ प्रदेशों को प्रतिबद्ध दायित्व से ऊपर के व्यय की प्रतिपूर्ति करके वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

भरण-पोषण भत्तों की दरों में वृद्धि तथा पात्रता परीक्षण हेतु आय राशि को बढ़ाने के प्रश्नों पर भारत सरकार कुछ समय से विचार कर रही थी। मंत्रालय के अतिरिक्त सचिव की अध्यक्षता में नियुक्त उच्चस्तरीय सरकारी समिति जिसमें मानव संसाधन विकास, वित्त मंत्रालयों एवं योजना आयोग के सदस्य सम्मिलित थे, ने इस विषय पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है। समिति की सिफारिशें सरकार के अधिक विचाराधीन हैं।

(2) **अशुद्ध व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के बच्चों को मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्तियाँ** (Pre-Matric Scholarship for the Children of those Engaged in Unclean Occupations)— इस परियोजना का उद्देश्य अशुद्ध व्यवसायों तथा झाड़ू लगाने, चमड़ा परिशोधन करने तथा चमड़ी उतारने में कार्यरत व्यक्तियों के बच्चों को माता-पिताओं के अस्वच्छ आवासों से दूर छात्रावासों में रखकर उत्तम शिक्षा प्रदान करना है। इस परियोजना के अधीन छठीं से सातवीं श्रेणी के विद्यार्थियों को तथा नवीं एवं दसवीं तक की कक्षा के विद्यार्थी को प्रति मास के दर पर छात्रवृत्ति दी जाती है। सरकारी आवास उपलब्ध न होने की स्थिति में किराये पर छात्रावास भवनों का प्रबन्ध किया जाता है। बीस से अधिक विद्यार्थियों वाले छात्रावास में एक पूर्णकालिक हास्टल वार्डन की नियुक्ति की जाती है, यदि संख्या कम है तो किसी स्कूल अध्यापक को वार्डन का कार्यभार दे दिया जाता है।

(3) **चिकित्सीय एवं इंजीनियरिंग महाविद्यालयों में अनुसूचित जातियों/जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए पुस्तक बैंक** (Book Bank for Scheduled Caste/Tribe Students Studying in Medical and Engineering Colleges)— यह परियोजना मेडिकल एवं इंजीनियरिंग महाविद्यालयों में अध्ययन कर रहे, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्धित विद्यार्थियों के लिये है। इसके अंतर्गत राज्य सरकारों/संघ प्रदेशों को इन विद्यार्थियों के लिये पुस्तक बैंक स्थापित करने हेतु 50:50 आधार पर केन्द्रीय सहायता दी जाती है। पाठ्य-पुस्तकों का एक सैट तीन विद्यार्थियों के समूह को दिया जाता है। एक सैट का जीवनकाल तीन वर्ष निर्धारित किया गया है।

(4) **अनुसूचित जातियों के लिये कन्या छात्रावास** (Girls Hostels for Scheduled Castes)— इस परियोजना के अंतर्गत राज्य सरकारों/संघ प्रदेशों को 50:50 के आधार पर अनुसूचित जातियों की कन्यायें जो मिडिल, उच्च, उच्चतम माध्यमिक स्कूलों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययन कर रही है, के लिये छात्रावास भवन निर्माण हेतु केन्द्रीय सहायता प्रदान करना है। राज्य सरकार के माध्यम से स्वयंसेवी को भी वर्तमान छात्रावास भवनों का विस्तार करने, नये छात्रावास निर्मित करने के लिये केन्द्रीय सहायता दी जाती है। ऐसे मामलों में सम्बन्धित संगठन को कुल लागत का 10 प्रतिशत स्वयं वहन करना होता है जबकि शेष 90 प्रतिशत केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा 50:50 के आधार पर अपना-अपना भाग देना होता है। प्रत्येक छात्रावास में 100 विद्यार्थी रह सकते हैं जिनमें से 10 प्रतिशत स्थान गैर-अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिये आरक्षित रखी जाती हैं।

(5) **अनुसूचित जातियों के लिए स्वयंसेवी संगठनों को सहायता** (Aid to Voluntry Organisations for Scheduled Castes)— इस परियोजना के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण में कार्यरत अखिल भारतीय स्तर के स्वयंसेवी संगठनों को शत-प्रतिशत आधार पर केन्द्रीय सहायता प्रदान की जाती है।

(6) **अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों हेतु विशेष शिक्षा एवं संबद्ध परियोजना** (Coaching and Allied Scheme for Scheduled Castes and Scheduled Tribes)— केन्द्रीय सरकार एवं सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के अधीन विभिन्न पदों एवं सेवाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के उद्देश्य से कल्याण मंत्रालय ने केन्द्रीय प्रायोजित विशेष-शिक्षण एवं सम्बद्ध परियोजना आरंभ की है। इस परियोजना के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के प्रत्याशी जो संघ लोक सेवा आयोग, स्टाफ चयन आयोग, राज्य लोक सेवा आयोगों एवं अन्य भर्ती संस्थाओं में बैठना चाहते हैं, को पूर्व-परीक्षा शिक्षण सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

(7) **अनुसूचित जाति विकास निगम** (Scheduled Castes Development Corporation)— राज्यों में अनुसूचित जाति विकास निगम आर्थिक विकास की बैंकीय परियोजना के विषय में वित्तीय संस्थाओं एवं अनुसूचित जातियों के परिवारों के मध्य परस्पर मिलान की व्यवस्था करते हैं। अनुसूचित जाति विकास निगमों का तीसरा राष्ट्रीय सम्मेलन अप्रैल 1987 में दिल्ली में कल्याण मंत्रालय एवं कृषि वित्त निगम द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में समाज कल्याण अनुसूचित जाति कल्याण विभागों के सचिवों, अनुसूचित जाति विकास निगमों के वरिष्ठ अधिकारियों एवं प्रबंध निदेशकों, भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय स्टेट बैंक, नाबार्ड, जीवन बीमा एवं ऋण गारन्टी निगम (DICGC) एवं बैंकिग संस्थाओं, कल्याण मंत्रालय एवं ग्रामीण विकास विभाग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग के प्रतिनिधियों तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयुक्त ने भाग लिया। इस सम्मेलन का विषय था, अनुसूचित जाति विकास निगम के माध्यम से अनुसूचित जातियों के परिवारों के आर्थिक विकास हेतु सहायता की नई प्रणाली जिसे सीमान्त धन ऋण प्रोग्राम के विकल्प रूप में विकसित किया गया था।

(8) **राष्ट्रीय विदेशी छात्रवृत्तियाँ** (National Overseas Scholarships)— राष्ट्रीय विदेशी छात्रवृत्तियों की परियोजना अनुसूचित जातियों/ जनजातियों, खाना-बदोश एवं अर्द्ध खाना-बदोश जनजातियों से सम्बन्धित प्रत्याशियों को इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी एवं अन्य विषयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने, स्नातकोत्तर, पीएच.डी. एवं पोस्ट डाक्टरल अनुसंधान आदि के लिए जिसकी उचित सुविधाएँ देश में उपलब्ध नहीं है, विदेश जाने के लिए नान-प्लान स्कीम है।

(9) **अनुसूचित जातियों के प्रति अपराध** (Crimes against Scheduled Castes)— अनुसूचित जातियों के प्रति अपराधों की समस्या एवं अनेक संरक्षण की समस्या भारत सरकार का ध्यान निरन्तर आकर्षित करती रही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अनुसूचित जाति के सदस्य कमजोर स्थिति में होते हैं, अतः उनकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। अनेक राज्यों ने अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अपराधों की घटना का उन्मूलन करने एवं उनमें सुरक्षा तथा विश्वास की भावना सुनिश्चित करने हेतु अनेक उपाय किए हैं—

(i) राज्यों में पुलिस अधिकारियों को विशिष्ट रूप से आदेश दिए गए हैं कि वे अनुसूचित जातियों की भूमि पर दूसरों द्वारा आपराधिक एवं अनाधिकृत कब्जों के मामलों में तुरन्त हस्तक्षेप करें। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी आदेश हैं कि अनुसूचित जातियों के विरुद्ध गंभीर अपराधों की रिपोर्ट तुरन्त दर्ज करें तथा उसकी जाँच करे व मुकदमे का शीघ्र निर्णय कराएँ।

(ii) प्रशासन तंत्र को सशक्त बनाया गया है ताकि राज्य अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित भूमि, मजदूरी आदि के विवादों के बारे में भली-भाँति स्वयं को परिचित करा सकें।

(iii) इस बात को सुनिश्चित करने के लिये कि खेतिहर मजदूरों को कानून के अधीन निर्धारित मजदूरी से कम न मिले, प्रशासन तन्त्र स्थापित किया गया है।

(iv) पंजीकृत मामलों के शीघ्र निबटाने को सुनिश्चित करने हेतु विशेष न्यायालय स्थापित किये गये हैं। ऐसे न्यायालय आंध्रप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं तमिलनाडु में कार्य कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने नागरिक अधिकार संरक्षण कानून सम्बन्धी मामलों की सुनवाई के लिए प्रत्येक जिले में एक मजिस्ट्रेट को मनोनीत करने का आदेश जारी किया है।

(v) उच्चस्तरीय भू-राजस्व एवं पुलिस अधिकारियों को आदेश दिये गए हैं कि वे स्वयं स्थान पर जाकर विवादों का इस प्रकार समाधान करें जिससे अनुसूचित जातियों के प्रति कोई अन्याय न हो। उन्हें अपराधियों के पकड़ने के लिये पर्याप्त कार्यवाई करने के भी आदेश दिये गये हैं।

(vi) उन्हें आवंटित तथा उन्हें अपनी भूमि का उन्हें प्रभावी कब्जा दिलाने तथा उन्हें बिना किसी बाधा काश्त करने योग्य बनाने हेतु पूर्ण प्रयास किए जाएँगे।

(vii) गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश एवं पश्चिम बंगाल के राज्यों ने अपराधों के शिकार अनुसूचित जातियों/जनजातियों के व्यक्तियों को राहत/क्षतिपूर्ति देने हेतु स्थायी परियोजना को स्वीकार किया है जबकि आन्ध्रप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान के राज्यों ने इस परियोजना को कुछ संशोधन सहित स्वीकार किया है, केरल एवं तमिलनाडु के राज्यों ने क्षतिपूर्ति की विभिन्न दरों को निर्धारण करते हुए स्कीमें बनाई हैं। पंजाब राज्य प्रस्तावित स्कीम पर विचार कर रही है।

(viii) अधिकांश राज्यों में विशेष अनुसूचित जाति सैल उपमहानिदेशक के अधीन अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अपराधों के ठीक प्रकार के पंजीकरण, तुरन्त एवं सही जाँच तथा द्रुतता के साथ मुकदमा चलाने को सुनिश्चित करने हेतु स्थापित किये गये हैं।

(ix) अनेक राज्यों में मुख्यमन्त्री की अध्यक्षता में राज्यस्तरीय समितियाँ अनुसूचित जातियों के कल्याण सम्बन्धी पहलुओं की देखभाल करने हेतु स्थापित की गई हैं।

(x) उच्चस्तरीय अधिकारियों को तुरन्त एवं प्रभावी कार्यवाही के लिए वैयक्तिक रूप में उत्तरदायी बनाया गया है।

(xi) बिहार में ग्यारह पुलिस चौकी तथा मध्य प्रदेश में सात अधीनस्थ पुलिस चौकी अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अपराधों को दर्ज करने के बारे में अलग से स्थापित की गई हैं।

(xii) सरकारी यात्रा पर गये अधिकारियों को निर्देश दिये गये हैं कि वे काफी समय देहातों में अनुसूचित जातियों के आवासीय क्षेत्रों में व्यतीत करें।

बिहार, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, पंजाब, महाराष्ट्र एवं मध्यप्रदेश की राज्य सरकारों ने अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अपराधों की दृष्टि से 48 संवेदनशील जिलों का पता लगाया है। अनुसूचित जातियों/जनजातियों के अधिकारियों की जिला मजिस्ट्रेट, पुलिस अधीक्षक, उपमंडलीय मजिस्ट्रेट एवं उपमंडलीय पुलिस अधिकारी के रूप में नियुक्ति की सूचना राज्य सरकारों से समय-समय पर एकत्रित की जाती है। यह जानने के लिये कि इस विषय पर केन्द्रीय गृह मंत्रालय के राज्यों की पूर्व परामर्श पर क्या कार्यवाही की गई है।

(10) नागरिक अधिकार संरक्षण कानून, 1955 (Protection of Civil Rights Act, 1955)— नागरिक अधिकार संरक्षण कानून के अनुच्छेद 15A की अनुपालना में भारत सरकार राज्यों को इस कानून के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु प्रशासकीय मशीनरी को सशक्त बनाने एवं सम्पूर्ण नगर में शुष्क शौचालयों को जल वाले शौचालयों में बदलकर सफाई कर्मियों की विमुक्ति तथा विमुक्त सफाई कर्मियों को वैकल्पिक

व्यवसायों तथा पुनर्वास करने हेतु समान आधार पर वित्तीय सहायता प्रदान करती है। 1986-87 के दौरान केन्द्रीय सरकार ने 16 राज्यों को तदर्थ 8.57 करोड़ रुपये की राशि दी थी। 1980-81 से 16 राज्यों में 121 कस्बों में सफाई कर्मियों की विमुक्ति हेतु सहायता दी जा चुकी है। भारत के सभी राज्यों में सैकड़ों कस्बों में हजारों शुष्क शौचालयों को जलीय शौचालयों में परिवर्तित करके सफाईकर्मी मुक्त बनाया जा चुका है। अस्पृश्यता सम्बन्धी अपराधों के द्रुत न्याय विचार के लिये विशेष अदालतों अथवा विशेष चलती फिरती अदालतों की विभिन्न राज्यों में स्थापना की गई है। राजस्थान 8, आंध्र प्रदेश में 17, मध्य प्रदेश में 11, तमिलनाडु में 8, बिहार एवं उड़ीसा में प्रत्येक में 4 ऐसे न्यायालयों को स्थापित किया गया है। नागरिक अधिकार संरक्षण कानून के अन्तर्गत मामलों के अभियोजन को आरम्भ करने अथवा उस पर पर्यवेक्षण करने हेतु विशेष सैल/दस्ते 19 राज्यों में स्थापित किये गये हैं। 18 राज्यों में इस कानून के क्रियान्वयन एवं कार्यान्विति का निरीक्षण एवं पुनर्विचार करने के लिये सरकारी एवं गैर सरकारी सदस्यों की समिति स्थापित की गई है।

(11) **बाबा साहब अम्बेडकर शताब्दी समारोह** (Baba Saheb Ambedkar Centenary Celebrations)— डॉ. बी. आर. अम्बेडकर भारत के महान सपूत, भारतीय संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष, दलितों के हितों के सबसे बड़े समर्थक, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के मसीहा के 13 अप्रैल, 1990 को 99वें जन्म दिवस पर बाबा साहब जन्म शताब्दी समारोह का आरम्भ हुआ। सरकार ने बाबा साहब को 'भारत रत्न' सर्वोच्च नागरिक अलंकरण से विभूषित किया एवं राष्ट्र निर्माण तथा दलितों के उत्थान में उनकी सेवाओं को मान्यता देते हुये संसद के केन्द्रीय भवन में उनका चित्र लगाया तथा घोषित किया कि बाबा साहब की जन्म शताब्दी वर्ष को 'सामाजिक न्याय वर्ष' के रूप में मनाया जायेगा। भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने भी घोषणा की कि राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का उद्देश्य सामाजिक न्याय से सम्बन्धित सभी अधिनियमों को संविधान की नौवीं सूची में सम्मिलित करना है ताकि उनके क्रियान्वयन को सुनिश्चित किया जा सके। विभिन्न राज्यों द्वारा निर्मित अभी भी 59 से अधिक ऐसे कानून थे जिनको अभी लागू किया जाना था। इन कानूनों के क्रियान्वयन में किसी भी प्रकार की बाधा को दूर करने के लिये संसद में एक बिल को न्यायिक पुनर्विचार के क्षेत्र से बाहर रखने के लिये प्रस्तुत किया जायेगा। उन्होंने यह भी घोषणा की कि अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग को संवैधानिक पद दिया जायेगा, अनुसूचित जातियों/जनजातियों को प्राप्त सभी लाभ नव्य-बुद्धिस्टों को प्रदान करने हेतु एक विधेयक लाया जाएगा तथा एक वर्ष के अन्दर नागरिक सेवाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों का कोटा पूरा कर दिया जाएगा।

विभिन्न राज्यों ने भी शताब्दी समारोह के अंग रूप में अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों एवं समाज के अन्य पीड़ित वर्गों के लिए अनेक कल्याण कार्यक्रमों का सूत्रपात किया।

(12) **राज्य स्तर पर कल्याण कार्यक्रम** (Welfare Programmes at the State Level)— विभिन्न राज्य सरकारें/संघ प्रदेश प्रशासन अपने कल्याण विभाग के माध्यम से अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु अनेक कार्यक्रम चला रहे हैं। कल्याण कार्यक्रमों में सम्मिलित हैं—

(i) **शैक्षणिक एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम** (Educational and Training Programme)— अनुसूचित जातियों के विद्यार्थियों को पूर्ण मैट्रिक विशेष प्रशिक्षण, मेडिकल एवं इंजीनियरिंग की पुस्तकें क्रय हेतु सबसिडी, आशुलिपिक प्रशिक्षण, जे. बी. टी., बी. एड. प्रशिक्षण, मैट्रिक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्ययन करने वाली कन्या विद्यार्थियों को सहायता, प्रतियोगी परिक्षाओं के लिए कोचिंग केन्द्र, कन्या छात्रावास, औद्योगिक कारोबार में प्रशिक्षण आदि।

(ii) **आर्थिक उत्थान** (Economic Uplift)— कृषि भूमि, स्टाम्प ड्यूटी, मकानों, कुओं के क्रम के लिए सबसिडी, विशेष कम्पोनेन्ट योजना के अधीन गरीबी रेखा से नीचे परिवारों के पहचान के बारे में सर्वेक्षण।

(iii) **स्वास्थ्य, आवास एवं अन्य कार्यक्रम** (Health, Housing and Other Programmes)– अस्पृश्यता अधिनियम एवं भूमि तथा अन्य अचल सम्पत्ति से बेदखली से सम्बन्धित पंजीकृत मुकदमों की पैरवी करने हेतु कानूनी सहायता, धर्मशालाओं एवं चौपालों के निर्माण हेतु सबसिडी, हरिजन बस्तियों में पर्यावरणीय सुधार, पीने के पानी हेतु कुओं की निर्माण योजना, सफाई कर्मियों के लिए नए मकानों के निर्माण हेतु सब्सिडी, विमुक्त जातियों के लिए मकानों का निर्माण, ग्रामीण महिलाओं के लिए सामुदायिक केन्द्र तथा प्रशिक्षण एवं उत्पादन केन्द्र, कार्यरत माताओं के बच्चों के लिए शिशुगृह, मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति आदि।

आर्थिक विकास
(Economic Progress)

अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक विकास के लिए सरकार द्वारा निम्नलिखित सुविधाएँ दी जाती हैं-

(i) **कुटीर उद्योग** (Cottage Industry)- कुटीर उद्योग खोलने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न राष्ट्रीयकृत बैंकों से धन उपलब्ध कराया जाता है। सरकार की इस सुविधा के कारण ही आजकल अनेक छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों में जनजातियाँ कार्य कर रही हैं।

(ii) **भूमि सुधार** (Right to Land Reform)- अनुसूचित जनजातियों को भूमि अधिकार की सुरक्षा देने के लिए राज्य सरकारों ने विभिन्न कानून बनाये हैं। उदाहरणार्थ बिहार में छोटा नागपुर में टेनन्सी एक्ट बनाकर अनुसूचित जनजातियों के भूमि सम्बन्धी अधिकार को सरकार ने सुरक्षा प्रदान की है।

(iii) **जंगल मजदूर सहकारी समितियाँ** (Forest Labour Co-operative Societies)- सरकार का जंगल मजदूर सहकारी समितियाँ बनाने का प्रमुख लक्ष्य जनजातियों को ठेकेदारों के शोषण से मुक्ति दिलाना तथा जंगल की उपज से होने वाली आय को उन्हें दिलाना है। भारत में सर्वप्रथम महाराष्ट्र सरकार द्वारा इस प्रकार की समितियाँ स्थापित करने का आंदोलन प्रारंभ किया गया।

(iv) **अन्न भण्डार** (Grain Shop)- सरकार जनजातियों के लिए जनजातीय क्षेत्रों में अन्न भण्डार भी खोलती है और आदिवासी परिवारों को दैनिक उपयोग के लिए अनाज भी देती है तथा उत्तम बीज और कृषि कार्य के लिए अनाज के रूप में ऋण भी उपलब्ध कराया जाता है।

(v) **गृह निर्माण योजनाएँ** (Housing Schemes)- अनुसूचित जनजातियों के लिए पूरे देश में गृह निर्माण योजनाएँ चलाई जा रही हैं। इस योजना के अनुसार लाभ उठाने वालों को 75 प्रतिशत अनुदान के रूप में दिया जाता है तथा 25 प्रतिशत वे अपने घर बनाने में धन या परिश्रम के रूप में योगदान करते हैं। केन्द्र सरकार के अलावा राज्य सरकारों द्वारा भी गृह निर्माण कार्य में काफी उदारतापूर्वक अनुसूचित जनजातियों को अनुदान दिया जाता है।

(vi) **ऋणमुक्ति और साहूकारों पर रोक** (Debt Redemption and Check on Money Lenders)- अधिकांश राज्य सरकारों द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में ग्राम के साहूकारों की क्रूर प्रवृत्ति को रोकने के लिए एवं कर्ज के ब्याज की दर को नियंत्रित करने एवं बहुत दिनों से चालू कर्ज को समाप्त करने के लिए अनेक कदम उठाये गये हैं।

(vii) **विशेष बहुउद्देशीय आदिवासी प्रखण्ड** (Special Multi purpose Tribal Blocks)- इसका उद्देश्य जनजातियों में प्रगतिशील भावना उत्पन्न करना एवं उनकी समृद्धि में वृद्धि करना है, ताकि उनका सांस्कृतिक एवं भौतिक उत्थान तीव्र गति से हो सके। इस दृष्टिकोण को सामने रखकर गृह मन्त्रालय द्वारा एक विशेष परियोजना चलाई जा रही है और अनेक विशेष बहुउद्देशीय आदिवासी प्रखण्ड अनेक राज्यों में स्थापित किये गये हैं।

कल्याण कार्यकर्ताओं तथा अधिकारियों को प्रशिक्षण
(Training of Welfare Workers and Officers)

आदिवासियों के बीच कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं और अधिकारियों के लिये प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना के महत्व पर भी बल दिया गया है। राज्य सरकारों द्वारा अपने-अपने राज्यों में प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये हैं। जैसे मध्यप्रदेश सरकारों ने पहले छिंदवाड़ा में तथा बाद में भोपाल में इन कार्यकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोले हैं। इसके अतिरिक्त पिछले पाँच वर्षों से गृह मन्त्रालय के निर्देशन में मानव विज्ञान विभाग राँची विश्वविद्यालय द्वारा तीन सप्ताह का प्रशिक्षण मध्य वर्ग के पदाधिकारियों के लिए चलाया जाता है। वे लोग जो आदिवासियों के बीच काम करते है उन्हें आदिवासियों की विभिन्न संस्कृति, रीति-रिवाज, धर्म, राजनैतिक, सामाजिक इत्यादि मान्यताओं के बारे में ज्ञान होना आवश्यक है।

समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम
(Integrated Rural Development Programme)

छठीं पंचवर्षीय योजना के अन्त में और विशेष रूप से सातवीं पंचवर्षीय योजना में इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया है कि आदिवासी और दलित बाहुल्य क्षेत्रों में समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम द्वारा कल्याण कार्यों का विस्तार किया जाए। केन्द्र सरकार के निर्देश पर प्रत्येक राज्य में करोड़ों रुपया इस कार्य हेतु उपलब्ध कराया गया है। बिहार में समेकित विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत छोटा-नागपुर क्षेत्र में अनेक कल्याण परियोजनाएँ प्रारंभ की गई हैं, जिसके अन्तर्गत पिछड़े ग्रामों को चुना गया है और इसके सम्पूर्ण विकास का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में लगभग 2 करोड़ लोगों को इससे लाभ मिला।

आदिवासी पुनः स्थापना की योजनाएँ
(Schemes of Tribilition)

भारत में पुनः स्थापना की अवधारणा द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् प्रचलित हुई। 1947 में भारत विभाजन के पश्चात् हजारों परिवार पाकिस्तान से भारत आकर बसे और उन विस्थापितों को स्थापित करने के लिए भारत सरकार द्वारा पहले तो शरणार्थी शिविर लगाये गये और बाद में विभिन्न शरणार्थी कालोनियाँ बनाई गयीं, जहाँ उन्हें पुनः स्थापित किया गया।

भारत में जनजातीय पुनः स्थापना का कार्य देश को आजादी मिलने के तुरंत बाद प्रारंभ किया गया। पिछली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में जनजातीय पुनः स्थापना पर विशेष बल दिया गया है। जैसे बिहार में 30 विभिन्न आदिवासी निवास करते हैं। पिछड़ी जनजातियों के ये लोग अभी भी जंगलों में रहते हैं और जंगल के कन्द-मूल तथा जंगली जानवरों का शिकार कर जीवन निर्वाह करते हैं। अतः इन जनजातियों को पुनः स्थापित करने का कार्यक्रम सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर चलाया गया।

अनुसूचित जातियों का कल्याण
(Welfare of Schedule Caste)

अनुसूचित जातियों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है— (i) खानाबदोश, (ii) आवासित।

खानाबदोश श्रेणी में जिप्सी जैसे लोग सम्मिलित हैं जबकि आवासित एवं अर्द्ध-आवासित श्रेणियाँ स्वयं को अनियंत्रित योद्धा व्यक्तियों जो कभी दूर भूतकाल में आक्रमणों अथवा राजनीतिक उथल-पुथल के कारण अपने मूल-घरों से उजाड़ दिए गए थे, के वंशज कहते हैं। आबादियों में बसने से पूर्व वे शिकार, जंगल उत्पादों के विक्रय, भालू एवं बन्दर के नृत्य दिखाकर, सर्प-आकर्षण, औषधीय जड़ी-बूटियाँ एवं अन्य वस्तुएँ बेचकर जीवनयापन करते थे एवं अपनी आय को शिक्षा द्वारा पूरित करते थे। अपने पूर्वजों

के उत्तराधिकार में प्राप्त साहस की स्वाभाविक भावना, घोर निर्धनता, बेहतर आर्थिक दशाओं हेतु मार्गों का अभाव एवं अन्य मनोवैज्ञानिक तत्वों ने उन्हें आपराधिक कार्यों की ओर ले गए जो कालान्तर में उनकी संस्कृति का भाग बन गया।

पिछड़े वर्ग आयोग ने 1955 में अन्य बातों सहित अनुशंसा की कि-

(i) इन अपराधी अथवा भूतपूर्व अपराधी जनजातियों का नाम बदलकर अनुसूचित जातियाँ कर दी जाएँ,

(ii) इन जातियों को अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों एवं पिछड़े वर्गों में विभाजित करके इन्हें सम्बन्धित वर्गों को उपलब्ध सुविधाएँ प्रदान की जाए।

(iii) इन जातियों को कस्बों तथा देहातों में छोटे-छोटे समूहों में विभाजित कर दिया जाए जहाँ वे अन्य लोगों के सम्पर्क में आकर अन्ततः समाज में समंजित हो जाएँगे।

(iv) इन्हें सामान्य शिक्षा प्राईमरी स्तर पर, बेसिक शिक्षा तथा माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा दी जाए। आपराधिक समूहों के बच्चों को सात वर्ष की आयु प्राप्त करने पर उनके माता-पिताओं से अलग कर दिया जाए तथा उन्हें उपयुक्त छात्रावास में रखा जाए।

1952 में इन जातियों के विरुद्ध प्रतिबन्धों एवं सीमाओं को कानूनी तौर पर वापस ले लिए जाने के पश्चात, सर्वप्रथम समस्या उन्हें आपराधिक मनोवृत्तियों से अलग करना विशेषतया युवा पीढ़ी को, तथा उनके ऊपर लगे दाग को हटाना था, दूसरी समस्या उनके लिए ऐसे लाभकारी व्यवसायों का प्रबन्ध करना था जिससे वे सम्मान योग्य जीवन व्यतीत कर सकें।

अब तक प्राप्त अल्प परिणामों को दृष्टि में रखते हुए, प्रत्येक क्षेत्र में उनकी आवश्यकताओं के अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है तथा योजनागत परियोजना समिति द्वारा स्थापित अध्ययन दल के निम्नलिखित सुझावों के आधार पर कार्यक्रम तैयार किये जाने चाहिए–

(i) अनुसूचित जातियों के पुनर्वास हेतु संयुक्त सुधारात्मक एवं कल्याण उपागम की आवश्यकता जिसे सामाजिक शिक्षा के प्रोग्राम द्वारा समर्थन प्राप्त हो,

(ii) विशेष आर्थिक कार्यक्रम की रचना जिसमें जनसंख्या के चरित्र, विशेषतया परम्परीय कलाओं में उनकी साहसिक भावनाओं को ध्यान रखा जाए,

(iii) औद्योगिक एवं अन्य सहकारिताओं का संगठन,

(iv) अतिरिक्त प्रशिक्षण एवं ओरिएन्टेशन सुविधाओं द्वारा समर्पित लोकसेवाओं में रोजगार के अवसरों की व्यवस्था,

(v) उन क्षेत्रों में जहाँ अनुसूचित जातियों की पर्याप्त जनसंख्या है, प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं जो उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से परिचित हैं एवं उनके साथ मिलकर कार्य कर सकते हैं, के कैडर का निर्माण किया जाए।

इस बात की आवश्यकता है कि उनकी आवासीय परिस्थिति की, परम्पराओं एवं सांस्कृतिक लोकाचारों के कारण उनकी जटिल समस्याओं जो राज्यों में भिन्न-भिन्न हैं, का पता लगाकर उनके समाधान हेतु उपचारों को तलाश किया जाए, विशेषतया उनकी प्रतिभा के अनुकूल व्यवसायों में उनके पुनर्वास तथा आपराधिक प्रवृत्तियों में उनके बच्चों को मुख्य रूप से, अलग करने की समस्याएँ। कृषि पर आधारित कुटीर उद्योगों, आवास, शिक्षा आदि के लिए ऋण। सबसिडी के रूप में वित्तीय सुविधाएँ एवं भूमि की व्यवस्था करने हेतु व्यापक एवं समेकित योजनाएँ बनाकर इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। स्वयंसेवी संगठन उनके पुनर्वास एवं कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। इन जातियों को भारतीय समाज की मुख्य धारा

में समेकित किया जाना चाहिए जिससे कि वे देश के सम्मानित नागरिक के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

मध्यप्रदेश की जनजातियों के लिए चलाये जा रहे कल्याण कार्यक्रम

1. आदिवासी क्षेत्रों में स्कूलों के माध्यम से शिक्षा का प्रसार हेतु शंखनाद योजना क्रियान्वित की जा रही है।
2. अनुसूचित जाति/जनजाति की कन्याओं में साक्षरता बढ़ाने के लिए कन्या साक्षरता प्रोत्साहन योजना संपूर्ण मध्यप्रदेश में संचालित की जा रही है।
3. आदिवासी बहुल क्षेत्रों में आदिवासियों के स्वास्थ्य रक्षा हेतु 'अरुणिमा योजना'।
4. अत्यधिक पिछड़े आदिवासी क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा का उन्नयन और प्रसार हेतु आदिवासी भाषा माध्यम से शिक्षा दी जा रही है।
5. वर्ष 1999-2000 में अनुसूचित जनजातियों के बहुल क्षेत्रों में उपस्वास्थ्य केन्द्र स्वीकृत किये गये है।
6. प्रदेश के अनुसूचित जाति के गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे आवेदकों के लिए अनुसूचित जाति स्व-रोजगार योजना संचालित है।
7. दीनदयाल अन्त्योदय कार्यक्रम के अन्तर्गत समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाने का प्रयास किया जा रहा है। जनता की भागीदारी से लागू किया जाने वाला यह कार्यक्रम चार स्तरों-ग्राम पंचायत विकास खण्ड, जिला एवं राज्य स्तर पर गठित समितियों के नियंत्रण में लागू होगा।
8. मध्यप्रदेश शासन ने अनेक नवीन योजनाओं की घोषणा की हैं। इन आर्थिक विकास योजनाओं का लाभ मुख्यतः समाज के कमजोर वर्गों, अनुसूचित जाति तथा जनजाति और शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगारों को मिलेगा।

मध्यप्रदेश में जनजातियाँ और विकास योजनाएँ
(Tribes and Development Plans in M.P.)

मध्यप्रदेश भारत का एक ऐसा राज्य है जहाँ पर सबसे अधिक जनजातियाँ निवास करती है। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा जनजातियों के विकास के लिए निम्नलिखित योजनाएँ बनाई गयी हैं -

(1) शैक्षणिक योजनाएँ एवं संस्थाएँ।

(2) छात्रावास, छात्रगृह और आश्रम स्कूल।

(3) छात्रवृत्तियाँ एवं शिष्य वृत्तियाँ।

(4) विद्यार्थी कल्याण योजना।

(5) विभागीय प्रशिक्षण कार्यक्रम।

(6) आदिवासी राहत योजना।

(7) आदिवासी बसाहट योजना।

(8) उपभोग ऋण योजना।

(9) बिना ब्याज ऋण योजना।

(10) संदिग्ध दायित्व निवारण योजना।

(11) सामूहिक विवाह योजना।

(12) भूखण्ड, मकानों व दुकानों के आवंटन सम्बन्धी क्षतिपूर्ति योजना।

(13) विशेष पिछड़े जनजाति समूहों का विकास कार्यक्रम।

(14) आदिवासी संस्कृति के परिरक्षण एवं विकास की योजना।

(15) तेंदूपत्ता सहकारीकरण योजना।

(16) अन्त्योदय योजना।

(1) शैक्षणिक योजनाएँ एवं संस्थाएँ

जनजातियों के विकास के लिए मध्यप्रदेश सरकार द्वारा निम्न शैक्षणिक योजनाएँ एवं संस्थाएँ संचालित की जा रही हैं -

(i) **आदर्श विद्यालय-** प्रतिभावान आदिवासी विद्यार्थियों को अच्छी शैक्षणिक सुविधाएँ एवं शिक्षा का उचित वातावरण उपलब्ध कराने के लिए सरकार द्वारा आदर्श विद्यालयों (मॉडल स्कूल) की स्थापना की गई है। इन विद्यालयों में चुने हुए वरिष्ठ शिक्षकों द्वारा शिक्षा दी जाती है। इन विद्यार्थियों को योग्यता के आधार पर प्रवेश दिया जाता है।

(ii) **कन्या शिक्षा परिसर-** आदिवासी कन्याओं में साक्षरता का प्रतिशत बहुत ही कम है। आदिवासी कन्याओं में साक्षरता बढ़ाने तथा शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने की दृष्टि से आरंभ से ही विशिष्ट प्रकार की शिक्षा देने के उद्देश्य से विभाग द्वारा कन्या शिक्षा परिसर खोले गये हैं। वर्तमान में ऐसे 82 शिक्षा परिसर पूरे मध्यप्रदेश में संचालित हैं।

इन परिसरों में लड़कियों के लिए शिक्षा के साथ ही आवास की निःशुल्क सुविधा भी उपलब्ध है। इसके साथ ही इन संस्थाओं में प्रौढ़ महिलाओं के लिए अनौपचारिक शिक्षा तथा सिलाई-बुनाई जैसे कौशलों में प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की गई है। इन परिसरों में आदिवासी क्षेत्रों में कार्यरत महिला कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देने की योजना भी है।

(iii) **गुरुकुल विद्यालय** - आदिवासी छात्र-छात्राओं को शिक्षा के साथ ही कुछ आर्थिक लाभ भी प्राप्त होता रहे, इस उद्देश्य से 'पढ़ो और कमाओ' के सिद्धान्त पर विभाग द्वारा पेन्ड्रारोड जिला बिलासपुर में एक गुरुकुल विद्यालय की स्थापना की गई है। यहाँ पर विद्यार्थियों के लिए ऐसी आवश्यक व्यवस्था उपलब्ध है, जिसके अन्तर्गत संस्था में रहकर उनके द्वारा जो श्रम किया जाता है उसका मूल्यांकन किया जाता है, उसका मूल्यांकन किया जाकर उन्हें उसके अनुरूप राशि दी जाती है। इस राशि का उपयोग विद्यार्थी अपनी निजी जरूरतों की पूर्ति के लिए करते हैं।

(iv) **सैनिक स्कूल में प्रवेश हेतु प्रशिक्षण की योजना** - रीवा में सैनिक स्कूल संचालित है। जिसमें निश्चित स्थान आदिवासियों के लिए सुरक्षित है और छात्रों को प्रवेश प्रवीणता के आधार पर दिया जाता है। इस हेतु शिक्षण सत्र के आरंभ में प्रवेश पूर्व परीक्षा आयोजित की जाती है। सैनिक स्कूल में आदिवासी छात्रों के प्रवेश हेतु विभाग द्वारा परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण दिया जाता है।

(v) **कन्या साक्षरता प्रोत्साहन योजना** - अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं में शिक्षा के प्रसार के लिये विभाग द्वारा एक नवीन योजना वर्ष 1986-87 से आरंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत 88 ऐसे विकासखण्ड हैं जहाँ पर अनुसूचित जनजाति की महिला साक्षरता 5 प्रतिशत से कम है, की छात्राओं को निरंतर नियमित छात्रा के रूप में कक्षा पाँचवीं पास होने पर छात्रा अथवा उसके पिता पालक को 250 रुपये की राशि प्रोत्साहन के रूप में स्वीकृत की जाती है।

(vi) **क्रीड़ा परिसर योजना** - मध्यप्रदेश शासन के जनजाति विभाग द्वारा जनजातियों के कल्याण हेतु संचालित माध्यमिक स्तरीय एवं उच्चतर माध्यमिक स्तरीय शाला परिसरों का 23 क्रीड़ा परिसरों में पुनर्गठन किया गया है। पुनर्गठित क्रीड़ा परिसरों में प्रत्येक क्रीड़ा परिसर के छात्र-छात्राओं के लिए 100 सीट वाले छात्रावास की व्यवस्था रहती है। क्रीड़ा परिसरों के विद्यार्थियों को प्रतिमाह की दर से शिष्यवृत्ति स्वीकृत की जाती है। इसके अतिरिक्त क्रीड़ा परिसरों के सभी विद्यार्थियों को स्पोर्ट्स किट भी प्रदान किये जाते हैं। प्रत्येक क्रीड़ा परिसर में आवश्यकतानुसार कम से कम एक N.I.S. कोच की सेवाएँ उपलब्ध रहती हैं।

(vii) **पढ़ो कमाओ योजना** - शिक्षा को श्रम मूलक बनाने एवं विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ-साथ परिश्रम अर्जित करने का अवसर देने के उद्देश्य से पढ़ो और कमाओ योजना आरंभ की गई है। स्कूल शिक्षा के साथ-साथ विद्यार्थियों को चाक स्टिक, ऊनी जर्सी एवं फर्नीचर बनाने के लिए प्रेरित करना इस योजना का प्रमुख लक्ष्य है। इन वस्तुओं का शालाओं में उपयोग किया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में 'पढ़ो और कमाओ' योजना का आदिम-जाति कल्याण विभाग में भी क्रियान्वयन आरंभ किया गया है।

प्रदेश में अनेक ऐसे विकासखण्ड हैं, जहाँ साक्षरता का प्रतिशत काफी कम है। इन विकासखण्डों की प्राथमिक शालाओं में पढ़ो और कमाओ योजना के अन्तर्गत चाक स्टिक का उत्पादन कराया जाता है। प्रत्येक प्राथमिक शाला को पढ़ो और कमाओ योजना के अन्तर्गत धनराशि उपलब्ध कराई जाती है। योजना के अनुसार एक विद्यार्थी से प्रतिदिन एक घण्टे से अधिक कार्य नहीं कराया जाता है। माह में 25 घण्टे के कार्य के रूप में विद्यार्थी को प्रतिमाह उसकी मेहनत के अनुपात में धनराशि का भुगतान किया जाता है।

(viii) **विशिष्ट शालाओं में शिष्यवृत्ति**- आदर्श विद्यालय कन्या शिक्षा परिसर एवं गुरुकुल विद्यालय में छात्राओं को विभिन्न दरों पर शिष्यवृत्ति दी जाती है।

(2) छात्रावास, छात्रगृह एवं आश्रम स्कूल

आदिवासी बच्चे अपने घर-परिवार से दूर रहकर 'आगे बढ़ सकें, इस हेतु उन्हें छात्रावास सुविधा की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि इन वर्गों के अभिभावकों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे खुद के खर्चे पर बच्चों को परिवार से दूर रखकर पढ़ा-लिखा सकें। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा निम्नलिखित व्यवस्था की गई है -

(i) **छात्रावास** - विभागीय छात्रावास, आदिम जाति कल्याण विभाग के छात्रावास, नियम 1996-97 के तहत संचालित होते हैं। इनकी व्यवस्था हेतु जिला व सम्भाग स्तर पर एक छात्रावास समिति गठित की जाती है। छात्रावास संचालन के लिए साधारणतः सम्पूर्ण जिम्मेदारी छात्रावास अधीक्षक की होती है।

प्रत्येक पूर्व मैट्रिक छात्रावास में सामान्यतः 20 और प्रत्येक मैट्रिकोत्तर छात्रावास में विद्यार्थियों को रखने की क्षमता स्वीकृत है।

आदिम जाति, हरिजन एवं पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग द्वारा आदिवासी विद्यार्थियों के लिए निम्नांकित दो प्रकार के छात्रावास संचालित किये जा रहे हैं -

(a) पूर्व माध्यमिक छात्रावास,

(b) मैट्रिकोत्तर छात्रावास।

वालक व बालिकाओं के लिए अलग-अलग छात्रावास संचालित हैं।

(ii) **छात्रगृह योजना** - म.प्र. सरकार का मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति के अंतर्गत छात्रावासीय एवं गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों को मिलने वाली छात्रवृत्ति की दरों में काफी अंतर था। जिन आदिवासी विद्यार्थियों को शासन द्वारा संचालित छात्रावासों में प्रवेश नहीं मिल पाता है उन्हें कम दर पर छात्रवृत्ति मिलती थी और उन्हें आवासीय समस्या का सामना भी करना पड़ता था। कम छात्रवृत्ति और किराये के मकान में निवास

करने के कारण विद्यार्थियों को खर्चे के लिये अभिभावकों पर निर्भर रहना पड़ता था। इस कठिनाई से उन्हें मुक्त करके निश्चित होकर पढ़ाई का अवसर देने के उद्देश्य से यह योजना लागू की गई है।

महाविद्यालयों में प्रवेश हेतु अंचलों से आये विद्यार्थियों को तुरंत आवास की आवश्यकता होती है, अत: राज्य शासन ने योजना के मूल स्वरूप को संशोधित करते हुए आदिम जाति, हरिजन एवं पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग के आदेश द्वारा यह व्यवस्था लागू की है कि जिन शहरों में महाविद्यालय स्थित हैं उनसे सम्बन्धित विभागीय जिला अधिकार महाविद्यालय में प्रवेश प्राप्त विद्यार्थियों के छात्रावास में प्रवेश हेतु एवं मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति हेतु प्राप्त आवेदन-पत्रों की संख्या के अनुसार और प्राचार्यों से आवश्यक जानकारी एकत्र कर कितने विद्यार्थियों को छात्रगृह की आवश्यकता होगी, इसका अनुमान लगाकर यथासम्भव महाविद्यालयों के नजदीक किराये का ऐसा मकान ढूँढ़ने में छात्रों की मदद करेंगे जो छात्रगृह के अनुरूप हो। इस मकान का किराया उसमें रहने वाले विद्यार्थियों की संख्या के आधार पर जिला कार्यालय द्वारा मकान मालिक को सीधे भुगतान किया जाता है।

(iii) **आश्रम स्कूल-** सुदूर आदिवासी अंचलों में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार तथा कन्या शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए आदिम जाति एवं हरिजन कल्याण विभाग द्वारा आश्रम स्कूल संचालित किये जा रहे हैं। वर्ष 1986-87 से आश्रम स्कूलों को क्रमोन्नत कर उनमें माध्यमिक कक्षाओं के बच्चों को प्रवेश देने की व्यवस्था प्रारंभ की गई है, अब 30 व 100 सीटों वाले आश्रम स्कूल भी खोले गए हैं। सामान्यत: एक आश्रम स्कूल में 20 सीटें होती हैं। आहार देने की व्यवस्था रहती है, जो आश्रम क्रमोन्नत किए गए हैं, उनमें माध्यमिक स्तर की पढ़ाई की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार आश्रम बालक तथा बालिकाओं के लिए पृथक्-पृथक् संचालित किये जाते हैं। आश्रम स्कूल में रहने वाले बालक तथा बालिका को प्रतिमाह शिष्यवृत्ति दी जाती है।

(3) छात्रवृत्तियाँ एवं शिष्यवृत्तियाँ

(i) **छात्रवृत्तियाँ-** अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों को अध्ययन के दौरान आर्थिक परेशानियों का सामना न करना पड़े, इस उद्देश्य से शासन इन वर्गों के विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियों को छात्रवृत्तियाँ दे रहा है। ये छात्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं -

(a) **राज्य छात्रवृत्ति** (प्रो. मैट्रिक छात्रवृत्ति)- यह छात्रवृत्ति अनुसूचित जनजातियों के कक्षा 6 से 10वीं तक के छात्र-छात्राओं को दी जाती है।

(b) **विशेष छात्रवृत्ति-** यह छात्रवृत्ति 5 प्रतिशत से कम साक्षरता वाली जनजातियों के बच्चों को मिलती है।

(c) **उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्रावीण्य छात्रवृत्ति-** यह प्रावीण्य छात्रवृत्ति अनुसूचित जनजातियों के उन प्रतिभावान छात्रों को स्वीकृत की जाती है, जिन्होंने माध्यमिक स्तर की परीक्षा पास की है तथा जो और अधिक प्रवीणता के इच्छुक हों।

(d) **माध्यमिक स्तर पर प्रावीण्य छात्रवृत्ति-** मध्यप्रदेश शासन द्वारा वित्तीय वर्ष 1986-87 से कक्षा 5वीं की प्रावीण्य सूची में स्थान प्राप्त करने वाले आदिवासी विद्यार्थियों को भी कक्षा 6वीं से 8वीं तक प्रावीण्य छात्रवृत्ति स्वीकृत करने की योजना आरंभ की गई है।

(e) **मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति**- यह छात्रवृत्ति उन आदिवासी विद्यार्थियों को मिलती है जो मैट्रिक के बाद पढ़ाई जारी रखते हैं।

(f) **ऋण छात्रवृत्ति-** यह छात्रवृत्ति महाविद्यालयों में पढ़ने वाले उन आदिवासी विद्यार्थियों को स्टेट बैंक द्वारा स्वीकृत की जाती है जो सामान्य छात्रावासों में रहकर अध्ययन जारी रखने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। इस छात्रवृत्ति पर देय ब्याज की राशि आदिम जाति एवं हरिजन कल्याण विभाग द्वारा पटाई जाती

है। छात्रवृत्ति की यह राशि अध्ययन समाप्त होने के पश्चात् छात्र द्वारा स्वयं लौटाई जाती है। यह छात्रवृत्ति प्रदेश में या प्रदेश के बाहर शिक्षा पा रहे स्नातक या स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्ययन कर रहे उन विद्यार्थियों को स्वीकृत की जाती है जो छात्रावासों में रह रहे हों तथा जिन्हें पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति की पात्रता है।

(ii) **शिष्यवृत्तियाँ-** पूर्व माध्यमिक छात्रावासों में प्रवेश प्राप्त छात्र-छात्राओं को प्रतिमाह शिष्यवृत्ति दी जाती है।

महाविद्यालयों के छात्रावासों में शिष्यवृत्ति के स्थान पर छात्रावासीय दर पर छात्रवृत्ति मिलती है।

(4) विद्यार्थी कल्याण योजना

विभागीय विद्यार्थी कल्याण योजना के अंतर्गत निम्नांकित कार्यों के लिए सहायता दी जाती है -

(i) आकस्मिक विपत्ति,

(ii) विशेष रोग से पीड़ित होने पर रोग निवारण,

(iii) गरीब छात्रों को गणवेश,

(iv) विद्यार्थियों की विशेष अभिरुचि को प्रोत्साहन,

(v) लोक-नृत्य, लोक गीत आदि के प्रदर्शन में भाग लेने हेतु अवसर, तथा

(vi) विद्यार्थी कल्याण से सम्बन्धित विभिन्न अन्य कार्यक्रम।

(5) विभागीय प्रशिक्षण कार्यक्रम

मध्यप्रदेश सरकार द्वारा जनजातियों के विकास हेतु निम्नलिखित विभागीय प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं -

(i) **औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाएँ-** इंजीनियरिंग एवं गैर इंजीनियरिंग व्यवसायों में आदिवासी हरिजनों को प्रशिक्षण देने के लिए विभाग द्वारा अनेक औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाएँ संचालित की जा रही हैं। प्रशिक्षण काल में प्रशिक्षणार्थी बालकों एवं बालिकाओं को प्रतिमाह शिष्यवृत्ति दी जाती है। प्रशिक्षण काल में आवास, कर्मशाला, गणवेश एवं प्रशिक्षण की सुविधाएँ निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती हैं।

(ii) **सामान्य संस्थाओं में अतिरिक्त शिष्यवृत्ति-** विभागीय औद्योगिक संस्थाओं में अध्ययनरत बालक-बालिका प्रशिक्षणार्थियों को प्रतिमाह शिष्यवृत्ति दी जाती है। जन-शक्ति नियोजन विभाग के अन्तर्गत संचालित औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में देय शिष्यवृत्ति की दरें सामान्यत: कम होती हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए अनुसूचित जनजाति के प्रशिक्षणार्थियों को विभागीय एवं सामान्य औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में दी जा रही है। शिष्यवृत्तियों को अंतर की राशि अतिरिक्त शिष्यवृत्ति के रूप में भुगतान करने की योजना विभाग द्वारा क्रियान्वित की जाती है।

(iii) **प्रशिक्षण सहउत्पादन केन्द्र-** कम पढ़े-लिखे आदिवासी हरिजन युवकों को रोजगार के अवसर सुलभ कराने के लिये विभाग द्वारा 26 प्रशिक्षण-सह-उत्पादन केन्द्र संचालित किये जा रहे हैं। प्रशिक्षण की अवधि में प्रशिक्षणार्थी बालक एवं बालिका को प्रतिमाह से शिष्यवृत्ति दी जाती है एवं आवास व प्रशिक्षण की सुविधाएँ भी निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती हैं।

(iv) **टंकण एवं शीघ्र लेखन प्रशिक्षण-** हरिजन विशेषांक योजना के अन्तर्गत व्यावसायिक प्रशिक्षण हेतु संभाग स्तर पर टंकण एवं शीघ्र लेखन प्रशिक्षण केन्द्र संचालित किये जा रहे हैं। टंकण एवं शीघ्र लेखन प्रशिक्षण के लिये उम्मीदवार को माध्यमिक परीक्षा पास होना अनिवार्य है। इन केन्द्रों पर प्रशिक्षण की अवधि 3 से 6 माह की है।

(v) परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण की योजनाएँ- मध्यप्रदेश सरकार द्वारा आदिवासियों के बच्चों को विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओं में सफलता दिलवाने के उद्देश्य से परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण की योजनाएँ प्रारंभ की गई है, जिनकी विवेचना संक्षेप में इस प्रकार है -

(a) मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग हेतु परीक्षा हेतु प्रशिक्षण केन्द्र, भोपाल- भोपाल में परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र मध्यप्रदेश शासन आदिवासी, हरिजन एवं पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग के अन्तर्गत 1969 से कार्यरत है। इस केन्द्र का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति एवं अनूसूचित जनजाति के योग्य एवं साधन-सुविधा से वंचित युवा प्रतिभाओं को मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा विभिन्न प्रशासनिक सेवाओं के लिये आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओं के लिये प्रशिक्षण देना है। इस केन्द्र में प्रति वर्ष दो सत्र चलते हैं। पहला सत्र जुलाई से दिसम्बर तक चलता है। इस सत्र में मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग की प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है। दूसरा सत्र फरवरी से मई तक चलता है। इस सत्र में रोजगारोन्मुखी सामान्य प्रशिक्षण दिया जाता है।

(b) अखिल भारतीय परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र, रायपुर- अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के ऐसे स्वस्थ एवं योग्य उम्मीदवारों के लिये जो स्नातक या स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण हैं तथा अखिल भारतीय सिविल सेवाओं की प्रारंभिक परीक्षा में प्रवेश लेना चाहते हैं परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण व्यवस्था आदिम जाति एवं हरिजन कल्याण विभाग छत्तीसगढ़ शासन के तत्वावधान में कार्यरत तथा रविशंकर विश्वविद्यालय परिसर में अवस्थित परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र रायपुर, द्वारा की जाती है। प्रशिक्षण का माध्यम हिन्दी है। प्रशिक्षण हेतु प्रवेश का चयन अकादमिक आधार पर किया जाता है। चुने हुए प्रत्याशी को प्रतिमाह शिष्यवृत्ति दी जाती है तथा नि:शुल्क आवास की व्यवस्था उपलब्ध कराई जाती है।

(c) रोजगारोन्मुख सामान्य प्रशिक्षण सत्र- यह सत्र फरवरी से मई तक चलता है। इसका उद्देश्य बैंक, रेलवे, बीमा या कर्मचारी चयन आयोग आदि की भर्ती परीक्षाओं के लिये चयन के बेहतर अवसर सुलभ कराना है।

(d) अशासकीय संस्थाओं व व्यक्तियों द्वारा प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु प्रशिक्षण- आदिवासी हरिजन प्रत्याशियों को विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिये तैयार करने का कार्य काफी व्यापक है और केवल शासकीय प्रयासों से ही उसकी पूर्ति सम्भव नहीं है। अत: राज्य शासन द्वारा एक योजना स्वीकृत की गई है, जिसके अन्तर्गत प्रतियोगिता परीक्षाओं के लिये आदिवासी हरिजन उम्मीदवारों को प्रेरित और प्रशिक्षित कर उन्हें परीक्षा और साक्षरता में सफलता प्राप्त करने योग्य तैयारी कराने का काम हाथ में लेने वाली संस्थाओं को मानदेय तथा पाठ्यपुस्तकों का खर्च दिया जावेगा। यह योजना पूरे देश में 1981 से लागू की गई है। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य आदिवासी-हरिजन विद्यार्थियों को नि:शुल्क प्रशिक्षण एवं मार्गदर्शन देकर विभिन्न पाठ्यक्रमों में आरक्षित सीटों में प्रवेश दिलवाया है।

(6) आदिवासी राहत योजना

आदिवासी राहत योजना के अन्तर्गत ऐसे जरूरतमंद आदिवासियों अथवा आदिवासी परिवारों को तुरंत आर्थिक मदद पहुँचाई जाती है जो अपनी निर्धनता एवं असहाय अवस्था के कारण संकट की स्थिति में है और जिन्हें तत्सम्बन्धी जरूरत पूरी करने के लिए शासन की अन्य किसी योजना अथवा स्रोत से आर्थिक सहायता मिलने की सम्भावना न हो। आदिवासियों को जरूरत एवं मुसीबत के वक्त मदद पहुँचाने के उद्देश्य से यह योजना चालू की गई है।

(7) आदिवासी बसाहट योजना

आदिवासी उपयोजना क्षेत्र में एवं आदिवासी उपयोजना क्षेत्र से बाहर ऐसे आदिवासी कृषकों को जिन्हें शासन द्वारा कृषि भूमि आवंटित की गई है, उस भूमि पर पहली फसल आने तक गुजारे के लिये

जीवन-निर्वाह भत्ता स्वीकृत किया जाता है। यह जीवन-निर्वाह भत्ता आदिवासी बसाहट योजना के अन्तर्गत दिया जाता है। जीवन-निर्वाह भत्ते के रूप में प्रतिमाह कुछ धनराशि की देने की व्यवस्था है। यह सहायता 10 एकड़ तक के भूमिधारी आदिवासी कृषकों को दी जाती है।

(8) उपभोग ऋण योजना

राज्य के आदिवासी उपयोजना क्षेत्र में गैर सरकारी ऋणों पर रोक लगाने के पश्चात सीमांत कृषकों, भूमिहीन और कृषि मजदूरों की आवश्यक वस्तुओं एवं उपभोग ऋण की पूर्ति के लिये साहूकारों के पास जाने से बचाने के लिए आदिवासी उपयोजना के अन्तर्गत उपभोग ऋण उपलब्ध कराया जाता है। ऋण वितरण की इस योजना को उपभोग ऋण वितरण योजना के नाम से जाना जाता है। इस योजना के पीछे आदिवासियों को शोषण से बचाने का मुख्य उद्देश्य है। इस योजना के अन्तर्गत उपयोजना क्षेत्र में रहने वाले ऐसे छोटे आदिवासी किसान जिनके पास 10 एकड़ असिंचित अथवा 3 एकड़ सिंचित भूमि से अधिक भूमि न हो अथवा जो भूमिहीन मजदूर हों उन्हें उपयोजना क्षेत्र में कार्यरत आदिम जाति सेवा सहकारी समिति के सदस्य बनने पर यह ऋण दिया जाता है।

(9) बिना ब्याज ऋण योजना

आदिवासियों की आर्थिक स्थिति कमजोर होती है एवं कई अवसर ऐसे आते हैं जब उन्हें अपनी भूमि बेचने के लिये बाध्य होना पड़ता है। अनुसूचित क्षेत्रों में कृषि भूमि के विक्रय पर प्रतिबंध है। फलस्वरूप उनकी आवश्यकताओं की त्वरित पूर्ति के लिये विशेष परिस्थितियों में अनुसूचित क्षेत्र के आदिवासियों के लिये बिना ब्याज ऋण योजना लागू की गई है।

(10) संदिग्ध दायित्व निवारण योजना

आदिवासी क्षेत्र में विकास की गति तेज होने के साथ-साथ अनेक समस्यायें भी आ रही हैं। जैसे-कभी किसी आदिवासी को ऋण नहीं मिलता, लेकिन उस पर वसूली निकाल दी जाती है। कहीं लेखा-जोखा ठीक से नहीं रखे जाने के कारण भी सम्बन्धित आदिवासी के नाम पर देनदारी निकाल दी जाती है। ऐसे सभी प्रकरणों में प्रशासकीय व्यवस्था की पेचीदगी की जानकारी आदिवासी को नहीं होने के कारण उसे अकारण देनदारी का भार वहन करना पड़ता है अत: शासन द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों में आदिवासियों के दायित्वों के सम्बन्ध प्रकरणों को त्वरित निपटारे के लिए अनुसूचित क्षेत्र संदिग्ध दायित्व निवारण योजना लागू की गई है।

अनुसूचित क्षेत्रों में विभिन्न शासकीय तथा अर्धशासकीय संस्थाओं के द्वारा प्रवर्तित कार्यक्रमों के अन्तर्गत आदिवासियों ने नाना प्रकार के अनुबंधों के आधार पर आपद दायित्वों का निर्धारण इस योजना के नियमों के अन्तर्गत करने का प्रावधान है।

(11) सामूहिक विवाह प्रोत्साहन योजना

आदिवासियों को कन्या के विवाह के समय साहूकारों के कर्ज से ऐसे अवसर पर होने वाले फिजूल खर्च से बचाने तथा सामूहिक विवाह समारोह के माध्यम से आदिवासियों का मनोबल ऊँचा उठाने के उद्देश्य से मध्यप्रदेश शासन ने सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष 1985-86 में आदिवासी सामूहिक विवाह प्रोत्साहन योजना प्रारंभ की है। योजना का लाभ सम्पूर्ण मध्यप्रदेश की ऐसी आदिवासी कन्याओं के विवाह के लिये उपलब्ध है जो सामूहिक विवाह समारोह के अन्तर्गत विवाह कार्यक्रम में विवाह करेंगी।

इस योजना के अन्तर्गत पात्रता रखने वाले आदिवासी परिवारों को आर्थिक सहायता अनुग्रह अनुदान के रूप में मंजूर करने का प्रावधान है।

(12) भूखंड, मकानों व दुकानों के आवंटन संबंधी क्षतिपूर्ति योजना

इस योजना के अन्तर्गत किसी आदिवासी को आरक्षित भूखंड, मकान, दुकान के आवंटन से नगरीय निकाय को होने वाली आय की क्षतिपूर्ति वित्तीय सीमा के अन्तर्गत मध्यप्रदेश राज्य अन्त्यावसायी सहकारी विकास निगम के मार्फत आदिम-जाति, हरिजन एवं पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग द्वारा की जाती है।

(13) विशेष पिछड़े जनजाति समूहों का विकास कार्यक्रम

प्रदेश में निवास करने वाली अनुसूचित जनजातियों में से निम्नानुसार 6 जनजातियों को भारत सरकार द्वारा विशेष पिछड़े जनजाति समूह के रूप में मान्य किया है।

(i) बस्तर जिले के अबूझमाड़ क्षेत्र के अबूझमाड़िया,

(ii) जिला मंडला, तहसील कवर्धा (राजनांदगाँव जिला), बिलासपुर, गोरेला व मुंगली तहसीलें (बिलासपुर जिला), तहसील बैहर (बालाघाट जिला), तहसील सोहागपुर व पुष्पराजगढ़ (शहडोल जिला) के बैगा।

(iii) छिंदवाड़ा जिले के पातालकोट क्षेत्र के भारिया,

(iv) राजगढ़ जिले की जशपुर नगर तहसील, अम्बिकापुर व पाल तहसील (सरगुजा जिला) व बिलासपुर जिले की गोरेला व कटघोरा के पहाड़ी कोरबा।

(v) रायपुर जिले के गरियाबाद परियोजना क्षेत्र के कमार, तथा

(vi) ग्वालियर एवं चम्बल सम्भाग जिलों में रहने वाले सहरिया।

इन जनजातियों को अन्य आदिवासियों को मिलने वाली समस्त सुविधाओं के लाभ की पात्रता तो है ही, परंतु इनके विशेष पिछड़ेपन को देखते हुए जनजाति समूहों के लिये अलग-अलग अभिकरण भी गठित किये गये हैं।

विशेष पिछड़े जनजाति समूहों को विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले लाभों का विवरण इस प्रकार है -

(i) **आर्थिक विकास योजना** - आर्थिक विकास की योजनाओं को सामान्यत: एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम से सम्बद्ध करने की नीति रखी गयी है। विभाग जिसकी यह योजना है तथा एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले अनुदान के अलावा अभिकरण मद से भी अतिरिक्त अनुदान स्वीकृत किया जाता है ताकि अनुदान की कुल राशि अधिकतम 89 प्रतिशत रहे एवं सम्बन्धित पिछड़ी जनजाति के परिवार पर ऋण का भार 20 प्रतिशत तक रहे।

(ii) **शिक्षा की योजना-** साक्षरता का प्रतिशत इन जनजाति समूहों में कम होने के कारण इनके बच्चों को प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा के लिये प्रोत्साहित करने की योजना संचालित है। इसके अन्तर्गत प्राथमिक शाला के बच्चों को दो जोड़ी वस्त्र तथा लिखने-पढ़ने की सामग्री नि:शुल्क दी जाती है।

(iii) **स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाएँ-** इन क्षेत्रों की विशिष्ट बीमारियों को दृष्टिगत रखकर तथा स्वास्थ्य सुविधा देने की पुष्टि से नि:शुल्क दवाइयाँ एवं आवश्यकतानुसार आयोडीनयुक्त नमक भी दिया जाता है। जिन क्षेत्रों में पीने का साफ पानी उपलब्ध नहीं है, वहाँ नलकूप, पेयजल कूप भी अभिकरण मद से निर्मित किये जाते हैं।

(iv) **वृक्षारोपण-** जिन क्षेत्रों में वनों का क्षरण हुआ है - अथवा अतिरिक्त वन रोपण या बाँस रोपण की आवश्यकता है तथा पशु आहार या रोशनी पाल के लिये विशेष प्रकार के वृक्षारोपण की आवश्यकता है तो उसका भी रोपण अभिकरण के माध्यम से किया जा सकता है।

(v) **निर्माण कार्यक्रम-** निस्तारी तालाबों का निर्माण व पुराने तालाबों की मरम्मत का कार्य भी अभिकरण मद की राशि से किया जा सकता है। यदि सम्बन्धित जनजाति समूह के लोगों का आवागमन सुलभ कराने के लिये छोटी सड़कें, गाड़ी मार्ग, आवश्यकतानुसार पुलिया या सड़कें आवश्यक हों तो वह कार्य भी अभिकरण मद के हाथ में लिया जा सकता है।

संक्षेप में ऐसी योजनाएँ जिनमें सम्बन्धित जनजाति समूह का शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास सम्भव हो वे सभी योजनाएँ अभिकरण मद से ली जाती हैं।

(14) आदिवासी संस्कृति के परिरक्षण एवं विकास की योजना

आदिवासी क्षेत्रों में विकास की तीव्र प्रक्रिया के फलस्वरूप आदिवासी संस्कृति में गैर आदिवासी संस्कृति प्रविष्ट होती जा रही है। इससे आदिवासियों की भौतिक संस्कृति के विभिन्न अंग अपनी पारम्परिक विशेषताओं को धीरे-धीरे खो रहे हैं। अत: आदिवासियों की भौतिक संस्कृति से जुड़ी लोक कला, वृत्तियों, लोक-नृत्य, गीत-संगीत की मौलिक गुणवत्ता को संरक्षित करने के उद्देश्य से "आदिवासी संस्कृति का परिरक्षण एवं विकास योजना" संचालित की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत निम्नांकित कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं-

(i) समस्त बड़ी योजनाओं के मुख्यालयों पर आदिवासी लोक नृत्य प्रोत्साहन प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं।

(ii) आदिवासी विकास प्राधिकरण मुख्यालयों पर लोक नृत्य कार्यक्रम रखे जाते हैं।

(iii) भारत सरकार के आमंत्रण पर राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं को आदिवासी संस्कृति से अवगत कराने हेतु गणतंत्र दिवस के अवसर पर मध्यप्रदेश से आदिवासी प्रतिनिधियों को दिल्ली भेजा जाता है, तथा

(iv) विभिन्न स्थानों पर आदिवासी कलाओं एवं जीवन सम्बन्धी प्रदर्शनियाँ लगाई जाती हैं।

(15) तेंदूपत्ता सहकारीकरण योजना

मध्यप्रदेश में जहाँ वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार कुल 5.21 करोड़ जनसंख्या में 25 प्रतिशत आदिवासी तथा 13 प्रतिशत दलित हैं, जिनके लिये तेंदूपत्ता व्यवसाय का काफी महत्व है। मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री ने 20 जून, 1988 की लघु वनोपज के व्यवसाय को पूर्ण रूप से सहकारी क्षेत्र में लाने तथा ठेकेदारों को पूर्ण रूप से अलग करने की घोषणा की। इसका प्रमुख उद्देश्य आदिवासी श्रमिकों को उनके श्रम का उचित मूल्य दिलाना है। मुख्यमंत्री की घोषणा के अनुरूप तेंदूपत्ता इकट्ठा करने के लिये भिण्ड को छोड़कर 44 जिलों में 219 वनोपज सहकारी समितियाँ गठित की गई हैं। इन सहकारी समितियों के सदस्य तेंदूपत्ता इकट्ठा करने वाले वास्तविक श्रमिक ही बन सकेंगे। इन श्रमिकों की सदस्यता अंश पूँजी की राशि भी राज्य सरकार वहन करेगी।

मध्यप्रदेश शासन की तेंदूपत्ता सहकारीकरण नीति के अनुसार अब तेंदूपत्ता इकट्ठा करने, प्रोसेसिंग स्टोर करने और बेचने का काम सहकारी समितियाँ ही करेंगी। इस फैसले से जंगलों पर आश्रित कमजोर तबके के लोगों खासकर आदिवासियों के शोषण और आर्थिक-सामाजिक अन्याय का ऐतिहासिक सिलसिला यहीं थम जाएगा।

(16) अंत्योदय योजना

पंचवर्षीय योजनाओं में आदिवासियों के विकास कार्यक्रम को गति प्रदान करने के उद्देश्य से हाल ही में सरकार ने अंत्योदय कार्यक्रम प्रारंभ किया है। इस योजना में मुख्यत: 12 कल्याणकारी योजनाओं को शामिल किया गया है -

(i) **नवजीवन-** गरीबी और भुखमरी से त्रस्त होकर रोजी-रोटी की तलाश में शहरों में आ बसे आदिवासियों के लिए फुटपाथों एवं सार्वजनिक स्थलों में अपमानजनक जीवन बिताने के अलावा कोई चारा नहीं होता। इस समस्या को दृष्टिगत रखते हुए सरकार ने नवजीवन के माध्यम से आदिवासियों को अत्यंत सस्ती दर पर भू-खंड आवंटित किये जाने की व्यवस्था की है। नाममात्र के मूल्य पर मिलने वाले इन भू-खण्डों में सड़क, पेयजल, मल एवं जल निकास, प्रकाश इत्यादि की व्यवस्था की जायेगी।

(ii) **स्वावलम्बन-** आदिवासियों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने एवं उन्हें व्यवसाय शुरू करने हेतु 'स्वरोजगार योजना' के तहत अत्यंत आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराया जायेगा। अनुसूचित जनजातियों के निर्धन सदस्यों को स्वावलम्बन के माध्यम से पक्की दुकानें भी उपलब्ध करायी जायेंगी।

(iii) **पवन पुत्र-** अनुसूचित जनजातियों के निर्धन युवकों के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने हेतु उन्हें इस योजना के द्वारा आटो रिक्शा, टेम्पो तथा इसी प्रकार के अन्य अर्थोपार्जक वाहन प्रदान किये जायेंगे।

(iv) **वसुंधरा-** वसुन्धरा योजना के तहत भूमिहीन अनुसूचित जनजातियों को भूमि खरीदने हेतु 10 वर्षों के लिए ब्याज मुक्त ऋण प्रदान किया जाता है।

(v) **मधुवन-** मधुवन योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों की आधुनिकतम डेयरी फार्म और दूसरे पशुधन विकास फार्मों की स्थापना हेतु ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इन योजनाओं को गाँधी माडल में निर्धारित सामुदायिक प्रणाली के आधार पर अनुसूचित जनजातियों द्वारा चलाया जायेगा।

(vi) **सहकारी-** इस योजना के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को खनिज एवं ईंटा-भट्ठा की सहकारी समितियाँ स्थापित करके सीधे लाभ पहुँचाया जायेगा।

(vii) **जनजीवन-** इस योजना के माध्यम से आदिवासी जनजातियों को सिंचाई योजना की लागत का 75 प्रतिशत प्रशासकीय अनुदान उपलब्ध कराया जायेगा।

(viii) **निर्मित-** इस योजना के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों को योग्य इंजीनियरों एवं आर्कीटेक्ट्स के द्वारा भवन निर्माण, कार्य में प्रशिक्षित किया जायेगा। इसके अतिरिक्त शासन के निर्माण कार्यों में अनुसूचित जनजातियों को 'ठेका' सहकारी समितियों के द्वारा दिया जायेगा।

(ix) **रफ्तार-** इस योजना के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों के युवकों को ड्राइविंग एवं कन्डक्टरिंग में प्रशिक्षित करके यातायात समितियों के माध्यम से उन्हें ट्रक एवं बस के लिये ऋण अनुदान उपलब्ध कराया जायेगा।

(x) **सहारा-** अनुसूचित जनजाति के निराश्रित, कुष्ठ रोगियों, विकलांगों, निराश्रित वृद्धों, विधवाओं और परित्यक्ता महिलाओं के जीवन-यापन हेतु इस योजना के तहत सरकार सामूहिक लघु-उद्योगों एवं पशुपालन योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु विशेष अनुदान राशि की व्यवस्था करेगी।

(xi) **जीवनधारा-** इस योजना के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को लघु सिंचाई सुविधा, मिनीकट एवं कृषि उपकरण उपलब्ध कराया जायेगा।

मध्यप्रदेश में सामुदायिक जनजातीय रेडियो केन्द्र- मध्यप्रदेश के अलीराजपुर जिले के भाबरा में विश्व के पहले भीली सामुदायिक रेडियो केन्द्र आरंभ होने के बाद गोंड, बैगा, सहरिया, कोरकू, भारिया बहुल क्षेत्रों में सामुदायिक जनजातीय रेडियो केन्द्र निम्नानुसार हैं-

1. बैगा बहुल क्षेत्र चाड़ा (जिला डिंडौरी)
2. बैगा बहुल क्षेत्र बैहर (जिला बालाघाट)
3. कोरकू बहुल क्षेत्र खालवा (जिला खंडवा)
4. गोंड बहुल क्षेत्र चिचोली (जिला बैतूल)

5. भील बहुल क्षेत्र नालछा (जिला धार)

6. भील बहुल क्षेत्र मेघनगर (जिला झाबुआ)

7. सहरिया बहुल क्षेत्र सेसईपुरा (जिला श्योपुर)

8. भारिया बहुल क्षेत्र बिजौरी (जिला छिंदवाड़ा)

9. भील बहुल क्षेत्र (जिला गुना)

उल्लेखनीय है कि यह पहल राज्य के आदिवासी कल्याण विभाग के उपक्रम 'वन्या' द्वारा की गई है। इसके अंतर्गत राज्य के सभी आदिवासी बहुल क्षेत्रों में कुल 110 केन्द्र संचालन की योजना है।

मवासी जनजाति का तैयार होगा शब्दकोश- मध्यप्रदेश की आदिम जाति अनुसंधान एवं विकास संस्था द्वारा छिंदवाड़ा जिले की मवासी जनजाति की बोली का शब्दकोश तैयार किया जा रहा है। यह जनजाति छिंदवाड़ा के जुन्नारदेव, तमिया, परासिया, बिछुआ, मोखेड़ व अमरवाड़ा में पाई जाती है तथा इसकी बोलियाँ विलुप्त होने की कगार पर हैं।

सुधार हेतु सुझाव/उपचार (Suggestions / Remedies for Improvement)

अधिकार संरक्षण कानून, 1955 के दंड प्रावधान अस्पृश्यता की समस्या से निबटने में केवल सीमित भूमिका रखते हैं। अतएव विभिन्न स्तरों पर अभी शासकीय अभिकरणों द्वारा इस दिशा में अधिक ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। प्रशासन/सरकारी संयंत्र को उच्च जाति हिन्दुओं के पक्ष में अपनी सामान्य पूर्ण धारणा को समाप्त करके अस्पृश्यता-उन्मूलन कार्य में स्वयं को अधिक सम्बद्ध करना होगा। इसके अतिरिक्त, अस्पृश्यता की कुरीति के विरुद्ध प्रबल जनमत तैयार करना अनिवार्य है। इस कुरीति को समाप्त करने के लिये निम्नलिखित उपाय भी किये जाने चाहियेः

(1) यह सुनिश्चित करने के लिये कि नागरिक अधिकार संरक्षण के अधीन अपराधियों को अधिक संख्या में दंडित किया जाये, राज्य पुलिस कर्मचारियों एवं अन्य सरकारी अधिकारियों जिनके कार्य को विवादों के उचित पंजीकरण, त्रुटिरहित जाँच, एवं दृढ़ अभियोजन जिसकी परिणति दंड में होती है, के मामले में प्रशंसनीय समझा जाता है, के लिये उत्प्रेरक स्कीमों को आरम्भ करने के बारे में विचार करें। समर्पित एवं सच्चे कार्यकर्ता की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में अच्छी टिप्पणी अंकित करना एक ऐसा उत्प्रेरक हो सकता है।

(2) अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु 'पखवाड़ा' अथवा 'सप्ताह' मनाये जाने जैसे विशेष अभियान भी इस दिशा में लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं।

(3) सरकारी विभागों अथवा शैक्षणिक संस्थाओं में किसी भी स्पष्ट अथवा छिपे रूप में अस्पृश्यता के अभ्यास को कठोरता से निपटा जाये। विभागीय कार्यवाही के अतिरिक्त तुरन्त कठोर कानूनी कार्यवाही भी अपराधी के विरुद्ध की जानी चाहिये।

(4) प्राथमिक एवं मिडिल स्तरीय स्कूलों में उपयुक्त पाठन सामग्री की व्यवस्था द्वारा शैक्षणिक प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन किये जाने चाहिये।

(5) अनुसूचित जातियों की स्थिति को बेहतर करने के उद्देश्य से कुछ विकासात्मक स्कीमों से विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गयी है क्योंकि ऐसी स्कीमें उनको शेष जनसंख्या से अलग कर देती हैं। उदाहरणतया, विभिन्न स्कीमों के अधीन अनुसूचित जातियों के लिये मकान/स्थान गाँव से दूर स्थित होते हैं। जो अन्य जातियों के लोगों के साथ निकट आने में बाधा डालते है। इसी प्रकार, केवल अनुसूचित जातियों के लिये खोले गये छात्रावास एवं संस्थाएँ उनको अन्य जातियों के विद्यार्थियों से दूर रखती है। यह वांछनीय होगा कि अनुसूचित जातियों के आर्थिक कल्याण हेतु प्रोग्रामों को इस ढंग से क्रियान्वित किया जाये जिससे इस प्रक्रिया में अनुसूचित जातियाँ समाज की मुख्य धारा में विलीन हो सके।

(6) चूँकि अस्पृश्यता की जड़ें गहरी हैं, अतएव लोगों की मानसिक वृत्ति एवं सामाजिक दृष्टिकोण को परिवर्तित करने के उपायों एवं साधनों की खोज करनी होगी। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सरकार स्वयंसेवी संगठनों के अतिरिक्त चयनित शैक्षणिक एवं अनुसंधान संस्थानों की अस्पृश्यता वाले क्षेत्रों का पता लगाने के लिये व्यापक सर्वेक्षण हेतु सम्बद्ध करे।

(7) विभिन्न जन-प्रचार साधनों यथा रेडियो, दूरदर्शन, समाचार पत्रों, सिनेमा, तथा वाद-विवादों, गोष्ठियों, निबन्धों, प्रभातफेरियों एवं पदयात्राओं के माध्यम से समुचित प्रचार एवं प्रसार किया जाये।

(8) सामुदायिक भोजन जिसमें अनुसूचित जातियों को सम्मिलित किया जाये एवं अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाये। यदि किसी पुस्तक, धर्म-ग्रन्थ अथवा अन्य किसी प्रकाशन में स्पष्ट अथवा निहित जाति आधार पर किसी रूप में भेदभाव का पक्ष-समर्थन किया गया है तो उसके विरुद्ध उचित उपचारिक कार्यवाही की जाये।

जबकि अनुसूचित जातियों/जनजातियों के कल्याण सम्बन्धी विभिन्न प्रोग्रामों एवं विषयों का वर्णन करते हुये उनके दोषों को दूर करने एवं प्रशासकीय तंत्र में परिवर्तन एवं संशोधन करने के बारे में उपयुक्त स्थानों पर सुझाव दे दिये गये हैं, निम्नलिखित अन्य सुझाव भी वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं:

(1) पीड़ित वर्गों के संरक्षण हेतु केन्द्रीय प्रायोजित प्रोग्राम राज्यों को अन्तरित न किया जाय।

(2) आर्थिक पुनर्वास को सफल बनाने के लिये इन वर्गों का शैक्षणिक स्तर ऊँचा उठाना आवश्यक है।

(3) अनुसूचित जातियों/जनजातियों की भूमि से बेदखली को नियंत्रित करने वाले संरक्षण कानूनों को लागू किया जाये।

(4) भूमिहीन अनुसूचित जातियों/जनजातियों को भूमि आवंटित करने के उपायों की खोज की जाये तथा उन्हें आवश्यक कृषि निवेश प्रदान किये जायें।

(5) जनजातीय क्षेत्रों में प्रशासन को सुधारने के लिये पाँचवीं सूची के अधीन विनियमों का तुरन्त निर्माण किया जाये। स्वायत्त जिला परिषद उतनी प्रभावी नहीं हो सकती जितना देहात परिषद हो सकती है।

(6) प्रमुखतया जनजातीय क्षेत्रों, चाहे वे अनुसूचित क्षेत्र हों अथवा नहीं, में देसी शराब की दुकानों को बंद किया जाये।

(7) आठवीं योजना में इन दलित वर्गों के लिये प्रावधान उनकी जनसंख्या के अनुपात से अधिक होना चाहिये ताकि पिछली कमी को पूरा किया जा सके। विस्तृत स्कीमें बनाते समय योजना आयोग राष्ट्रीय अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग के साथ मिलकर कार्य करे।

(8) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग इन जातियों हेतु विभिन्न विकास प्रोग्रामों का व्यापक मूल्यांकन करें ताकि मध्यावधि सुधार किये जा सकें।

(9) सही व्यक्तियों तक लाभ पहुँचाने के लिये सभी प्रकार के रिसावों को भरने के लिये उपाय किये जायें।

(10) अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लाभार्थ राज्यों में वित्तीय एवं विकास निगमों की कार्यप्रणाली का राष्ट्रीय अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग द्वारा पर्यवेक्षण किया जाना चाहिये।

(11) छठवीं सूची में उपलब्ध स्व-प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्था पाँचवीं सूची क्षेत्रों में भी लागू की जाये।

(12) कृषि मूल्य आयोग के समान मामूली वन उत्पाद का आसादन-मूल्य निर्धारित करने हेतु मूल्य आयोग होना चाहिये।

अनुसूचित जातियों/जनजातियों के आर्थिक-सामाजिक विकास हेतु सभी कल्याण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का दायित्व कल्याण मंत्रालय का है। यह वाँछनीय होगा कि इन जातियों के विरुद्ध अत्याचारों के विषय

को गृह मंत्रालय को अन्तरित कर दिया जाये क्योंकि इसके पास कानून एवं व्यवस्था तथा सरकार के आदेशों एवं निर्देशों के संचार हेतु सभी प्रकार के साधन होते हैं।

राज्य स्तर पर अनुसूचित जातियों के कल्याण का कार्य समाज कल्याण विभाग की देखरेख में किया जाता है क्योंकि अनुसूचित जातियों के कल्याण का कार्य बहुआयामी एवं व्यापक है, अतएव वांछनीय होगा कि इसके लिये उनके कल्याण प्रोग्रामों के क्रियान्वयन हेतु अलग विभाग की स्थापना की जाये।

निष्कर्ष (Conclusion)– अनुसूचित जाति/जनजाति राज्य के कुल योजना परिव्यय के अपनी जनसंख्या के अनुपात में हिस्सा पाने के अधिकारी हैं। वस्तुतः उनके भूत एवं वर्तमान अभावों की सीमा तथा उनकी समस्याओं की गंभीरता को देखते हुए तो उन्हें अधिक परिव्यय की आवश्यकता है। उनकी विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को प्राथमिकता के क्रम में मालूम किया जाना चाहिये।

वस्तु स्थिति यह है कि विविध संवैधानिक सुरक्षाओं एवं उनके कल्याण हेतु अनन्य कार्यक्रमों के बावजूद भी अनुसूचित जातियों/जनजातियों की दशा शोचनीय है। कमजोर वर्गों के लाखों व्यक्तियों, छोटी काश्त वाले तथा भूमिहीन भी, के लिये शताब्दियों तक पीड़ित अत्याचारों से मुक्ति केवल एक स्वप्न है। एक ओर, जाति-आधारित असमता सभी घोषणाओं के बावजूद बढ़ती जा रही है एवं, दूसरी ओर, देश के जनजातीय क्षेत्रों में असंतोष सुलग रहा है। प्रौद्योगिकी प्रगतियाँ, बेहतर भविष्य की ओर बढ़ने में सहायता देने के स्थान पर और अधिक कष्ट देकर उनका विध्वंस कर रही हैं। जनजातीय क्षेत्रों में स्थिति विशेष तौर पर गम्भीर है जैसा झारखंड अथवा बोडो आंदोलन से प्रकट होता है। उनके परम्परीय अधिकारों की पूर्ण अवहेलना एवं तथाकथित विकासीय परियोजनाओं के नाम पर उनको बल-पूर्वक विस्थापन ने जनजातियों को हठी बना दिया है। कमजोर वर्गों पर अत्याचारों ने एक नये आर्थिक आयाम को जन्म दिया है। स्वार्थी हितों के संगठित हो जाने के कारण, वंचितों को समतायुक्त लाभ सुनिश्चित करने का कार्य अधिक दुष्कर हो गया है।

अस्पृश्यता प्रतिबन्ध एवं नौकरियों में आरक्षण भी हरिजनों की स्थिति को बेहतर बनाने में अधिक सफल नहीं हो सके हैं। किसी न किसी रूप में अस्पृश्यता अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित है। नगरीय क्षेत्रों में भी अनुसूचित जातियों के विरुद्ध भेदभाव के उदाहरण देखने को मिलते हैं। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर को आशा थी कि अस्पृश्यता का अन्त दस वर्ष के अन्दर हो जायेगा एवं एक नयी सामाजिक व्यवस्था का जन्म होगा परन्तु स्वतंत्रता के इतने वर्षों के बाद भी हम इस समस्या का समाधान पूरी तरह नहीं कर पाये हैं।

दलितों एवं सवर्णों के मध्य भूमि विवाद, सामाजिक-आर्थिक शोषण, भूमिहीन काश्तकारों की वेदखली, कुछ मन्दिरों में दलितों का प्रवेश विवाद के मुख्य कारण हैं। हालाँकि सरकार ने अनेक कानून बनाये हैं परन्तु राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरों (NCRB) के आँकड़ों के अनुसार आज भी दलितों के खिलाफ अत्याचार कम नहीं हुआ है और आज भी दलित वर्ग समानता के लिये संघर्ष कर रहा है।

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Question)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. भारत में वन्य जातीय कल्याण कार्यक्रम की जानकारी लिखिए।
2. मध्यप्रदेश की जनजातियों के लिए चलाये जा रहे कल्याण कार्यक्रम का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. भारत में वन्यजातीय कल्याण की संवैधानिक व्यवस्थाएँ स्पष्ट कीजिए।
2. आदिवासी पुनः स्थापना की योजनाएँ स्पष्ट कीजिए।

3. छात्रावास, छात्रगृह एवं आश्रम स्कूल का वर्णन कीजिए।

4. मध्यप्रदेश में जनजातियाँ और विकास योजनाओं की स्थापना कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. आदिवासी विकास प्रखण्ड की स्थापना सन् .... में की गई-

   (अ) 1952 (ब) 1960 (स) 1970 (द) 1975

2. जनजातीय विकास कार्यक्रम के लिए .... व्यवस्था की गई-

   (अ) शिक्षा (ब) आर्थिक विकास

   (स) कल्याण कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण (द) उपरोक्त सभी

3. जनजातियों के लिए शैक्षणिक योजनाएँ ....

   (अ) गुरुकुल विद्यालय (ब) कन्या साक्षरता प्रोत्साहन

   (स) पढ़ो कमाओ योजना (द) उपरोक्त सभी

उत्तर - 1. (अ), 2. (द), 3. (द)।



16

मध्यप्रदेश की प्रमुख जनजातियाँ : गोंड, भील, कोरकू, भारिया, सहारिया एवं बैगा

(MAJOR TRIBES OF MADHYA PRADESH : GOND, BHIL, KORKU, BHARIYA, SAHARIYA & BAIGA TRIBES)

गोंड
(Gond)

गोंड एक संस्कृति सम्पन्न और प्रभाव की दृष्टि से एक सुदृढ़ जनजाति है। गोंड प्रकृति की कोख में किसी पहाड़ी पर या नदी किनारे रहना पसंद करते हैं। गोंडों के अधिकांश गाँव सड़क से दूर जंगलों में बसे होते हैं। गोंड प्रकृति प्रेमी होते हैं। प्राकृतिक जीवन उनका आदर्श जीवन होता है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि भारत के मूल निवासी आदिवासी ही है। गोंड जनजाति उनमें सबसे प्रभावशाली, पुरातन एवं व्यापक समूह है।

गोंड जनजाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सुदूर ऐतिहासिक साधन नहीं मिलते लेकिन आदिमपुरा आख्यानों में गोंड जनजाति का प्रमुखता से उल्लेख मिलता है। बिहार और पश्चिम बंगाल के एक ऐतिहासिक 'गोंड' क्षेत्र के मूल निवासी होने के कारण ये लोग गोंड कहलाये। मध्यप्रदेश में गोंडों के कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य भी मिलते हैं। एक समय में गोंडवाना एक बड़ा राज्य था। मध्यप्रदेश में गोंडवाना क्षेत्र का नाम गोंड शासकों और गोंड जनों से अभिहित है। इस जनजाति का गोंडवाना भूमि पर सम्पूर्ण शासन और आधिपत्य का। रानी दुर्गावती इस जनजाति की प्रमुख वीरांगना एवं कुशल शासिका थीं। आज भी मध्यप्रदेश की जितनी जनजातियाँ हैं उनकी कुल जनसंख्या में से आधे से अधिक गोंड लोगों की हैं। गोंड सर्वाधिक प्रभावशाली जनजाति है। गोंड जनजाति की पचास से अधिक उपशाखाएँ हैं जिनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व, स्थान, बोली और सांस्कृतिक सामाजिक क्रियाकलाप है।

गोंड जनजाति पूर्वी क्षेत्र से भारत के मध्य क्षेत्र की ओर से घने जंगलों पर्वतों एवं कुछ मैदानी क्षेत्रों में प्रसारित होती गई। कुछ भाषाई प्रमाणों के आधार पर पहले गोंड जनजाति का फैलाव दक्षिण भारत में हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे गोंडों का मध्य क्षेत्र में आगमन हुआ। धीरे-धीरे ये लोग दक्षिण भारत से मध्यभाग के जंगलों और पहाड़ियों में रहने लगे।

गोंड जनजाति मध्यप्रदेश की ही नहीं बल्कि भारत की सबसे बड़ी जनजाति है। मध्य प्रदेश में इनकी जनसंख्या वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 50 लाख से अधिक आँकी गई थी। जो प्रदेश की कुल जनजातीय जनसंख्या का 35 प्रतिशत थी। इसके बाद के वर्षों के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं लेकिन निश्चित रूप से इन वर्षों में गोंड जनजाति की जनसंख्या में वृद्धि अवश्य हुई होगी। मध्यप्रदेश में विंध्य, सतपुड़ा क्षेत्र, नर्मदा नदी के किनारे तथा छत्तीसगढ़ में इसका प्रमुख निवास क्षेत्र बस्तर, काँकेर, दन्तेवाड़ा, मंडला, डिंडोरी, रायपुर, धमतरी, बिलासपुर, कोरबा, सरगुजा, कोरिया, राजनाँदगाँव, दुर्ग, कवर्धा आदि क्षेत्रों में गोंड अथवा गोंड जनजाति की कोई न कोई शाखा का एक निवास अवश्य देखा जा सकता है। मध्यप्रदेश में नर्मदा नदी के उद्गम अमरकंटक (शहडोल), सीधी, सतना, पन्ना, सागर, दमोह, खण्डवा (पू.नि.) सिहोर, नरसिंहपुर,

बुरहानपुर, रायसेन, उमरिया, जबलपुर, होशंगाबाद एवं हरदा आदि जिलों में पाये जाते हैं। प्रदेश के अन्य जिलों में इनकी जनसंख्या कम है।

भौतिक संस्कृति (आवास, पहनावा आदि) - गोंड आदिवासी होते हुए भी समुन्नत और समृद्ध किसान कहलाते हैं। गाँवों में गोंडों की वहुलता के कारण सारे गाँव गोंड गाँव ही कहलाते हैं। लेकिन प्रत्येक गाँव के गोंडों के अतिरिक्त अन्य जनजाति के लोग भी सामाजिक सामन्जस्य के साथ प्रेमपूर्वक निवास करते हैं।

गोंडों के घर झोपड़ीनुमा व मिट्टी के बने हुए होते हैं, मकान की छत घास-फूस या देशी खपरैल की बनी होती है। घर के सामने पर ही बरामदा होता है, दरवाजे बाँस या लकड़ी के बने होते हैं। घर के सामने दीवारों से घिरा आँगन होता है। पीछे का भाग बाड़ी कहलाता है। इसमें सब्जी-भाजी लगाते हैं। घर के अन्दर अनाज रखने की कोठी मिट्टी से बनी होती है। एक किनारे में देवी देवता का स्थान होता है। एक झोपड़ी या मकान बनाने के लिये मिट्टी, पुआल, लकड़ी, बाँस, खपरैल आदि गाँव जंगल से जुटा लिया जाता है। दीवाल की मिट्टी को पक्की बनाने के लिये कोदो का पैरा या भूसा मिलाकर गूँथ लिया जाता है। गोंड अपने मकान परम्परा के अन्तर्गत चली आ रही ग्रामीण वास्तुकला के अनुरूप बनाने में दक्ष होते हैं। गोंड अपने मकान स्वयं अपने हाथों से बनाते हैं। गोंडों के घर का मुख्य द्वारा साफ-सुथरा होता है। घर की दीवारों पर स्त्रियाँ मिट्टी से विभिन्न कलात्मक फूल-पत्ते एवं पशु-पक्षियों की आकृतियाँ बना देती हैं। मकान बनाते समय गोंड शुभ-अशुभ का विचार जरूर करते हैं। मकान का काम शुरू करने के पूर्व पारम्परिक पूजा-पाठ का निर्वाह भी गोंड लोग अनिवार्य रूप से करते हैं।

गोंडों का प्रिय भोजन पेज है। पेज खान-पान का प्रमुख अंग है। गोंडों का मुख्य आहार कोदों अर्थात् कोदई का भात है। गोंड कई प्रकार की सब्जियों तथा कन्दमूल का उपयोग करते हैं। ये दिन भर में तीन बार भोजन करते हैं।

गोंड पुरुष घुटने तक धोती, बंडी, कंधे पर पिछौरा, सिर पर मुरैठा बाँधते हैं। कलाई में चाँदी का चूड़ा, गले में मोहर तथा कान में बूँदा अवश्य पहनते हैं। गोंड स्त्रियाँ छः से आठ गजी साड़ी घुटने तक काँछ लगाकर पहनती है। पुरुषों में नीली या काली बंडी पहनने की विशेष परम्परा है जबकि महिलायें लाल, जामुनी, गहरे रंग के साथ सफेद भी खूब पसंद करती हैं। गोंड स्त्रियाँ चुरिया-जुरिया, पटा, बहुटा, चुटकी, तोड़ा, पैरी, सतुवा, हमेल, ढरि-झरका, तरवी, बारी टिकुसी आदि आभूषण पहनती हैं। पुरुष एवं स्त्रियाँ दोनों में अंगूठी पहनने का शौक समान रूप से प्रचलित है। गोंड की प्रत्येक उपशाखा की वेशभूषा और गहने अलग-अलग होते हैं। गोंड महिलायें विभिन्न प्रकार के मुडने शरीर पर धारण करना पसंद करती हैं।

गोंड जनजाति का आर्थिक जीवन

गोंडों के आर्थिक जीवन का आधार कृषि है। यही इनका प्रमुख व्यवसाय भी है। खेती-किसानी, शिकार, वनोपज संग्रह और मजदूरी गोंड जनजाति के लोग हमेशा से करते चले आ रहे हैं। गोंड लोग तथा उसकी उपशाखायें सीढ़ीनुमा खेती समतल मैदानी इलाकों में करते हैं। खेती की मुख्य फसलों में कोदों, कुटकी, रागी, मड़िया, धान, ज्वार, तुअर, उड़द, मूँग, कुलथी, बेलिया, खेसरी-तिलहन जगनी आदि हैं। वनोपज में तेंदूपत्ता, आचार, हर्रा, बहेड़ा, आँवला, महुआ, गुल्ली, सालबीज, मोहलाइन पत्ता आदि हैं। गोंड मेहनतकश किसान स्वयं मजदूर हैं। जिन गोंडों के पास कृषि योग्य भूमि नहीं है वे लोग हरवाही करते हैं। गोंडों के आर्थिक स्रोतों को देखने से यह निष्कर्ष निकलता है कि गोंड लोग बारहों महीने मेहनत और मजदूरी करते हैं परन्तु इनको अपनी मेहनत का पूरा मूल्य नहीं मिल पाता है। अतः आमदनी कम एवं खर्च ज्यादा के कारण अभाव की जिंदगी जीते हैं। लेकिन वर्तमान समय में शिक्षा के प्रसार एवं विकास के नये आयामों के चलते कई गोंड परिवारों ने अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार लिया है जिसके कारण आज अनेक गोंड

परिवार आर्थिक रूप से संपन्न जीवन जी रहे हैं। गोंड एक प्रगतिशील जनजाति है। समय के साथ इनमें शिक्षा का प्रसार-प्रचार हुआ है जिसके कारण गोंड जनजाति में अब बहुत उत्थान हुआ है।

गोंड जनजाति का राजनैतिक संगठन

गोंड समाज पुरुष प्रधान समाज हैं। गाँव का मुखिया मुकद्दम होता है। मुकद्दम सरकार को लगान वसूल कर के देता है। मुकद्दम की नियुक्ति परम्परागत होती है। मुकद्दम के गौटिया भी कहते हैं। कोटवार यद्यपि शासन का व्यक्ति होता है। फिर भी वह मुकद्दम की हर संभव सहायता करता है। गाँव के दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्तियों में मुखिया, बरूआ या पण्डा होता है। गाँव की पंचायत के निर्णय को सभी लोग मानते हैं। इस तरह गोंडों में परम्परागत राजनीतिक संगठन अभी भी विद्यमान है।

गोंडों का जीवन समय के साथ बदल रहा है। इसका सब से बड़ा कारण गोंड भूमिद्वार किसान और मध्यम श्रेणी के परिवारों में शिक्षा स्तर बढ़ा है। गोंड नौकरियों से लेकर राजनीतिक क्षेत्रों तक में आगे आये हैं। शासन द्वारा विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं में गोंड लोग अपनी भागीदारी कर रहे हैं। शासकीय सहायता का लाभ भी गोंड समाज को मिल रहा है।

गोंड गाँव में समुदाय का अपना राजनीतिक लोकतांत्रिक संगठन होता है जिसमें मुखिया और अन्य अधिकारियों का चयन गाँव के लोगों द्वारा किया जाता है। प्रत्येक गाँव की अपनी परिषद (पंच) होती है जिसमें मुखिया, पुजारी, गाँव का चौकीदार और 4-5 बुजुर्ग होते हैं।

वर्तमान राजनीतिक स्थिति में, कुछ गोंड विधानसभा, लोकसभा के सदस्य भी हैं। परन्तु गोंड अपनी संख्या के बावजूद जनजातीय विभाजन के कारण, राजनीतक रूप से अधिक शक्तिशाली नहीं हो पाये है।

गोंड जनजाति का सामाजिक संगठन

गोंड समाज पितृसत्तात्मक होता हैं। पुरुष परिवार का मुखिया होता है।

घर में मुखिया और वृद्ध लोगों की आज्ञा सभी मानते हैं। घर में सास का महत्व दूसरा स्थान रखता है। वह घर की मालकिन होती है। घर में छोटी बहन के बइया, बड़ी बहन के दीदी, बड़े भाई को बाबू, ससुर को राऊत, सास के रऊताइन और भाभी को भौजी कहते हैं। माता-पिता को दाऊ, दाई, भानजे को भाँचा कहते है। गोंडों में पर्दा प्रथा नहीं है। इसका कारण यह है कि स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर के भीतर ही नहीं घर के बाहर भी होता है। गोंड स्त्री सच्चे अर्थों में पति की सहचरी होती है। महिलाओं का स्थान केवल घर के भीतर ही नहीं बल्कि वे घर के बाहर भी पुरुष कन्धे से कन्धा मिलकर जीवन तथा जीविकोपार्जन का हर कार्य करती हैं। बड़ों की मान मर्यादा रखना घर की बहू का कार्य है। समाज की बैठकों में सभी को बुलाया जाता है। सबकी राय से ही निर्णय लिये जाते हैं।

गोंड गोंडी बोली बोलते हैं। गोंडी द्रविड़ परिवार की मध्यवर्ती वर्ग की भाषा है। छिंदवाड़ा, सिवनी, बैतूल, होशंगाबाद, पूर्वी निमाड़ और बालाघाट के गोंड लगभग शुद्ध गोंडी बोलते हैं। परन्तु शहडोल, रीवा तथा मण्डला में गोंडी का वह रूप दिखाई नहीं देता है। मण्डला की बोली छत्तीसगढ़ी से प्रभावित है। शहडोल, रीवा और सीधी की गोंडी में बघेली का अधिक प्रभाव है। बैतूल में शुद्ध गोंडी का प्रयोग आज भी होता है। गोंडों की उपजाति मुरिया एवं माड़िया लोग गोंडी के साथ हल्बी का भी प्रयोग सरलता से करते हैं। हिन्दी का व्यवहार प्रत्येक आदिवासी सामान्य बोल-चाल में करना जानते हैं।

गोंडों की वाचिक परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। संस्कार गीत ऋतु पर्व-त्योहार तथा अन्य सामाजिक गीत गाने की परम्परा गोंड समाज में है। गोंडों के प्रसिद्ध गीतों में करमा, ददरिया, सैला, गोंथो, रीना, भड़ौनी, सजनीं, जश आदि है। गोंडों में गाथा सुनने की प्रथा है। गोंडों में परधान उपजाति के लोग गाना गायन करते हैं। गोंडों की तीन सुप्रसिद्ध गाथायें हैं- पंडवानी, रामायणी और गोंडवानी। पंडवानी महाभारत

गाथा है। रामायणी राम का चरित्र है और गोंडवानी गोंडों के इतिहास कथा है। परधान इसके अलावा और भी कई छोटी-छोटी गीत कथायें बाने पर गाते हुए मिल जाते हैं। गोंड लोक कथाओं को किस्सा कहते हैं। गोंडी लोक में कई किस्से कहानियाँ प्रचलित हैं। इन कथाओं में गोंड आदिवासियों की भोली कल्पना की उड़ान के साथ उनके रीति-रिवाजों, धार्मिक सामाजिक विश्वासों, देवी देवताओं, भूत प्रेतों और परम्पराओं का समावेश सहज रूप से देखा जा सकता है। पहेलियों का प्रचलन बुद्धि कौशल बढ़ाने के लिये गोंड समाज में प्रचलित है। ये शुद्ध मनोरंजन और अपने सांस्कृतिक संज्ञान को बढ़ाने के लिये बड़ों से लेकर बूढ़ों तक लोकप्रिय होती हैं। गोंड पहेलियों को धंधा कहते हैं। गाँव में फुर्सत के क्षणों में गोंड बालकों बढ़ों और नौजवानों सभी के लिये 'धंधा' मनोरंजन का साधन है। पहेलियों के द्वारा वस्तुओं के रूप, गुण, रंग और आकार प्रकार का सांकेतिक वर्णन भर होता है। इन पहेलियों के उत्तर ढूँढ़ने में पढ़े लिखे लोग तक पानी भरते नजर आते हैं।

किसी उचित अवसर अथवा नीतिगत निर्णायक बात करते समय गोंड लोग खरी और प्रभावकारी उक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग करते हैं, जिन्हें गोंड लोग कहावत या कहन कहते हैं। लोकोक्तियाँ सच्चे अनुभव की खरी डिबियाएँ हैं।

गोंडों के सामाजिक जीवन में मिथिकाओं का विशेष महत्व है। महाप्रलय की कथा से लेकर धरती, आकाश, सूर्य, चन्द्र, पशु-पक्षी, पेड़ पौधे, जलवायु, नृत्य, वाद्य, संगीत आदि आदि की उत्पत्ति सम्बन्धी कथायें गोंड और अन्य आदिवासियों के दैनिक जीवन का हिस्सा हैं। गोंडों में उत्पत्ति विषयक अनेक कथाओं में कही पुराणों की कथाओं का प्रभाव दिखाई देता है तो कई कथाओं में अपेक्षाकृत उनकी आदिम मौलिक कल्पना और कौतूहल का सामन्जस्य दिखाई देता है। प्रत्येक स्थान पर गोंडों के जीवन की व्याख्या उनमें छिपी मिलती है। गोंड जनजाति में इस तरह की अनेक मिथक कथाएँ प्रचलित हैं। ये मिथकथायें मात्र कथायें नहीं हैं बल्कि गोंडों के समस्त विश्वास और आस्था को भी उजागर करती हैं। साथ ही यह भी सिद्ध करती हैं कि जीवन के प्रत्येक निष्कर्ष को गहराई से सोचा ही नहीं गया है बल्कि उसके अन्तिम सच को पहचान लिया गया है।

गोंडों के अनेक देवी देवता हैं। उनमें बड़ा देव प्रमुख हैं। ठाकुर देव, नारायण देव, धमसेन देव, नागेश्वर देव, लिंगो देव, खैर-खुटिया, मुठिया, खेरमाई, बनजारिन भाई, रातभाई, गंगाइन भाई, शारदा माई, बूढ़ी माई, मरही, शीतलामाई, आदि की पूजा अर्चना गोंड लोग करते हैं। गोंड लोग तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना, भूत-पिशाच आदि में विश्वास करते हैं तथा आत्मा पर भरोसा करते हैं।

गोंड समाज अपने रीति-रिवाज एवं परम्पराओं से बँधा हुआ है। युगों से प्रचलित रीति-रिवाजों और परम्पराओं से गोंड लोग बेहद प्यार करते हैं। उनसे तनिक भी अलग नहीं होना चाहते। इस तरह गोंड समाज जन्म से लेकर मृत्यु तक कई परम्पराओं का निर्वाह करता है।

जन्म संस्कार - नवजात शिशु का जन्म गोंड समाज में शुभ माना जाता है। गोंडों में पुत्र एवं पुत्री को समभाव से देखा जाता है। गर्भाधान के लक्षण प्रकट होते ही गर्भिणी स्त्री का सम्मान बढ़ जाता है। राजगोंडों में प्रथम बार गर्भाधान के लक्षण दिखते ही कुलदेवी एवं कुलदेवता के पूजन का उत्सव मनाया जाता है।

प्रसव के बारहवें दिन नामकरण होता है। उसी दिन नाते-रिश्तेदारो को आमंत्रित करके भोजन करवाया जाता है। रात्रि में गौरी-गणेश की पूजा की जाती है। जच्चा-बच्चा के माथे पर हल्दी व अक्षत या टीका लगाया जाता है। पुरोहित घर के सामने लोग बच्चे का नामकरण करते हैं।

विवाह संस्कार - आदिवासियों में विवाह न केवल वंशवृद्धि के लिये रचाये जाते हैं बल्कि विवाह प्रेम, परस्पर सहयोग और सहज आकर्षण की अभिव्यक्ति होते हैं। गोंडों में सगोत्री विवाह नहीं होते हैं। विवाह में लड़का-लड़की की अपेक्षा माता-पिता की रजामन्दी सर्वोपरि होती है। विवाह पूर्व लड़के-लड़की मिल सकते हैं। लड़के वाले जब लड़की के रिश्ते के बारे में पूछने आते हैं उसे बेटी-पुछौनी या मंगनी कहते हैं। मँगनी

गाँव के पंच लोग मिल बैठकर तय करते है। मँगनी हो जाने के बाद सगाई या बरोखी रस्म की जाती है। सगाई बारात में दूल्हा नहीं होता परन्तु रिश्तेदार और गाँव दस बारह लोग होते हैं।

गोंड पुनर्जन्म को स्पष्ट रूप से नहीं मानते। मरने के बाद अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा। इस बात पर गोंड कभी विश्वास नहीं करते इसीलिये स्वर्ग एवं नरक की अवधारणा भी गोंडों में बहुत क्षीण है। ये देव योनि और भूतयोनि में विश्वास रखते हैं। कर्म के अनुसार आत्मा भूतयोनि एवं देवयोनि प्राप्त होती है। देव मिलौकी पूजा करने में मृतक की आत्मा देवत्व प्राप्त कर लेती है। वे आत्मायें देव पितरों में नहीं मिलाई जा सकती हैं, जिनकी मृत्यु किसी दुर्घटना में होती है।

गोंडों में अग्निदाह और दफनाने की प्रथा है। स्वाभाविक मौत से मरे व्यक्ति का अग्निदाह किया जाता है और प्लेग, हैजा तथा सर्पदंश आदि के प्रभाव से होने वाली मृत्यु में मृतक को दफनाते हैं। छोटे बच्चों को भी दफनाया जाता है।

भील
(BHEEL)

भील जनजाति मध्यप्रदेश की गोंड के बाद दूसरी सबसे बड़ी जनजाति है। भील मध्यप्रदेश के अलावा राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र में भी पाये जाते हैं। वर्तमान समय में भीलों का निवास मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात व महाराष्ट्र राज्यों में प्रमुख रूप से हैं। मध्यप्रदेश के पर्वतीय वनखण्डों में भीलों का विस्तार अधिक है। यहाँ ये लोग झाबुआ, थाँदला, पेटलावद, अलिराजपुर, जोबट, नारकुंडी, बाग, छोटा उदयपुर, धार, बड़वानी, खरगौन, तलोद, शाहदा, सिरपुर, अमझेरा एवं रतलाम प्रक्षेत्र में निवास करते हैं।

भील जनजाति के सम्बन्ध में हमारे प्राचीन साहित्यों में उल्लेख मिलता है। रामायण में शबरी भीलनी का उल्लेख तथा महाभारत में एकलव्य भील का उल्लेख सर्वविदित है। इस जनजाति के लोग अपने धनुष कौशल में कोई सानी नहीं रखते हैं। भील जनजाति भारत की प्राचीन जनजाति है जो आर्य और द्रविड़ के पूर्व के माने जाते हैं।

भीलों का शरीर सुगठित होता है। भील देखने में सुन्दर तथा ताम्रवर्णी होते हैं चेहरा गोल और नैन नक्श सुडौल होते हैं। दाँत सुन्दर और मजबूत होते हैं। भील इन विशेषताओं के कारण आदिम समूह में अपनी अलग पहचान रखते हैं। भील सिर पर लाल हरे, नीले रंग के साफे, रंग-बिरंगी कमीज व धोती पहनते हैं। स्त्रियाँ चोली काँचली, घाघरा और क्रमशः ओढ़नी पहनती हैं।

भील स्त्री पुरुष विभिन्न प्रकार के गहने पहनते हैं। ये गहने कथीर, चाँदी और कांसे के बनते हैं। बहुधा कथीर का प्रचलन सर्वाधिक है।

भील पुरुष कानों में मुदड़े, कर्णबालियाँ (टोखा) गले में वन जारीया साँकल (सांकली) हाँथ में नाहर मुखी (चाँदी के कड़े), भुजा में हठके व पाँव में बेड़ी पहनते हैं। महिलायें पैर में कंड़ला, नाक में कांटा, गले में हसली, साकड़ी, कान में बेड़ला, भीड़ली, हाँथ में गुजरिया, भरीया पहनती हैं, जो चाँदी के होते हैं। गले में कॉच की मोती की माला तथा हाँथ में प्लास्टिक की चूड़ियाँ पहनती है। हाथ, पैर, चेहरे, मस्तक, कपोल, ठुड्डी पर गुदना गुदवाती है। पुरुष भी हाथ पर विभिन्न आकृतियाँ गुदवाते हैं।

भील लोग पहाड़ी टेकरियों पर झोपड़ियाँ बनाना पसंद करते हैं। अपने अपने खेत में अपनी झोपड़ी बनाते हैं। इनके मकान लकड़ी के बने होते हैं, जिसमें बाहर से गोबर-मिट्टी का लेप होता है। छत घास या देशी खपरैल की होती है। फर्श मिट्टी का बना होता है। घर में तीन-चार कमरे होते हैं। जानवरों के लिये अलग से कमरा होता है। अनाज रखने के लिये बाँस से बनी कोठी होती है। घरेलू वस्तुओं में चारपाई, घट्टी (चक्की) मूसल, तीर, धनुष, घारिया कुल्हाड़ी, भोजन बनाने के बर्तन जो मिट्टी एवं एल्यूमिनियम आदि के होते हैं। कृषि उपकरणों में खेती करने के औजार हल आदि होते हैं। तीर-धनुष प्रत्येक घर में पाया जाता

है। जिसे जंगल जाते समय हमेशा अपने साथ रखते हैं। बाजार में सामान लाने के लिए बाँस से बनी हुई कलात्मक ओडई होती है। जो टोपलीनुमा ढक्कनदार बाँस की बारीक चिपों से बनती है। भील लोग परिश्रमी एवं स्वावलम्बी होते हैं अत: वे सम्मानपूर्व जीवन जीने के आदि होते हैं। भीलों में कहावत प्रचलित है कि "जुग जैरी तो मलक बैरी" अर्थात् कड़वी जुबान से ही सारा संसार हमारा दुश्मन बन जाता है। चाहे कुछ न मिले लेकिन मधुर वाणी मिले तो वही पर्याप्त है।

भील लोग अपने भोजन में मुख्य रूप से मकई, गेहूँ, चना, बाजरा एवं कोदरया आदि का उपयोग करते हैं। त्योहार एवं उत्सवों के समय चावल, गुड़-घी मिलकर गुड़ भात्या खाते एवं खिलाते हैं। ग्वारफली, भटा (इगना) चवली, रजा, वल्लर इत्यादि मौसमी शाक-सब्जियों का उपयोंग करते हैं। अनाज के अतिरिक्त भोजन के रूप मे ये लोग नदी-तालाबों से पकड़ी हुई मछलियाँ, शिकार के अलावा कंदमूल वगैरह का उपयोग भी भोजन के रूप में करते हैं। ताड़ी भीलों का सर्वप्रिय पेय है।

धनुष-बाण भीलों की पहचान हैं। भील सदैव अपने पास धनुष-बाण रखते हैं। जंगली जानवरों से रक्षा के लिये भीलों के पास धनुष-बाण ही एक मात्र सहारा है। ये लोग अंधेरे में भी अचूक निशाना लगाने में प्रवीण होते हैं। धनुष-बाण के अलावा भील लोगों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले प्रमुख अस्त्र-शस्त्र, क्रमश: फालिया या धारिया, तलवार, लट्ठ, फरसा एवं कुल्हाड़ी इत्यादि हैं।

भील जनजाति का आर्थिक जीवन

भील जनजातियों का आर्थिक जीवन पूर्णत: कृषि के साथ ही जंगली उपज संग्रह एवं मजदूरी पर आधारित है। कृषि में मक्का इनकी मुख्य फसल है। पथरीली एवं असिंचित भूमि होने के कारण अरहर, कोदों एवं उड़द की फसलें भी बोई जाती हैं किन्तु पैदावार पर्याप्त मात्रा में नहीं हो जाती। ऊबड़-खाबड़ एवं अनुपजाऊ जमीन होने के कारण अन्य फसले जैसे गेहूँ, चना, तुअर आदि की पैदावार बहुत कम होती है। जंगली उपज संग्रह में महुआ, गुल्ली, लाख, लकड़ी आदि का संग्रह कर बाजार में बेचते हैं। कृषि क्षेत्र में भीलों द्वारा मुख्य रूप से हल, ओखर, कोल्पा (कुपो) तीरफन आदि कृषि औजारों का प्रयोग किया जाता है। फसल की बुवाई, निदाई एवं कटाई के समय भील परिवार एक दूसरे की मदद करते हैं जिसे हल्मा कहते हैं। कृषि से पर्याप्त आमदनी नहीं होने के कारण भील लोग अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिये कृषि के अलावा वन विभाग में लकड़ी काटने से लेकर चौकीदार तक का कार्य पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी से करते हैं। विभिन्न योंजनाओं के माध्यम से क्षेत्रीय गाँवों में कराये जा रहे निर्माण एवं विकास कार्यों में भी भील अनथक परिश्रम कर कमाई करते हैं, साथ ही गाँव एवं क्षेत्र के सम्पन्न कृषकों के यहाँ कृषि मजदूरी जैसे बुवाई, निदाई और कटाई का कार्य भी करते हैं। अनेक भील स्त्री-पुरुष फसल कटने के बाद शहरों में मजदूरी करने जाते हैं।

अधिकांश भील परिवारों में बकरी एवं मुर्गी पालन किया जाता है, जिनके दूध एवं अंडे आदि बेचकर आय प्राप्त करते हैं। नदी से मछलियाँ, जंगल से शहद, गोंद, महुआ एवं लकड़ियाँ एकत्रित कर बाजार में बेचते हैं। महुआ की शराब और ठंड के मौसम में ताड़ी बेचकर अपनी आय में वृद्धि करते हैं।

भील जनजाति की मुख्य समस्या आर्थिक है। भील पहाड़ी खेती पर निर्भर होते हैं जहाँ पर मक्का, कोदो, कुटकी आदि अनाज ही पैदा हो पाते हैं जिससे इनका भरण पोषण ठीक ढंग से नहीं हो पाता है। परिणाम यह होता है कि इनको पेट पालने के लिये मजदूरी करनी पड़ती है। वह भी घर से दूर शहरों में जाना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि इनके बच्चे शिक्षा से वंचित हो जाते हैं। साथ ही कुपोषण के कारण इनके स्वास्थ्य का स्तर भी निम्न होता है। अशिक्षा एवं जागरूकता के अभाव के कारण अन्धविश्वास जैसी समस्याएँ भी विद्यमान हैं।

भील जनजाति का राजनैतिक संगठन

भीलों में सामाजिक न्याय व्यवस्था के सुचारु ढंग से बनाये रखने के लिये परम्परागत जाति पंचायत होती है, जो गाँव स्तर पर तथा वृहत स्तर पर भी कार्य करती है जिसके द्वारा छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा

किया जाता है। विवाह से संबंधित झगड़ों को हल करना तथा सगोत्रीय विवाह को रोकना परम्परागत कुल देवी देवताओं की पूजा अर्चना की व्यवस्था करना तथा मन्दिर आदि का निर्माण करवाना, जाति पंचायत के प्रमुख कार्य हैं।

समाज को संचालित करने के लिये परमेश्वर स्वरूप पटेल, तड़वी, डाहला, पुजारा और बड़वा गाँव के मुख्य एवं सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। इनके द्वारा गाँव एवं समाज का मार्गदर्शन किया जाता है। इनके अलावा कोटवार, वारती एवं गायक भी है। इनके मध्य धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों का विभाजन इतने अच्छे ढंग से किया होता है कि कहीं कोई विरोधाभास नहीं होता है।

पटेल : पटेल गाँव में सामाजिक दृष्टि से सर्वाधिक शक्तिशाली एवं सम्मानित व्यक्ति होता है। सभी लोग उसकी इज्जत करते हैं। सभी ग्रामवासी सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में पटेल द्वारा लिये गये निर्णय का तन-मन से स्वागत करते हैं। पटेल की आज्ञा के बिना कोई भी पर्व एवं त्योहार नहीं मनाया जाता है। शादी विवाह के झगड़े एवं कृषि सम्बन्धी विवादों के निराकरण में पटेल का निर्णय अन्तिम होता है।

तड़वी : गाँव में पटेल के बाद तड़वी की स्थिति होती है। पटेल की अनुपस्थिति में पटेल द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यों का सम्पादन तड़वी द्वारा ही किया जाता है। पटेल के कार्यो में सहयोग देने के साथ-साथ लगान की वसूली भी तड़वी ही करता है।

डाहला : डाहला गाँव का सर्वाधिक सयाना (वयोंवृद्ध) व्यक्ति होता है। गाँव के सभी लोग उसकी इज्जत करते हैं। शादी-विवाह एवं त्यौहारों के अवसर पर भोजन एवं भण्डार गृह का सम्पूर्ण कार्य उसी के निर्देशन पर किया जाता है। कितनी खाद्य सामग्री लगेगी इसका अनुमान डाहला ही लगाता है। खाद्य सामग्री से लेकर भोजन तक का सारा कार्य डाहला के निर्देशन में ही किया जाता है।

पुजारा : पुजारा का पद वंशानुगत होता है। इसके द्वारा पर्व-त्योहार तथा शादी-विवाह के अवसर पर पूजा-पाठ का कार्य सम्पन्न कराया जाता है। पुजारा गाँव के धार्मिक स्थलों की सुरक्षा करता है। साथ ही उन्हें व्यवस्थित भी रखता है।

बड़वा : बड़वा गाँव का चिकित्सक होने के कारण एक अलग अहमियत रखता है। इसके द्वारा जड़ी-बूटियों के उपयोग से रोग आदि की चिकित्सा की जाती है। भीलों का विश्वास है कि जादू-टोना तथा भूत-प्रेत का उपचार मंत्र-तंत्र के माध्यम से बड़वा ही कर सकता है।

कोटवार : गाँव के चौकीदार एवं हरकारे के रूप में कोटवार की नियुक्ति की जाती है। इसकी नियुक्ति पटेल या तड़वी के द्वारा की जाती है। किसी शासकीय कर्मचारी या बाहरी व्यक्ति के आने पर उसकी व्यवस्था व जिम्मेदारी कोटवार के द्वारा ही की जाती है।

गायक : गायक कमाड़ी (बाँस की चिपों से बना वाद्य) के स्वर पर देवी देवताओं की गाथायें गाता है। ढाँक और कामठी के स्वरों से रोमांचक वातावरण उत्पन्न होता है।

वारती : सामूहिक जाति भोज के अवसर पर वितरण की सारी व्यवस्था वारती की होती है।

भील जनजाति का सामाजिक संगठन

भील जनजाति में मुख्य रूप से चार उपजातियाँ पाई जाती हैं। इनकी प्रमुख उपजातियाँ भील, भिलाला, बारेला, पटेलिया, तड़वी नापकड़ा एवं मानकर आदि हैं। वर्तमान में अनेक उपजातियाँ स्वतन्त्र अन्त:विवाही जाति का स्वरूप ग्रहण कर चुकी हैं। प्रत्येक वर्ग में अनेक जनजातियाँ हैं। इनके कुल 71 गोत्र प्रकाश में आये हैं।

धर्म एवं देवी देवता- भील जनजाति के मुख्य देवी देवता काका वलिया, शिकोवटी, इंदराज, सिमारियों देव, मेलड़ी कालका, बाघदेव और जोगण है। इनके अतिरिक्त भील लोग सभी हिन्दू देवी-देवताओं

की भी पूजा करते हैं। इनके मुख्य त्योहार होली, नवरात्र दिवसों, दिवाली और रक्षाबंधन आदि हैं। त्योहारों के समय देवी-देवताओं की पूजा करते हैं; भूत-प्रेत, जादू-टोना में विश्वास करते हैं।

रीति-रिवाज- भील आदिवासियों के अपने विशिष्ट रीति रिवाज है, संस्कार औपचारिक मात्र नहीं है बल्कि भीलों के जीवन की वास्तविकता के धरातल पर सही मायने में जीवन की एक पद्धति एवं कला है।

भील लोग अपने त्योहार अत्यन्त उल्लास पूर्वक पारंपरिक रूप से मनाते हैं। भीलों में पारम्परिक त्योहार आखातीज, होवणमाता की चलावणी, सावणमाता की जात्रा, नवई, नवणी, दिवासा, भगोरिया, गाय गोहरी, गल, गढ़ आदि के अलावा दशहरा, दीपावली, होली एवं रक्षाबंधन के त्योहार भी अपने ढंग से मनाते हैं।

विवाह प्रथायें : सभी समाजों की भाँति भील समाज में भी शादी (विवाह) के अपने विशिष्ट रीति-रिवाज है। विवाह तय करने के लिए लड़के वाले को ही बात-चीत के लिये पहल करनी पड़ती है। विवाह की शुरूआत सगाई की रस्म मंगनी से होती है। सगाई की बात पक्की होने पर दोनों तरफ की सुविधा देखकर दाया (वधूमूल्य) तय कर लिया जाता है। दाया लड़के पक्ष से लड़की वालों को दिया जाता है। दाया में मुर्गा, बकरा, गाय-बैल, भैंस अनाज और निश्चित रुपये होते हैं।

मृत्यु संस्कार : भीलों में मृत शरीर को जलाने एवं गाड़ने की प्रथा है। जिनकी मृत्यु बीमारी से होती है तथा जिनके कोई सगा संबंधी नहीं होता है उनके मृत शरीर को गाढ़ा जाता है जबकि शेष अन्य का दाह संस्कार किया जाता है।

अन्य जनजातियों समान भील जनजातियों के भी बाहरी व्यक्तियों से सम्पर्क, विकास कार्यों से इनकी उन्नति के लिये किये गये प्रयासों, शिक्षा का विकास आदि कारणों के व्यापक प्रभाव स्वरूप भीलों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक स्थितियों में काफी परिवर्तन आया है। जिससे इनके खान-पान, रहन-सहन, पहनावा, आवास व्यवस्था में परिवर्तन नजर आने लगा है।

भारिया
(Bhariya)

मध्यप्रदेश में अनेक अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती हैं। इनमें से भारिया एक है, जो मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा जिले के तामिया विकासखण्ड, जो अब तामिया जनपद के नाम से जाना जाता है, में निवास करती है। तामिया जनपद में एक पातालकोट नाम का स्थान है, जो 79 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है, तथा जिसका आकार कटोरे की भाँति है, इसी भूभाग में तथा इसके आस-पास के क्षेत्र में भारिया अनुसूचित जनजाति आज भी निवास करती है। यह स्थान अत्यन्त दुर्गम है तथा यहाँ सूर्य की रोशनी दोपहर के 12 बजे के करीब पहुँचती है तथा शाम को 4 बजे के आस-पास इस क्षेत्र में सूर्यास्त हो जाता है। वन सम्पदा पर आश्रित भारिया जनजाति आज भी अपना जीवन निर्वाह कठिन परिश्रम से करती है। आवागमन के नाम पर क्षेत्र में पगडंडियाँ हैं, जो भूलभुलैया का काम करती हैं। यह स्थान जंगलो और पहाड़ों से घिरा है। अतः यहाँ केवल मोटे अनाज पैदा होते हैं। पशुपालन में गाय, बकरी आदि घरेलू जानवर पाले जाते हैं। आवागमन की कठिनाई के कारण यहाँ के निवासी आज भी शहरी जीवन की चकाचौंध से दूर है।

भारिया जनजाति श्रमसाध्य जनजाति है। ये शारीरिक रूप से काफी सुदृढ़ होते हैं। इनकी कद काठी तथा इनकी मुखाकृति उन्नत किस्म की होती है। आँखे चमकदार, चौड़ी नाक, मध्यम कद तथा शरीर तन्दुरुस्त होता है। ये देखने में आकर्षक लगते हैं।

भारिया लोग शाकाहारी और माँसाहारी दोनों होते हैं तथा आम की गुठली से बनी रोटी, महुआ, कोदो, कटकी इनके प्रिय खाद्य पदार्थ हैं। मुख्य भोजन मक्का, ज्वार की रोटी, कोदो, चावल का भात, पेज, उड़द, तुवर की दाल, मौसमी सब्जी आदि हैं।

भारिया जनजाति का सामाजिक संगठन

भारिया लोग एकांत प्रिय होते हैं। इनके गाँव को ढाना कहते है जिसमें 2 से 25 घर होते हैं। इनका घर बाँस, घास-फूस, मिट्टी से बना होता है। सामाजिक संगठन किसी भी समाज का मूल आधार होता है। भारिया जनजाति का भी एक सामाजिक संगठन है। भारिया पितृसत्तात्मक समाज है। भारतीय सामाजिक संगठन में परिवार का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारिया जनजाति के सामाजिक संगठन का आधार भी परिवार ही है। प्रायः सभी समाजों में प्रारंभिक अवस्था में परिवार का स्वरूप संयुक्त होता था। भारिया जनजाति में परिवार संयुक्त होते हैं। किन्तु सामाजिक परिवर्तन, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा आर्थिक विपन्नताओं के कारण आज भारिया परिवार संयुक्त से एकाकी की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

भारिया परिवार के सभी सदस्य मिल-जुलकर अपने उम्र और लिंग के अनुसार अपने उत्तरदायित्वों और कार्यों का निर्वहन करते हैं। सभी सदस्य आपसी सहयोग और समझदारी से आर्थिक क्रियाओं का सम्पादन करते हैं। प्रायः पुरुष सदस्य घर के बाहर का कार्य करते हैं जबकि स्त्रियाँ घर के अन्दर का कार्य करती हैं। वैसे स्त्रियाँ अनेक अवसरों पर बाहर के कार्यों में पुरुषों का सहयोग भी करती हैं।

सामाजिक संगठन में गोत्रों की अहम् भूमिका होती है। गोत्र का सम्बन्ध अपने पूर्वजों से होता है जिसमें अपनी उत्पत्ति का निर्धारण किया जाता है। भारिया जनजाति में भी अनेक गोत्र पाए जाते हैं। इन गोत्रों में भरदिया, खमारिया, पंचालिया, रोतिया, ठाकरिया, कन्दोदिया, नहालिया, महानिया, डंडोलिया, बिजलिया, बघोरिया आदि प्रमुख हैं। विवाह एक महत्वपूर्ण संस्कार है। घर जमाई, पुनर्विवाह का चलन है। भारिया सामाजिक संगठन में भी विवाह को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

मृत्यु होने पर मृतक को दफनाया जाता है। तीसरे दिन परिवार के पुरुष दाड़ी, मूंछ, सिर के बाल मुण्डन करते हैं। ग्यारहवें दिन मृत्यु भोज होता है।

देवता और देवियाँ– अन्य समुदायों की भाँति भारिया की जनजाति भी धार्मिक है तथा अनेक देवताओं और देवियों में विश्वास करती है। इनके धार्मिक क्रियाकलाप हिन्दू धर्म की तरह ही है। इनके प्रमुख देवी देवताओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(a) भीमसेन– कृषि के देवता है। इनके अतिरिक्त डोंगरदेव, सिनवाद देव, भागदेव, कुड़ोपन आदि देवताओं की पूजा करते हैं।

(b) देवियों में केरकी माता का विशेष महत्व है। चैत्र मास और दशहरा के पहले इस देवी की विशेष पूजा की जाती है। विश्वास है कि इस देवी की नाराजगी से गाँवों में बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है। मथुआ देवी कल्याण की देवी है, जिसकी पूजा से समाज की भलाई होती है। इसके अतिरिक्त ये झिरिया माता की भी पूजा करते हैं, जो समाज के स्वास्थ्य की देवी है।

(c) भारिया जनजाति के धार्मिक जीवन में इन देवी-देवताओं की विधि-विधान से पूजा करने के लिए पुरोहित होते हैं, जिनके निम्न तीन प्रकार हैं–

(i) भुमका गाँव में वार्षिक धार्मिक कार्यों को सम्पादित कराते हैं।

(ii) पड़िहार– रोगी की देखरेख और झाड़-फूँक के कार्यों का सम्पादन करते हैं।

(iii) देवचढ़– गाँव के व्यक्तियों के अन्य धार्मिक कार्यों का सम्पादन करते हैं।

पहनावा– आधुनिकीकरण के कारण भारिया जाति की स्त्रियों और पुरुषों के पहनावे में अन्तर आया है। फिर भी स्त्री-पुरुष जो सामान्य पहनावे को अपनाते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है–

(i) स्त्रियाँ लाल-हरे रंग की साड़ी, पोलका, लगड़ा और अन्य वस्त्र पहनती है।

(ii) पुरुष पगड़ी, छिन्दी या पट्टी, बंडी, शर्ट, जैकेट, धोती, कुर्ता पहनते हैं।

भारिया जनजाति का आर्थिक जीवन

इनका मुख्य व्यवसाय कृषि है तथा वनोपज (जड़ी-बूटी) का संग्रहण करके अपनी आजीविका चलाते हैं। भारिया जनजाति के आर्थिक जीवन को मुख्य रूप से निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(a) **पशुपालन–** भारिया जनजाति का निवास स्थान जंगल और पहाड़ों से घिरा हुआ होता है। ऐसी स्थिति में इनका पशुओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। पालतू पशुओं में भेड़-बकरी, गाय, बैल, भैंस आदि प्रमुख है।

(b) **प्राकृतिक संसाधन–** इनके आस-पास का क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर होता है, जिसका भारिया जनजाति पूरी तरह उपभोग करते हैं। विभिन्न प्रकार के फल, कन्द मूल, पत्ती या भाजी, फूल आदि का प्रयोग भोजन के रूप में करते हैं। अनेक फल ऐसे होते हैं, जिनका व्यवसायिक उपयोग भी करते हैं। उदाहरण के लिए महुआ, तेंदू, हर्रा, बहेरा, आँवला, इमली, आम आदि।

(c) **कृषि–** भारिया जनजाति कृषि कार्यों का सम्पादन भी करते हैं। पहले जंगलों की अधिकता के कारण झूम खेती करते थे, किन्तु अब ये प्रथा समाप्त हो गई है। चूँकि इनके खेत पथरीले तथा पहाड़ों की तलहटी में होते हैं, जहाँ सिंचाई आदि की सुविधाएँ नहीं होती थी, इन खेतों में ज्वार, मक्का, तिल, अरहर, बाजरा, कोदौ, कुटकी आदि मोटे अनाजों की खेती करते हैं।

(d) **श्रम–** भारिया परिवार के अनेक व्यक्ति मजदूरी करते हैं, जो आरा-पास के गाँवों में प्राप्त हो जाती है। प्रवासिता की प्रवृत्ति के कारण अनेक परिवार आस-पास के कस्बाई क्षेत्रों में श्रम कार्य करते हैं।

सहारिया
(Sahariya)

जनसंख्या की दृष्टि से सहारिया जनजाति मध्यप्रदेश में पाँचवे स्थान पर है जिसकी वर्ष 2011 में जनसंख्या 6.14 प्रतिशत लाख व्यक्ति है जो राज्य की अनुसूचित जनजाति जनसंख्या का 4.01 प्रतिशत है। ये लोग जंगलों में निवास करते हैं।

मध्यप्रदेश में सहारिया जनजाति मुख्य रूप से ग्वालियर, शिवपुरी, मुरैना, गुना आदि जिलों में निवास करती है। सहरिया समतल मैदानों पर बसते हैं। समूह में इनकी बसावट एक विशेष प्रकार की होती है जिसे सहराना कहते हैं। सहराना के अन्तर्गत कई लोगों के मकान समूह के रूप में एक-दूसरे से चिपके हुए बनाए जाते हैं। इन सभी मकानों पर एक लंबी छत बनाई जाती है। इनमें जड़ी-बूटी पहचानने की निपुणता पायी जाती है।

सहरिया जनजाति का मुख्य भोजन ज्वार, मक्का, गेहूँ, बाजरा है। ये लोग महुआ को उबालकर भी खाते हैं। कंद मूल, फल, हरी पत्तियों वाली सब्जी, फल, मछली भी शौक से खाते हैं।

सहरिया जनजाति की आर्थिक स्थिति

सहरिया जनजाति आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई जनजाति कही जा सकती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व सहरियाओं के रोजगार के दो ही साधन थे- प्रथम कृषि तथा खेतीहर मजदूरी और दूसरा जंगल से प्राप्त होने वाली उपज को संग्रहित कर बेचना। इसके अलावा व्यापारी, जमींदार, साहूकार इनका शोषण करते थे। जंगलों के विनाश के कारण सहरिया जनजाति अपने मूल निवास से दूर होती जा रही है। आर्थिक विपन्नता के कारण ये मजदूरी करने लगे हैं। इनका जीवन स्तर अत्यंत साधारण और भौतिक संसाधनों का अभाव है। इस तरह से इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। सहरिया कृषि व्यवसाय, मजदूरी व वनोपज के साथ-साथ बीड़ी बनाकर तथा चरवार वाले क्षेत्रों में चरवाहे का काम अपनाकर जीवन-यापन करते हैं। अशिक्षा, गरीबी एवं पर्याप्त अनुकूल कार्य न मिलने के कारण ये लोग अनेक शोषण का शिकार होते हैं और कर्ज में डूबे हुए रहते हैं।

सहरियाओं को अपनी आमदनी खेती, मजदूरी तथा वनोपज से प्राप्त होती है। मुख्यतः ये लोग अपने परिवार के साथ आसपास के क्षेत्रों में फसल पकने के बाद मजदूरी करने चले जाते हैं जहाँ ये फसल को काटने व साफ करने का कार्य करते हैं जिसके बदले इन्हें अनाज, नकद राशि दी जाती है। विभिन्न प्रकार के सरकारी परियोजनाओं जैसे सड़क व भवन निर्माण संबंधित कार्य में ये लोग मजदूरी करते हैं। सहरियाओं को काम के बदले निर्धारित मजदूरी के साथ गेहूँ का भुगतान भी किया जाता है।

अपने जीविकोपार्जन के लिए वनोपज पर निर्भर रहने वाली यह जनजाति जंगल से महुआ, अचार, गुली, गोंद, मुसली, कत्था, खैर, आंवला, तेंदूपत्ता, हर्र, बहेड़ा, लाख, शहद, घास एवं अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ लाते हैं। साथ ही मधुमक्खियों के छत्ते से शहद निकालने का कार्य भी करते हैं।

सहरिया जनजाति का राजनीतिक संगठन

सहरिया जनजाति में भी एक अन्य आदिवासी समुदायों के समान ही परम्परागत राजनीतिक संगठनात्मक स्वरूप पाया जाता है जिसकी समाज में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इन लोगों की बस्ती गाँव का सहराना कहलाती है। सहरियों में सहराना के आधार पर ही पंचायत का गठन किया जाता है। इनका प्रमुख 'पटेल' होता है जो वंशानुगत होता है। पटेल के अत्यधिक वृद्ध होने पर उनके बड़े भाई या बड़े पुत्र को उसके उत्तराधिकारों का वहन करना पड़ता है। सहराना पंचायत द्वारा सभी जातिगत विवादों, सम्पत्ति, वैवाहिक व अन्य झगड़ों को आपसी समझौते के साथ बीच बचाव कर तय करवाया जाता है। पंचायत द्वारा सामान्तया आर्थिक एवं समाज से बहिष्कृत करने का दण्ड भी दिया जाता है। सहरिया पंचायत के प्रमुख तीन स्वरूप माने गये हैं-

पंचताई- यह पंचायत सहराना स्तर पर होती है एवं इसका प्रमुख सहराना का पटेल होता है। इनके सदस्य - कोटवार, घोपा, बराई, अधनारिया कहलाते हैं।

एकादसिया पंच- यह ग्यारह सहरनाओं की एक सम्मिलित पंचायत होती है। इसमें सभी सहरनाओं के पटेल सम्मिलित होते हैं जो सहमति से निर्णय लेते हैं।

चौरसिया पंच- इस पंचायत में सभी सहरनाओं के पंच पटेल को शामिल किया जाता है। अतः चौरसिया पंचायत सहरियाओं का सर्वोच्च संगठन माना गया है। यह पंचायत विशेष मामलों के निर्णय करने हेतु बुलायी जाती है। इस पंचायत में निर्णय सर्वसम्मति के आधार पर लिये जाते हैं।

सहराना के बीच में एक छतरीनुमा मकान होता है जिसे पंचायती बंगला कहा जाता है। इसी बंगले पर बैठकर सहरिया आपसी विवादों का हल करते हैं।

सहरिया जनजाति का सामाजिक संगठन

संस्कृति के धनी सहरिया लोगों का अपना सामाजिक संगठन है जिसे जाति पंचायत कहते हैं। जातियाँ पंचायतें एक प्रकार से उनकी अपनी सरकारें होती है जो कि उनके पूरे समुदाय को बांधकर रखती है। इस पंचायत के अपने नियम व कानून होते हैं जिनकी पालना हेतु प्रत्येक सहरिया को बाध्य होना पड़ता है। विभिन्न मामलों पर निर्णय लेने तथा सजा देने के इनके अपने तरीके हैं। इनकी यह व्यवस्था सहरिया समुदाय को एक संगठन और व्यवस्थित समूह प्रदान करती है। सहरिया जनजाति के रहन सहन का तरीका अन्य जनजातियों से बिल्कुल अलग है। सहरिया जनजाति की अपनी कोई उपभाषा नहीं होती है। यह जनजाति सामान्य क्षेत्रीय भाषा बोलती है। इस जनजाति के स्त्री एवं पुरुष गुदना गुदवाते हैं।

सहरिया में अधिकांशतः छोटे परिवार पसंद किये जाते हैं। ज्यादातर परिवारों में विवाह के उपरान्त पुत्र को एक अलग मकान बनाकर दे दिया जाता है और वह उसमें अलग रहने लगता है। भरण-पोषण करने के लिए पति-पत्नी मजदूरी करने में जुट जाते हैं किन्तु परिवारों के प्रति मूल रूप से संयुक्त परिवार को

आदर्श माना जाता है जिनमें सबसे बड़े पुत्र की जिम्मेदारी होती है और वही सहरिया परिवार का वहन करता है। माता-पिता की मृत्यु होने के बाद बड़ा पुत्र ही मृत्यु संस्कार करता है, परन्तु विधवा माँ या बाप की जिम्मेदारी सबसे छोटे पुत्र की होती है।

सहरिया समाज की सार्वजनिक समस्या के समाधान के लिए जो सामूहिक बैठक होती है, उस बैठक में प्रत्येक गाँव के मुखिया का शामिल होना जरूरी होता है क्योंकि मुखिया के बैठक में शामिल होने को उस गाँव की सहमति माना जाता है तथा इस प्रकार की बैठकों के निर्णय सम्पूर्ण समाज के लिए मान्य एवं बाध्यकारी होते हैं। स्वभाव के अनुसार सहरिया लोग सरल व भोले स्वभाव के होते हैं। स्त्रियाँ अधिकांशतः घूंघट में रहती हैं और मर्यादाओं को निभाती हैं।

सहरिया का धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य

सहरिया जनजाति के लोग धार्मिक प्रकृति के होते हैं। धर्म के प्रति इन लोगों का अटूट विश्वास पाया जाता है। सहरिया हिन्दू देवी-देवताओं को मानते हैं। प्रमुख देवी-देवताओं में भगवान हनुमान, शीतला माता, शारदा भाई, ठाकुर देव, रामदेव, नामदेव आदि हैं साथ ही राम, कृष्ण, गणेश, शिवजी, सत्यनारायण, गंगाजी, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जलदेव के साथ सीता माता व काली माता की भी पूजा करते हैं। देवी-देवताओं की पूरा संस्कारों व त्यौहारों के अवसर पर की जाती है। इनके प्रमुख त्यौहार दशहरा, होली, दीपावली, हरियाली, रक्षाबंधन आदि है। तेजाजी सहरियाओं के प्रचलित लोक देवता के रूप में माने जाते हैं। सहरिया काली, दुर्गा एवं अन्य देवी-देवताओं की उपासना करते हैं। ये लोग कुल देवता, भूमानी देवी, ग्राम देवता, वन देवता, दूल्हा देव, केवलया बब्बा एवं मेहरवाली शारदा माता को भी पूजते हैं।

पुजारी के कार्य को गाँव का सरपंच सम्पन्न करा लेता है। विवाह की रस्में भी पंच द्वारा ही संपन्न की जाती है। विवाह के पश्चात् लड़का अपने माता-पिता के पास से अलग मकान बनाकर रहने लगता है। सहरिया समाज के व्यक्ति विभिन्न उत्सवों व त्यौहारों पर नाचगान करते हैं। सामान्यतः स्त्री-पुरुष एक साथ ही नाचते हैं। होली के अवसर पर फाग और राई नृत्य होता है और दीपावली के अवसर पर हीड़ा गाने का प्रचलन है। ढोलक, मंजीरा, नगाड़ा, झांझ, तूमड़ी आदि इनके प्रमुख वाद्य यंत्र हैं।

कोरकू
(Korku)

कोरकू का अर्थ है मनुष्य का समूह। कोरकू मध्य प्रदेश का एक प्रमुख जनजाति है, जो सतपुड़ा पहाडियों के वन आँचल प्रदेशों में निवास करती है। यह जनजाति बैतूल जिले के भैंसदेही और चिचोली तहसील में हरदा जिले की हरदा, टिमरनी और खिरकिया तहसील में जिला खण्डवा की हरसूद तथा बुरहानपुर तहसीलों में निवास करती है। यह जनजाति सतपुड़ा पर्वत, होशंगाबाद, बैतूल, छिन्दवाड़ा, सिवनी में पायी जाती है। यह राजपूतों को अपना पूर्वज मानती हैं। कोरकू जनजाति में भूस्वामी को राजा कोरकू और सामान्य कोरकू को पोथरिया कहते हैं। कोरकू में अति सम्मानित व्यक्ति को भूमका या पड़ीयार कहा जाता है। बोवई, पठारिया, दुलारया, मोवासी, बवारी, रूमा, नहाला, बोडोया आदि कोरकू की प्रमुख उपजातियाँ हैं।

इस जनजाति में पितृसत्तात्मक तथा संयुक्त परिवार पाये जाते हैं। लेकिन परिवार के आंतरिक मामलों में कोरकू महिला की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनके मकान आमने-सामने पंक्तिबद्ध होते हैं। प्रायः घास, बाँस, लकड़ी और खपरैल से बनाये जाते हैं।

कोरकू लोगों का मुख्य भोजन कृषिकृत पदार्थ एवं फल-फूल है। कोरकू मुख्यतः बाजरा, कुटकी, सावा, कोडो, मक्का, ज्वार, गेहूँ, तुअर, तिवड़ा, तिल्ली पसंद करते हैं। इसके अतिरिक्त पेज, धान, कुटकी फल तथा माँस भी इनकी प्रिय भोजन है।

विवाह- इन जनजाति में समगोत्रीय विवाह नहीं किए जाते हैं, कोरकूओं में कई प्रकार के विवाह प्रचलित हैं, जिनमें प्रमुख इस प्रकार है- लमझना विवाह (घर दामाद प्रथा), चिथोड़ा विवाह, राजी बाजी विवाह, विधवा विवाह, हठ विवाह, अन्तर्विवाह आदि।

कोरकूओं का रंग गेहूँआ, आँखे काली, नाक चपटी, होंठ मोटे, चेहरा गोल, गोलों की हड्डियाँ उभरी हुई तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। कोरकू जनजाति का पहनावा बहुत साधारण होता है। पुरुष शरीर के ऊपर भाग पर सूती बण्डी और कुरता तथा कमर में घुटनों तक सफेद धोती पहनते हैं। सिर पर चार-पाँच हाथ की पगड़ी पहनते हैं। स्त्रियाँ रंग-बिरंगे नीले, हरे और लाल रंग के लुगड़े रंग-बिरंगी धोतियाँ पहनना अधिक पसंद करती है और गोदना गुदवाती हैं।

आर्थिक स्थिति

कोरकू जनजाति कृषक और कृषि श्रमिक के रूप में अपना जीवन-यापन करती है। इसके अतिरिक्त ये तेंदूपत्ता आदि वनोपज एकत्रित कर और वनों में मजदूरी कर अपना पेट पालते हैं। कोरकू मूलतः एक कृषक जनजाति हैं साथ ही साथ ये कृषक श्रमिक के रूप में अपना जीवन यापन करती हैं इसके अतिरिक्त ये लोग वनों से वनोपज भी एकत्रित करते हैं।

रीति -रिवाज तथा संस्कार- कोरकू जनजाति में अनेक रीति-रिवाज तथा संस्कारों का सम्पादन किया जाता है। इनमें से कुछ प्रमुख का विवरण निम्नलिखित है-

(1) **जन्म संस्कार**:- कोरकू महिलाएँ बच्चे को जन्म देने के दिन तक अपने दैनिक कार्यों में व्यस्त रहती हैं। प्रसव के बाद अवश्य ही 7 से 15 दिनों तक आराम की व्यवस्था रहती है। प्रसूति का काम घर की बड़ी-बूढ़ी औरतों के द्वारा सम्पन्न होता है।

(2) **नामकरण**:- कोरकू जनजाति में लड़की का नामकरण तीसरे दिन और लड़के का नामकरण पाँचवें दिन किया जाता है। घर की साफ सफाई की जाती है तथा गाँव की महिलाओं को आमंत्रित किया जाता है। बच्चे का नामकरण गाँव की सयानी औरतों से विचार विमर्श के बाद किया जाता है। ये नाम दिन, महिना, ऋतु, नदी पहाड़ आदि के नाम से किए जाते हैं। उदाहरण के लिए–

(a) यदि बच्चे का जन्म सोमवार को हुआ है, तो उसका नाम- सोमा, सोमई, समोती, समोना आदि।

(b) यदि बच्चे का जन्म मंगलवार को हुआ है, तो उसका नाम- मंगल, मंगली, मंगराय आदि।

(c) यदि बच्चे का जन्म बुधवार को हुआ है, तो उसका नाम- बुद्धा, बधई, बादू, आदि।

(3) **मृत्यु संस्कार**:- कोरकू समाज में मृतक को दफनाया जाता है, किन्तु अपवाद की स्थिति में अग्नि संस्कार भी किया जाता है।

मृतक परिवार की सुविधा के अनुसार किसी भी सोमवार को मृत्युभोज दिया जाता है। मृत्यु भोज को कोरकू 'तीजा' कहते हैं। इसमें मृतक के परिजन और रिश्तेदार सम्मिलित होते हैं। तीजा में जो कोरकू आते हैं, अपने साथ एक पाव अनाज और मिर्ची अवश्य लाते हैं। मृतक के परिवार को अपनी सामर्थ्य और श्रद्धा के अनुसार सहायता करते हैं।

(4) **वैवाहिक प्रतिबन्ध**:- जिस प्रकार अन्य समाजों में विवाह से सम्बन्धित प्रतिबन्ध हैं, ठीक उसी प्रकार कोरकू समाज में भी विवाह से सम्बन्धित अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध हैं। जो प्रमुख प्रतिबन्ध हैं, उनका विवरण इस प्रकार है –

(a) कोरकू जनजाति में सजातीय विवाह को सर्वोत्तम विवाह माना जाता है।

(b) कोरकू जनजाति में एक ही गोत्र में विवाह करने पर प्रतिबन्ध है। अर्थात सगोत्रीय आपस में विवाह नहीं कर सकते हैं।

(c) कोरकू जनजाति में सामान्यतया मामा/माता के गोत्र की लड़की से विवाह करने की मनाही है।

(5) **देवी-देवता**:- कोरकू जिन देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है-

(a) **महादेव**:- देवाधिदेव महादेव इनके पितामह हैं। कोरकू इनकी पूजा करते है।

(b) **रावण**:- कोरकुओं की उत्पत्ति रावण की प्रार्थना से भगवान महादेव द्वारा हुई है। अत: कोरकू इनकी पूजा करते हैं।

(c) **मेघनाथ**:- एक समय मेघनाथ ने कोरकुओं की युद्ध से रक्षा की थी। अत: कोरकू मेघनाथ को भी पूज्य मानते हैं।

(d) **महावीर देव**:- इन्हें खनेरा देव भी कहते हैं, जो गाँव की सीमा के बाहर स्थापित किए जाते हैं तथा गाँववासियों की बीमारी से रक्षा करते हैं।

(e) **किलार-मुठवा**:- किलार-मुटवा देव का चबूतरा गाँव के मध्य में होता है। ये ग्राम देवता की भाँति होते हैं। इनकी पूजा अर्चना से गाँव में किसी प्रकार की बीमारी नहीं आती है।

(f) **खेड़ा देव**:- खेड़ा देव की स्थापना गाँव की सीमा पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर रहती है। यह देवी कृषि तथा मवेशियों से सम्बन्धित है। यह वह देवता है, जो भूत प्रेत और दुष्ट आत्माओं से ग्रामवासियों की रक्षा करता है।

(g) **सूर्य-चन्द्रमा**:- कोरकू जनजाति के लोग सूर्य और चन्द्रमा की नियमित पूजा करते हैं।

(h) **नर्मदा-ताप्ती**:- कोरकू जनजाति के लोग नर्मदा और ताप्ती नदी को माता के समान आदर करते हैं। ये प्रत्येक अमावस को नर्मदा स्नान करते हैं तथा नर्मदा का जल लाकर खेतों में छिड़कते हैं। इनका विश्वास है कि इससे अच्छी पैदावार होती है।

(6) **जादू-टोना**:- अन्य जनजातियों की भाँति कोरकुओं का भूत-प्रेत और जादू-टोना में विश्वास है।

(7) **पर्व-त्योहार**:- कोरकुओं द्वारा अनेकों पर्व और त्योहारों को मनाया जाता है। ये सारे पर्व और त्योहार जातीय परम्परा के अनुसार हर्ष और उल्लास से मनाते हैं। जो प्रमुख पर्व त्योहार मनाए जाते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है-

(a) **गुड़ी-पड़वा**:- इसे चैत्र मास में मनाते हैं। इस दिन नीम की पत्तियों में गुड़ मिलाकर खाते हैं। इनका विश्वास है कि ऐसा करने से वर्ष भर किसी भी प्रकार की बीमारी नहीं होती है।

(b) **देव-दशहरा**:- चैत्र महीने में ही पड़वा से दसवीं तक मनाया जाता है। इस दिन पड़ियार बच्चा के गले में धागे पर 5-7 गाँठ लगाकर बाँधता है। इस धागे को बेलदशी कहते हैं। इनका विश्वास है कि इसको बाँधने से बच्चों को भूत-प्रेत का डर नहीं रहता है।

(c) **आखातीज**:- कोरकुओं में विवाह हिन्दू तिथि के अनुसार माघ और वैशाख माह में होते हैं। आखातीज के दिन अधिकांश शादियाँ होती हैं। कोरकुओं के लिए यह दिन अत्यन्त ही शुभ और पवित्र माना जाता है।

(d) **डोडबली**:- जेष्ठ मास में ये डोडवली का त्योहार मनाते हैं। यह त्योहार मुख्यतया लड़के और लड़कियों का होता हैं। इस दिन लड़के जामुन की पल्लवित शाखाएँ लाते हैं और उन शाखाओं से किसी लड़के को ढँक देते हैं। इसे 'गमनाय' कहते हैं। इसके कमर में एक रस्सी बाँधी जाती है, जिसे पीछे से एक लड़का खींचता है। इसके बाद दोनों नृत्य करते हैं। लड़कियों के समूह में भी ऐसा ही किया जाता है।

(e) **जिरोती**:- यह त्योहार सावन मास की अमावस्या को मनाया जाता है। इस दिन पकवान बनाते हैं तथा परिवार के सबलोग मिलकर खाते हैं और 'डंडा नाच' करते हैं।

(f) **दीपावली**:- यह त्योहार कार्तिक मास की अमावस्या को मनाया जाता है। घर की साफ सफाई करते हैं तथा दीपक जलाए जाते हैं। लक्ष्मी की पूजा की जाती है। इस दिन बैलों को स्नान कराते हैं तथा उनकी पूजा करते हैं।

(g) **माघ दशहरा**:- माघ दशहरा शादी-विवाह प्रारम्भ होने की खुशी में मनाया जाने वाला त्योहार है। माघ दशहरा का त्योहार, खुशी और उल्लास के साथ मनाया जाता है। शादी विवाह के मौके पर स्त्रियाँ प्रसिद्ध 'गदली नाच' नाचती हैं।

(h) **होली**:- होली के अवसर पर ये रावण से प्रार्थना करते हैं और उन्हें रंग खेलने के लिये बुलाते हैं।

कोरकू जनजाति का सामाजिक संगठन

कोरकुओं का सामाजिक संगठन अत्यन्त ही शक्तिशाली होता है। इनके सामाजिक संगठन के प्रमुख आधार निम्न हैं-

(1) **परिवार**:- परिवार किसी समाज की मूलभूत इकाई है। परिवार पर ही समाज की अन्य इकाइयाँ आश्रित हैं। कोरकुओं का परिवार अत्यन्त ही व्यवस्थित है। इसमें पति-पत्नी तथा विवाहित लड़के और लड़कियाँ होती हैं। परिवार दोनों ही प्रकार के पाए जाते हैं, संयुक्त तथा व्यक्तिगत। परिवार में बड़ों तथा बूढ़ों का सम्मानजनक स्थान होता है। परिवार सामाजिक तथा धार्मिक कार्य होते हैं, जो मुखिया द्वारा संरक्षित और संचालित होते हैं। शादी ब्याह के बाद लड़के और लड़कियाँ अपना अलग परिवार बसा लेते हैं।

(2) **स्त्री**:- कोरकू जनजाति में महिलाओं का समाज में महत्वपूर्ण स्थान होता है। घर के कार्यों तथा धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं में महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इन पर जहाँ एक ओर घर गृहस्थी के कार्यों को देखने की जिम्मेदारी होती है, वहीं दूसरी ओर बच्चों के लालन पालन का उत्तरदायित्व भी इन्हीं पर होता है। कोरकू महिलाएँ काफी कर्मठ होती हैं। घर गृहस्थी से लेकर खेत खलिहान तक के सारे कार्यों में वे बढ़ चढ़कर हिस्सा लेती हैं।

(3) **भोमका**:- जनजाति के पुरोहित को भोमका कहते हैं। शादी-विवाह तथा अन्य पारिवारिक संस्कारों के सम्पादन में भोमका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। देव पूजन, मंडप, प्रतिष्ठा, लग्न तथा विवाह, आदि से सम्बन्धित समस्त धार्मिक कार्यों का सम्पादन भोमका द्वारा किया जाता है।

(4) **पटेल**:- कोरकू समाज में पटेल को अत्यन्त ही आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इसकी सलाह के बिना किसी कार्य का सम्पादन नहीं किया जाता है। पर्व तथा त्योहारों पर पटेल की अहम् भूमिका होती है। शादी विवाह सम्बन्धी झगड़े, तलाक, कृषि कार्य आदि पटेल की सहमति से किए जाते हैं।

बैगा
(BAIGA)

बैगा मध्यप्रदेश की अन्य जनजातियों की तुलना में पिछड़ी हुई है और यह विलुप्त होने की कगार पर थी। इसीलिए मध्यप्रदेश सरकार ने इनके संरक्षण और चहुँमुखी विकास के लिए 'बैगा विकास प्राधिकरण' का गठन किया था। बैगाओं के निवास का प्रमुख स्थान बैगा चक के नाम से जाना जाता है, अधिकांश बैगा जनजाति के लोग 'झूम खेती' (Shifting cultivation) करते थे। यह प्रथा 01.10.1948 से समाप्त कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि बैगा जनजाति के लोग इधर उधर के स्थानों में स्थानान्तरित होते गए। इसका परिणाम यह हुआ कि बैगा जनजाति आज बिलासपुर,अचानकमार क्षेत्र, लोरमी क्षेत्र, पंडरिया क्षेत्र, कठघोरा क्षेत्र, बालाघाट तथा मण्डला जिला तथा अनूपपुर जिले की विभिन्न ग्रामों में निवास करते हैं।

बैगा जनजाति पर जो लिखित साहित्य उपलब्ध है, उसका विवरण इस प्रकार है:-

1. कैप्टन थामसन 1867 में तत्कालीन सिवनी जिले के बन्दोबस्त अधिकारी (Settlement Officer) थे। उन्होंने बैगा जनजाति के बारे में लिखा है कि ये घने तथा दुर्गम जंगलों में निवास करते हैं तथा इनका जीवन पूर्णतया जंगलों पर आधारित होता है। तीर कमान इनके प्रमुख अस्त्र होते हैं तथा शिकार करना उनका मुख्य काम होता है।

2. 1868 से 1885 तक बालाघाट के जोन कलेक्टर कर्नल ब्लूम फील्ड थे। इन्होंने बैगा जनजाति पर लिखा है जिस पुस्तक का नाम है 'नोट्स आन दि बैगा' (Notes on The Baiga) इस पुस्तक का प्रकाशन 1885 में हुआ था। इसकी रिपोर्ट इन्होंने ब्रिटेन के ईसाई मिशनरियों को भेजी थी।

3. ग्रियर्सन ने भी बैगा जनजाति के सम्बन्ध में लिखा है जो भाषा तथा बोली पर आधारित है। चूँकि मण्डला और बालाघाट के बैगाओं की बोली छत्तीसगढ़ी है। अतः ग्रियर्सन ने निष्कर्ष निकाला कि बैगा मूलतः छत्तीसगढ़ के निवासी हैं, जो कालान्तर में मण्डला तथा बालाघाट की ओर प्रवासित हुए।

4. आर.व्ही. रसेल और हीरालाल ने 1916 में एक पुस्तक का प्रकाशन किया था जिसका नाम था "ट्राइब्स एण्ड कास्टस ऑफ सी.पी. एण्ड बरार"। इस पुस्तक में भी बैगाओं के आर्थिक सामाजिक, धार्मिक तथा जीवन की विविध पहलुओं का विस्तृत विवरण है।

5. 'दि बैगा' (The Baiga) नामक पुस्तक का प्रकाशन 1932 में हुआ था। इस पुस्तक के लेखक बैरियर एल्विन थे। इन्होंने बैगाचक के गाँव सड़वा छापर में 6 वर्षों तक निवासकर इस पुस्तक का लेखन किया था, जिसमें बैगा जनजाति के संबंध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध है।

6. डॉ. विजय चौरसिया ने 'प्रकृति पुत्र बैगा' शीर्षक से पुस्तक लिखी है, जो मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल से प्रकाशित है। बैगा जनजाति पर लिखी गई इस पुस्तक में अद्यतन जानकारी उपलब्ध है।

संस्कार- बैगा आदिवासियों द्वारा अनेक प्रकार के संस्कार मनाए जाते हैं। इन संस्कारों में कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

बैगा जनजाति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें लड़का और लड़की में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है। यही कारण है कि चाहे लड़का पैदा हो या लड़की समान रूप से संस्कार और खुशियाँ मनाई जाती है।

दूसरा महत्वपूर्ण संस्कार नामकरण का होता है, यह संस्कार प्रसूता के घर में प्रवेश के दूसरे दिन मनाया जाता है। शिशु के नाम रखने का कार्य गाँव के कोटवार, भोई, मुकद्दम द्वारा किया जाता है। शिशु का नामकरण दिन, महीना, स्थान, पशु, पक्षी, देवता, अधिकारी तथा शिशु की शक्ल सूरत, रंग, शारीरिक बनावट आदि के नाम से की जाती है।

बैगा जनजाति में विवाह को पवित्र संस्कार माना जाता है। एक ही जाति में विवाह वर्जित है, किन्तु एक ही गोत्र में विवाह हो सकता है। बैगा जनजाति में कन्या को पूर्ण स्वतंत्रता रहती है।

बैगा जनजाति में शव को दफनाने और जलाने की दोनों प्रथाएं प्रचलित हैं। अधिक दिनों की बीमारी के बाद मृत्यु होने पर शव को जलाया जाता है। यदि मृत्यु संक्रामक बीमारियों (हैजा, चेचक, आदि) से होती है तो शव को दफना दिया जाता है। बैगाओं का श्मशान घाट नदी नाले या किसी जलाशय के पास होता है।

बैगा जनजाति का सामाजिक संगठन

बैगा सामाजिक संगठन की धुरी पंचायत पर टिकी होती है। पंचों के निर्णय को सर्वमान्यता प्राप्त होती है। कोई भी व्यक्ति पंचों के फैसले को मानने से इंकार नहीं कर सकता है। ग्राम व्यवस्था का कार्य मुखिया की जिम्मेदारी होती है। बैगा पंचायत के पांच पंच होते हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. **मुकद्दम-** मुकद्दम गाँव के मुखिया को कहा जाता है। इनकी नियुक्ति वंशानुगत होती है, जिसे शासन की भी मान्यता प्राप्त होती है। मुकद्दम गाँव का प्रबन्धक होता है। गाँव का कोई भी कार्य मुकद्दम की सहमति के बिना नहीं हो सकता है। सभी उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। लगान वसूली का कार्य भी मुकद्दम के द्वारा किया जाता है।

2. **दीवान-** यह मुकद्दम का सहायक होता है मुकद्दम की अनुपस्थिति में इसके सारे कार्य का सम्पादन दीवान द्वारा किया जाता है। पंचायत की बैठके बुलाना, धार्मिक कार्यों की जानकारी शादी ब्याह का न्योता, अतिथि सत्कार आदि कार्य दीवान द्वारा किए जाते हैं।

3. **समरथ-** समरथ गाँव के सामाजिक कार्यों का सम्पादन करता है। अतिथियों के लिए राशन की व्यवस्था, चन्दा इकट्ठा करना, सामानों की खरीदी भोजन की व्यवस्था समरथ द्वारा की जाती है। समरथ की नियुक्ति भी वंशानुगत होती हैं।

4. **कोटवार-** कोटवार शासकीय सेवक होता है, किन्तु समाज में उसका स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण होता है वह गाँव की रखवाली करता है। कोटवार के पद पर किसी भी जाति के व्यक्ति की नियुक्ति हो सकती है। डोंडी पीटना, गाँव वालों को बुलाना, ग्रामीण घटना की सूचना, आदि कार्य कोटवार करता है।

5. **दवार-** यह गाँव का पुरोहित या पंडा होता है। यह पृथ्वी माता का भक्त होता है। धार्मिक कार्यों का सम्पादन इसके द्वारा किया जाता है। विदरी पूजा का कार्य दवार द्वारा सम्पन्न किया जाता है। दवार अच्छा वैद्य भी होता है तथा दवाइयाँ देता है।

पर्व एवं त्योहार- बैगा जनजाति द्वारा अनेक पर्व और त्योहार मनाए जाते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैः-

1. **बिदरी पूजा-** यह बीज बोने के पूर्व का त्योहार है जिसमें अच्छी फसल के लिए कामना की जाती है। यह त्योहार जेठ या आषाढ़ में मनाया जाता है।

2. **हरियाली अमावस्या-** यह त्योहार श्रावण मास की अमावस्या को मनाया जाता है। इसे हरेली त्योहार के नाम से भी जाना जाता है। यह त्योहार अच्छी फसल के लिए मनाया जाता है।

3. **नवारवाई-** यह फसल कटाई का त्योाहर है। बैगाओं का विश्वास है कि नई फसल पहले पितरो को भोग लगाई जाये, फिर इसको ग्रहण किया जाये। यह पितरो की तृप्ति तथा फसल के भोग का त्योहार है।

4. **दशोरा-** यह दशहरा का त्योहार है, जो कुआंर सुदी दसवी को मनाया जाता है। यह एक नृत्य पर्व है जो दीपावली तक चलता रहता है।

5. **दिवाली-** इसे दीपावली भी कहते हैं। इस दिन आटे या मिट्टी के दीपक जलाए जाते हैं। शाम को जंगल से लौटी गाय का मुँह धोते हैं तथा भात और कुम्हड़ा खिलाते हैं।

6. **छेरता** - यह बच्चों का त्योहार है। इस दिन लड़के और लड़कियाँ साधू के वेश में घर-घर जाकर छेरता माँगते हैं तथा 'छेर छित्ता छेरता' कहते हुए छड़ी को जमीन में कुरेदते हैं तथा घर मालिक दाल, चावल, कुदई का नेग देकर इन्हें बिदा करते हैं। बच्चे अनाज इकट्ठा कर नदी किनारे जाते हैं। स्नान कर उसी अनाज को पकाते हैं तथा भोग लगाकर उसी को खाते हैं। फिर शाम को घर आ जाते हैं।

आर्थिक जीवन- बैगाओं की अर्थव्यवस्था मुख्यतः आखेट, पशुपालन, मुर्गीपालन, घरेलू धंधे, लकड़ी बेचना, कंद, फल-फूल, इकट्ठा करना आदि पर आधारित है। ये पहले 'झूम खेती' (Shifting cultivation) करते थे, जो अब पूरी तरह बन्द है। अनेक लोग मजदूरी करते हैं। वे टोकरी तथा मछली के फन्दे बनाते और उन्हें बेचते हैं। आज वे कृषि कार्य में भी रूचि लेने लगे हैं तथा शासन की ओर से भी उन्हें सुविधाएँ तथा कल्याणकारी योजनाओं का लाभ मिल रहा है।

आज बैगा समाज में भी परिवर्तन की तीव्र लहर चल रही है। आज समाज के सम्पर्क में आ रहे हैं। इससे इनकी जीवन शैली बदल रही है। आवागमन के साधनों का विस्तार, संचार सुविधाओं में वृद्धि तथा शिक्षा में प्रसार के कारण बैगा समाज बदल रहा है और वह दिन अब दूर नहीं जब बैगा समाज मुख्य राष्ट्रीय धारा से जुड़कर देश के विकास में भागीदार बनेगा।

म.प्र. के पाँच जिलों मण्डला, डिण्डोरी, शहडोल, उमरिया और बालाघाट में निवास करने वाला इस विशेष पिछड़ी जनजाति के विकास के लिए राज्य सरकार ने प्राथमिकताएँ तय की है इसके अनुसार खाद्य सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, अधोसंरचना विकास और रोजगारमूलक योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है उक्त पाँच जिलों के 1143 ग्रामों में रहने वाले बैगा सदस्यों को शासकीय सेवाओं में भी योग्यतानुसार लेने के प्रयास किए जा रहे हैं।

अधिसंख्य बैगाओं का निवास मण्डला तथा डिण्डोरी जिले में है। डिण्डोरी जिले के बैगाचक क्षेत्र में इनके 80 से ऊपर गाँव हैं। इसके अलावा बैगा, शहडोल, बालाघाट, सिवनी आदि जिलों में भी निवास करते हैं।

उपजनजातियाँ- नरोतियाँ, भरोतियाँ, बिझवार, राममैना, कठमैना, कोड़ामान आदि।

बैगा जनजाति की आर्थिक स्थिति- बैगाओं की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। बैगा जनजाति का मुख्य व्यवसाय कृषि है तथा वनों की उपज पर जीवन यापन करने वाले लोग सरल भौतिक संस्कृति में जीते हैं।

कृषि- स्थानान्तरित कृषि, झूमिंग कृषि करते हैं अर्थात् यह पेड़ों को काटकर उनकी जगह खेती करते हैं। इस प्रकार की कृषि करने के ढंग को यह पोण्डु, वेवार, ढाईया कृषि के नाम से जानते हैं। कुल्हाड़ी इनका प्रमुख औजार है और हल का प्रयोग निषेध है।

बैगा जनजाति की सामाजिक स्थिति : इनमें पितृसत्तात्मक तथा संयुक्त परिवार प्रथा पायी जाती है। बैगा सगोत्रीय विवाह नहीं करते। विवाह का प्रस्ताव लड़की वालों की तरफ आता है, इनमें विधवा विवाह का प्रचलन तो है किन्तु बाल विवाह नहीं किये जाते हैं बैगा जनजाति में विवाह की छः प्रथाएं प्रचलित हैं- 1. मंगनी विवाही या चढ़ विवाह 2. उठवा विवाह 5. चोर विवाह, 4. पैठूल विवाह, 5. लम सेना, 6. उधारिया।

नृत्य- बैगा कला प्रिय जनजाति है उनमें घर सजाने की परम्परा है। इनमें प्रमुख नृत्य है- रीना, करमा, परधौनी, सुआ, सैला, दशहरा तथा ददरिया।

शारीरिक संरचना- त्वचा रंग काला, मद मध्यम, नाक चपटी, होंठ मोटे, गठीला बदन।

वस्त्राभूषण- बैगा जनजाति सबसे अधिक गुदना प्रिय जनजाति है। स्त्रियाँ एक छोटी धोती पहनती है, जो कमर के सहारे घुटनों तक नीचे लटकी रहती है। इसे कपची कहते है। स्त्रियाँ शरीर में गुदना गुदवाती है। पुरुष पगड़ी बांधते हैं जिन्हें फेंटा या बण्डी कहते हैं। विशेष अवसरों पर इन्हें जैकेट तथा फेंटा साफा पहने भी देखा जाता है पुरुष हाथ में कड़े पहनते हैं वहीं स्त्रियों का भी आभूषणों के प्रति अत्यधिक आकर्षण होता है।

सामाजिक परिदृश्य- इनके प्रमुख देवता बूढ़ा देवता है यह धासी माता की पूजा करते हैं।

भोजन- बैगा माँस मोटे अनाज, फल तथा कंदमूल फल खाते हैं। इनका सुबह, दोपहर और शाम का भोजन क्रमशः बासी, पेज और बियारी कहलाता है।

भाषा- बैगानी (द्रविण मिश्रित भाषा)

आवास- बैगाओं के मकानों की दीवारे बांस की बनी होती है। जिन पर मिट्‌टी का लेप किया रहता है और दरवाजा बहुत छोटा होता है।

धार्मिक स्थिति- बैगा आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं तथा विभिन्न देवताओं की पूजा करते हैं। बीमारियों से रक्षा हेतु 'दुल्हा देव' की पूजा की जाती है। साज इनका आराध्य वृक्ष है। बैगा के प्रमुख देवता बूढ़ादेव है मान्यता है कि वे साज वृक्ष पर रहते हैं। बैगा के गाँव की भूमि के देवता 'ठाकुर देव' है ये लोग सर्प को भी देवता मानते हैं।

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

1. गोंड़ों के सामाजिक संगठन पर एक लेख लिखिए।
2. भीलों के सामाजिक संगठन पर एक लेख लिखिए।
3. भीलों की अर्थव्यवस्था को संक्षेप में लिखिए।
4. संक्षेप में भीलों के उत्सवों और त्योहारों की विवेचना कीजिए।
5. कोरकू जनजाति के सामाजिक संगठन पर एक लेख लिखिए।
6. भारिया जनजाति को संक्षेप में लिखिये।
7. बैगा जनजाति के सामाजिक संगठन को लिखिए।
8. बैगा जनजाति के आर्थिक जीवन को समझाइये।
9. सहरिया जनजाति के धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।



हमारे अन्य प्रकाशन



Kailash Pustak Sadan
30, Shah Building,
Hamidia Road, Bhopal (MP)
0755-2535366, 4256804
kailashpustak@gmail.com
www.kpsbhopal.com

Price : 250/-

